इकाई : १

१

आधुनिक कालीन परिवेश

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ आधुनिक काल : नामकरण

१.३ आधुनिक कालीन परिवेश

१.३.१ राजनीतिक परिवेश

१.३.२ सामाजिक परिवेश

१.३.४ आर्थिक परिवेश

१.३.४ धार्मिक-सांस्कृतिक परिवेश

१.३.५ साहित्यिक परिवेश

१.४ सारांश

१.५ वैकल्पिक प्रश्न

१.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१.७ बोध प्रश्न

१.८ संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से परिचित होगे।

१. हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

२. आधुनिक काल के नामकरण और सीमाओं को जानेगें।

३. आधुनिक कालीन राजनीतिक परिवेश का अध्ययन करेंगे।

४. आधुनिक कालीन सामाजिक परिवेश का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

५. आधुनिक कालीन आर्थिक परिवेश का अध्ययन करेंगे।

६. आधुनिक कालीन धार्मिक-सांस्कृतिक परिवेश को देखेगें।

७. आधुनिक कालीन साहित्यिक परिवेश का अध्ययन करेंगे।

munotes.in

१.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में सीमाओं का निर्धारण करना एक जटिल समस्या है। क्योंकि किस कालखंड का समय कहाँ से शुरू होता है इसे तय करना मुश्किल है। हर कालखंड में उस समय की परिस्थिति अलग-अलग रही है। इसी कारण हर कालखंड के अंतर्गत बदलाव दिखाई देता है। यह बदलाव की प्रक्रिया प्राचीन काल से चलती आ रही है। आ. रामचंद्र शुक्ल, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु विनोद, आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदर दास, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि विद्वानों ने हिंदी साहित्य के विविध काल क्रम को लेकर चर्चा की है। मुख्यतः आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल आदि कालों में विद्वानों ने इसे विभाजित किया है। उसी कालों में सें एक आधुनिक काल नाम है। आधुनिक काल अर्थात आधुनिक शब्द एक विशेष कालखंड को दर्शाता है और मध्ययुगीन विचार पद्धति से एक नई विचारधारा तथा एक नई जीवन दृष्टि की ओर संकेत करता है। यहाँ पर इतिहास के साथ तंत्र और श्रम, शासन व्यवस्था, कला, साहित्य एवं सौन्दर्यशास्त्र आदि के साथ बहुत सारी चीजें बदल जाती है। इस नये बोध के कारण यहाँ पुरानी रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना निर्माण होती है। यह नवीनता बाह्य विचारों से ही संबंधित न रहते हुए वैचारिक स्तर भी मनुष्य का संस्कार करती है। इसे ही साहित्य के इतिहास में `आधुनिक काल' के नाम से अभिहित किया गया है।

१.२ आधुनिक काल : नामकरण और सीमा निर्धारण

साहित्य के इतिहास में युग परिवर्तन की परम्परा रही है जो किसी नियति की तिथि से आरंभ नहीं होती है और न ही किसी युग विशेष का निर्धारण निश्चित तिथी से कर सकते है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रादुर्भाव से पहले ही इसकी पृष्ठभूमि बनना आरंभ हो गई थी। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल के प्रादुर्भाव के लिए उस समय की स्थिति तथा कारणों का विवेचन करने से पहले आधुनिक काल के नामकरण पर चर्चा करना आवश्यक है। हिंदी साहित्य के इतिहास में `आधुनिक' शब्द दो अर्थों से ले सकते है। एक मध्यकाल से भिन्नता और दूसरा नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देना। अर्थात मध्यकालीन जड़ता और आधुनिक गत्यात्मकता को साहित्य और कला के माध्यम से समझा जा सकता है। मध्यकाल का समय अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, उसे एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया ने फिर से गत्यात्मक बना दिया। इसमें विशेषतः रीतिकाल में कला और साहित्य अपने-अपने कथ्य, अलंकृर्ति और शैली में एकरूप हो गये थे। वे घोर श्रृंगारिकता के बंधे घाटों से बह रहे थे। न छंदों में वैविध्य था और न विन्यास में। एक ही प्रकार के छंद, एक ही प्रकार के ढंग से प्रस्तुत हुए है। इसलिए आधुनिक काल में बंधे हुए घाट टूट गये और जीवन की धारा विविध स्त्रोतों में फूट निकली। साहित्य मनुष्य के सुख-दुःख में पहली बार समाविष्ट हो गया। इसी का दूसरा शब्द है नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण अर्थात धर्म, दर्शन, साहित्य और चित्र आदि सभी के प्रति नये दृष्टिकोण का साहित्य के भीतर आविर्भाव होने लगा। मध्यकाल में मनुष्य पारलौकिक दृष्टि से

इतना अधिक छिपा हुआ था कि उसे अपने समाज तथा परिवेश की सुध ही नहीं थी, लेकिन जैसे ही मनुष्य ने आधुनिक युग में प्रवेश किया और अपने पर्यावरण के प्रति सतर्क होने लगा। इसी आधुनिक युग में विद्वान, दार्शनिक चिंतकों तथा धार्मिक व्याख्याताओं की जरूरत पड़ी। यही उनकी मूल चिंताधारा इहलौकिक ही है। इसी कारण आधुनिक युग में मनुष्य की दृष्टि तथा साहित्य की भाषा बदल गयी। ब्रजभाषा की बदले में खड़ीबोली भाषा का निर्माण हुआ। कविता की प्रकृति और भाषा दोनों ने एक नया आकार ग्रहण किया। काव्य के स्थान पर गद्य का आविर्भाव हो गया। इस आधुनिक युग में काव्य की भाषा गद्य का रूप धारण करती हुई दिखाई देती है। यही आधुनिक काल के साहित्य क्षेत्र में सबसे बड़ा क्रांतिकारी कदम रहा है।

सामान्यतः आधुनिक शब्द को ही दूर-दूर तक समय सापेक्ष के रूप में माना जा सकता है। क्योंकि आधुनिक इस शब्द का अर्थ अपने-अपने सुविधा के अनुसार लचिला हो जाता है। हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा आधुनिक होता है और आधुनिकता की प्रथम शर्त है स्वचेतना। युग-प्रवृत्तियों का इतना शीघ्र परिवर्तन होना और उसका इतना शीघ्र अनुभाव गहरी स्वचेतना द्वारा ही संभव होता है। यही साहित्य के अंतर्गत देख सकते है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के विकास का क्रम एक शताब्दी पहले से ही प्रारंभ हो गया था, लेकिन यह बदलाव पुरी तरह से उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में दिखाई देता है। सन् १८५० में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म हुआ था और वहीं से आधुनिक काल का समय विद्वानों ने माना है। इसी समय देश में दो विरोधी ताक़तों की टकराहट हुई सामंतवादी और पूंजीवादी। कहीं ना कहीं सामंतवादी शक्ति अपनी सारी ताकत लगाकर सदा के लिए समाप्त हो गई और देश के प्रबुद्ध वर्ग ने एक नये सीरे से सोचना प्रारंभ कर दिया। साथ ही अंग्रेज भी इस देश को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की नवीनीकरण की ओर बढ़ते हुई दिखाई देते है। इसी कारण आधुनिक काल का समय सन् १८५७ से मानना उचित लगता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में अनेक विद्वानों ने आधुनिक काल को अनेक नामों पुकारा है तथा उसका विभाजन भी किया है। जैसे कि आ. रामचंद्र शुक्ल ने `गद्यकाल', मिश्र बंधु `विनोद' ने वर्तमान काल, डॉ. रामकुमार वर्मा ने `आधुनिक काल' और डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने `आधुनिक काल' आदि नाम दिए है। आ. शुक्ल ने आधुनिक काल को `गद्यकाल' इसलिए रखा है क्योंकि इस काल में गद्य साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ और कहीं ना कहीं पद्य साहित्य इस काल में उपेक्षित होते हुए दिखाई देता है। इसीलिए आ. रामचंद्र शुक्ल ने इस आधुनिक काल को `गद्यकाल' का नाम दिया था। फिर भी इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त होगा। आधुनिक काल में गद्य साहित्य और पद्य साहित्य दोनों का समावेश हो जाता है और कहीं ना कहीं काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी काल से हटकर नवीन तथा आधुनिकता की ओर आती हुई दिखाई देती है। मध्यकाल तथा रीतिकाल में चल रही दरबारी परिवेश की प्रथा को बाहर निकालकर उसे जनजीवन के नीकट लाकर खड़ा कर दिया। उसी का नतीजा यह है कि इस काल में अनेक विधाओं का जन्म हुआ।

साहित्य में कालों की सीमा को लेकर अनेक विद्वानों में मतभेद है। विशेषतः आधुनिक काल की समय सीमा विद्वानों ने अलग-अलग मानी है। उसमें आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक हिंदी के विकास की

प्रारंभिक सीमा १८४३ ई. से मानी है। डॉ. रामविलास शर्मा आधुनिक काल का प्रारंभ १८६८ ई. से मानते है। क्योंकि यही से भारतेन्दु ने सन् १८६८ से `कविवचन सुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन और इसी में भारतेन्दु की रचनाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय १८५० ई. से हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ मानते है। परंतु वैज्ञानिक घटना और राजनैतिक घटना के प्रभाव को देखते हुए साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ १८५० ई. से मानना उचित प्रतीत होता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को दो खण्डों में विभाजित किया है। उसमें एक है गद्य खण्ड और दूसरा काव्य खण्ड। आ. रामचंद्र शुक्ल इसे दो-दो प्रकरणों में विभाजित किया है। गद्य के पहले प्रकरण के अंतर्गत ब्रजभाषा गद्य और खड़ीबोली गद्य का विस्तार से विवेचन किया है। दूसरे भाग के अंतर्गत गद्य साहित्य का आविर्भाव को विश्लेषित किया गया है। इसे ओर तीन भागों में विभाजित किया गया है - प्रथम, द्वितीय और तृतीय। काव्यखण्ड के अंतर्गत पुरानी काव्यधारा और नयी धारा आदि दो प्रकरण है। नयी धारा के आ. रामचंद्र शुक्ल ने ओर तीन उत्थान को दर्शाया है। इसमें प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान। तृतीय उत्थान अर्थात काव्य में जिसे छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। शुक्ल जी का गद्य खण्ड और काव्य खण्ड एक-दूसरे से सर्वथा अलग-अलग हैं, एक ही प्रवृत्ति का दूसरे की प्रवृत्ति के साथ कोई तालमेल नहीं है। इस खण्ड दृष्टि के कारण इतिहास का नैरंतर्य ओझल हो गया है। शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने भी शुक्ल जी का ही अनुसरण किया है। आ. रामचंद्र शुक्ल के द्वारा विभाजित आधुनिक काल को वैज्ञानिक तौर स्वीकृति मिली है। उन्होंने आधुनिक काल के विकास की प्रारंभिक समय सीमा १९०० संवत् अर्थात सन १८४३ ई. से मानी है।

सामान्यतः आधुनिक काल का समय निर्धारण तथा काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है –

आधुनिक काल : उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक

१.	पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल)	१८५७-१९००
२.	जागरण तथा सुधार काल (द्विवेदी काल)	१९००-१९१८
३.	छायावाद काल	१९१८-१९३८
४.	छायोवादोत्तर काल	
	(क) प्रगति - प्रयोग काल	१९३८-१९५३
	(ख) नवलेखन काल	१९५३ से अब तक

१.३ आधुनिक कालीन परिवेश

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में विभिन्न विधाओं से साहित्य तथा परिवेशों का निर्माण हुआ है। मानव का इतिहास और साहित्य के साथ प्रगाढ़ संबंध है। क्योंकि यहाँ इतिहास की हर घटना, परिस्थिति साहित्य को प्रभावित करती है। इसी कारण समाज की परिवेशजन्य स्थितियों का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है। अर्थात महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए जिससें साहित्यकार प्रभावित होकर एक नये दृष्टिकोण का विचार समाज तथा परिवेश के सामने रखता है। परिवेश को निर्माण करने में

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक और साहित्य परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है जो साहित्य के पूर्व पीठिका के स्वरूप में उपस्थित होता है। इसीलिए आधुनिक कालीन परिवेश से परिचित होना बहुत महत्वपूर्ण है।

१.३.१ राजनीतिक परिवेश :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास हुआ। यह एक महत्वपूर्ण घटना है। इसी काल में राजनीतिक परिवेश से समाज में अनेक चीजों का आविर्भाव होने लगा। राजनीतिक के क्षेत्र में सन् १७५७ ई. में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों ने नवाब सिऱाजुद्दौला को हराया था। नवाब सिऱाजुद्दौला की हार के कारण संपूर्ण बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद धीरे-धीरे अंग्रेजों का प्रभाव पुरे भारत देश में बढ़ता ही चला गया। कंपनी का प्रभुत्व बढ़ने के कारण समाज के ऊपर अन्याय और अत्याचार बढ़ने लगे। सन १७६४ ई. में बक्सर के युद्ध में मुग़ल सम्राट शाहआलम भी अंग्रेजों के हाथों से पराजित हुआ। सन १७६५ ई. में कडा के युद्ध में देश के भीतर जो सत्ती बची थी वो भी समाप्त हो गयी। उसके बाद सम्राट ने बंगाल, बिहार और उड़िसा की दीवानी अंग्रेजों के हवाले कर दी। फिर भी संपुर्ण देश में अंग्रेजों को अपना अधिपत्त्य स्थापित करने के लिए अन्य दो शक्तियों को पराभूत करना बाकी था। वे शक्तिया थी - मराठा और सिक्ख। इसमें मराठों का प्रभाव भारत देश के व्यापक क्षेत्र पर था। परंतु सिक्ख तो पंजाब के क्षेत्र में ही सीमित थे। दोनों ही अपने पारस्परिक फूट के कारण असी सन् १८०३ और लासवारी सन् १८०३ के युद्ध में पराजित हो गये। इसी के साथ देश में बची हुई शक्ति कुछ ही समय के बाद समाप्त हो गई। सन् १८४९ में सिक्खों के साथ फिर अंग्रेजों का फिर से युद्ध हुआ और सिख फिर से पराजित हो गए। इसी तरह संपुर्ण भारत देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। उसके बाद सन् १८५६ में अवध भी अंग्रेजों के हाथों में चला गया। इसी तरह ऐसे अनेक विजय मिलने के बाद अंग्रेज अपनी सत्ता में मदोमन्त होने लगी।

सन् १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता युद्ध इस काल की एक महत्वपूर्ण तथा प्रमुख घटना है। कंपनी की राज्य स्थापना के समय अनेक नीतियों से देश के राजा और प्रजा असंतुष्ट होने लगे। भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह की आग भड़क उठती है और एकजुट होकर सन् १८५७ में पुरे देश में व्यापक स्तर पर विद्रोह करते है। लगभग एक वर्ष तक यह विद्रोह चलता रहता है। अंग्रेज इस विद्रोह को फिर से दबा देते है। अंग्रेजों के दमन नितियों के कारण और भारतीयों में संगठन के अभाव से यह विद्रोह असफल रहा परंतु इस क्रांति से पूरे भारत देश के लोगों में आज़ादी के प्रति जागरूकता निर्माण हुई। इसी का नतीजा अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी जाती है और ब्रिटिश साम्राज्य का सरकार पुरे भारत देश में शुरू हो जाता है। यही से भारत देश में आधुनिक काल के नवीनीकरण की शुरुवात हो जाती है।

सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो जाने से राजनैतिक घटनाओं में महत्वपूर्ण बदल होने लगे। अंग्रेजों की आर्थिक नीति से भारत देश की जनता तथा ग्रामीण लोगों का शोषण होने लगा। अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक, शैक्षणिक नीतियों को अवलंबन करके देश के अंतर्गत काफी बदलाव

munotes.in

किए। देश की जनता भी यह सब कुछ देखकर नया सोचने के लिए बाधित हो गयी। यहीं से देखा जाए तो आधुनिक काल का आरंभ होता है। लेकिन जिन भागों में पहले से ही अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हुई थी वहाँ पर प्रेस का आगमन पहले से ही हो चुका था और थोडा-थोडा करके आधुनिक साहित्य का भी प्रकाशन होने लगा था। साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। यह सबकुछ गद्य के माध्यम से भारतेन्दु के समय में हुआ। आधुनिक जीवन का आविर्भाव गद्य में दिखाई देने लगा। इस नये युग में अपनी अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा की खोज करना सुधारकों, विचारकों तथा विद्वानों के लिए अनिवार्य हुआ। इसके लिए सिर्फ ब्रजभाषा ही उपयुक्त नहीं थी। इसलिए कहीं-ना-कहीं आधुनिक काल में काव्य के माध्यम से पुरानी संवेदना ही अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती रही। वह अपने संस्कारों से जड़ हो चुकी थी। उसके लिए पुरातनता का केंचुल छोड़ पाना संभव नहीं था। इसी कारण खड़ी बोली का गद्य साहित्य में आधुनिक चेतना के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करने का नया माध्यम बना।

आधुनिक कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य की स्थापना, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, भारतीय कांग्रेस की स्थापना, मार्ले-मिण्टों सुधार द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचण प्रणाली, प्रथम महायुद्ध, रोलेट एक्ट, जालियांवाल बाग-हत्याकांड, गांधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज्य पार्टी की स्थापना, जिन्ना का कांग्रेस से पृथक होना और मुस्लिम लीग की स्थापना करना आदि महत्वपूर्ण घटनाएँ राजनीतिक परिवेश की रही है। सभी घटनाओं ने राजनीतिक पृष्ठभूमि पर गहरा असर डाला है। इसी का नतीजा राजनीतिक परिवेश का आधुनिक काल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

१.३.२ सामाजिक परिवेश :

आधुनिक काल के सामाजिक क्षेत्र में देश फिर से एक नया रूप धारण करने के लिए प्रयत्नशील था। अंग्रेजों ने देश के अंतर्गत नये-नये प्रयोग करके आधुनिक होने की नींव को खड़ा किया। इसमें कहीं सारे विद्वान पाश्चात्य समाज और शिक्षा को ग्रहण करके प्रभावित हो गए। इसलिए भारत में अंग्रेजी शासन की सत्ता एक महत्वपूर्ण घटना साबित होती हुई दिखाई देती है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो नई चेतना आयी उसका प्रमुख कारण आंग्ल भारतीय संपर्क है। सामाजिक परिवेश के क्षेत्र में परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर आंग्ल के संपर्क से आघात किया जो भारतीय दृष्टिकोण में परिवर्तन करने में सहायक हुआ। मध्यकालीन हिन्दू-धर्म का कट्टरपन अब धीरे-धीरे दूर होने लगा। मुगलों के पतन से हिंदू की स्थिति ओर सुरक्षित हो गई थी। ऐसे में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने आर्य समाज के आन्दोलन के माध्यम से हिंदू समाज को जागृत करने का प्रयास किया। यदि आर्य समाज क्रांति नहीं करता तो हिंदू समाज पिछड़ जाता और दुर्बल बन जाता। इसका कारण स्पष्ट है कि भारतीय समाज ने पाश्चात्य संस्कृति का स्वीकार किया और साथ ही इसाई धर्म के प्रभाव में आकर उसे अपनाया गया था। इसी को लेकर आर्य समाज ने आंदोलन को ओर तीव्र कर दिया। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पुरे भारत देश के सामाजिक जीवन पर छाने लगा। अंग्रेजों की अंग्रेजी शिक्षा विशेषतः विकास के लिए सहयोगी बनी हुई थी। परंतु प्राचीन वैदिक प्रेरणा को लेकर स्वामी दयानन्द ने आर्य

समाज के माध्यम से समाज में क्रांति निर्माण की। सामाजिक जीवन से संबंधित रूढ़ियों का तिरस्कार होने से लोगों के जीवन के मूल्य बदल गए। कहीं-ना-कहीं हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान में सामाजिक जीवन से संबंधित यह द्वद्व का स्वरूप व्यक्त हुआ। दूसरी ओर विधवा विवाह के पक्ष में थे तो अन्य जगहों पर इसे 'अनहोनी' कहने वाले भी मौजुद थे। इसी प्रकार से एक ओर जाति-पाँति के विरोधी थे, तो दूसरी ओर इसे `जगत विदित फुलवारी' का निर्मूलन करने वाले। इन दोनों विचार धाराओं के बीच एक अन्य विचारधारा सामने आयी जो कल्याणकारी सामाजिक आंदोलन की दाद देने के लिए हमेशा तत्पर थे।

आधुनिक काल में समाज सुधारक, विचारक तथा विद्वान अंधविश्वास, जातिभेद तथा जाति का बहिष्कार, विधवा विवाह, बाल विवाह, धार्मिक विवाद, स्त्री-शिक्षा का निषेध आदि सामाजिक दोषों से बचने के लिए दक्ष रहने लगे और इन दोषों से किस तरह से सुलझा सकते है इसके बारे में विचारों का आदान-प्रदान करके सुझावों को प्रस्तुत करते थे। आर्य समाज के विचाराधारा से संबंधित व्यक्तियों ने इसे अति किया और प्राचीन परम्पराओं एवं रूढ़ियों को `पोप लीला' में मानकर उसकी कटू आलोचना भी की। इसी कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप बड़ा ही धूमिल हो गया। किंतु यही विद्वान इस वाद-विवाद को छोड़कर समाज सुधार तथा देश के विकास के लिए योजनाएँ प्रस्तुत करते है तब उनकी प्रशंसा भी की जाती थी। यही परिवर्तन हमे भारतेन्दु युग में देखने को मिलता है। उसके बाद सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी अशांति निर्माण हुई।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल अर्थात सन् १९०० से सन् १९१८ के समय में सामाजिक क्षेत्र में निर्माण हुई अशांति दूर हुई और व्यापक दृष्टिकोण के साथ जीवन के नवीन मूल्य स्थापित हो गए। इस युग के विचारकों तथा विद्वानों ने समाज-सुधार की आवश्यकता को बहुत महत्व देने के साथ बड़े शान्त चित्त से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के सुझावों को प्रस्तुत किया गया। इसमें शिक्षा के साथ बाल विधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। इसी प्रकार अछूतों के प्रति सद्व्यवहार, हृदय की विशालता, दहेज की कुप्रथा को दूर करने का प्रयत्न इस के समाज-सुधारकों में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। लेकिन पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का भी विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हुआ यहाँ पर दिखाई देता है। यही से एक नवीन युग के प्रवृत्ति का दर्शन होता है। वह है मानवतावादी की प्रवृत्ति। देश के महान विचारकों में मानवता के प्रति एक विस्तृत दृष्टिकोण बदलते हुआ दिखाई देता है। विचारधाराओं से संबंधित देश के महान विचारकों ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी की स्थिति के प्रति करूणा व्यक्त की।

आधुनिक काल में मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर सामाजिक क्षेत्र में अधिक से अधिक विकास होने लगा और इसी विकासक्रम के कारण मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्व बढ़ने लगा। इस समय गांधीजी की मानवतावादी भावना सामाजिक उत्थान के लिए बड़ी ही शक्तिशाली सिद्ध हुई। सामाजिक क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन हुआ जैस कि राजनीतिक समानता, अछतोद्वार, हिन्दु-मुस्लिम एकता, अंहिसा, सत्याग्रह, जमींदारी का विरोध, धार्मिक समन्वय आदि। धीरे-धीरे देश की जनता पश्चिमी संस्कृति का विरोध करने लगी और दूसरे ओर खादी को भारतीय संस्कृति की अर्थात सामाजिक भावनाओं का

munotes.in

प्रतीक बनाया गया। आर्य समाज के आधार पर वैदिक युग का पुनरूत्थान हुआ। इसी वैदिक उत्थान काल में आध्यात्मिक भावनाओं का विकास हुआ और मानव सेवा के साथ ईश्वर प्राप्ति की भावना समाज में जागृत होने लगी। दूसरी ओर महात्मा गांधी ने ग्रामोद्धार को महत्वपूर्ण बताकर पूँजीपती का विरोध किया। इसी मशीनीकरण से किसान के जीवन पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। यही अभिशाप को दूर करने के लिए देश में कृषक वर्ग की जागृति के प्रति महान सुधारकों तथा विचारकों का अनुमोदन रहा। जाति-भेद और अछूतों के प्रति देश में अत्याचार बढ़ता ही जा रहा था। उन्हें भगवान के मन्दिरों से दूर रखने की मानसिकता समाज के अंतर्गत निर्माण होने लगी। इसी कारण आध्यामिकता के महत्व का भी आधुनिक काल में प्रतिपादन किया गया है। यही आध्यामिकता भारतीय समाज के जनभावनाओं में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी।

आधुनिक काल के सामाजिक परिवेश में मानवतावाद का समर्थन करने वाले महान विचारक, समाज-सुधारक विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर का नाम ले सकते है। इन्होंने अपनी कविताओं में मानवतावाद के दर्शन को प्रस्तुत किया है। उसमें आध्यात्मिकता, मानव दुःख-निवारण, विश्व-संस्कृति और जाति-भेद को मिटाने में तत्परता आदि मानवतावादी भावना कविताओं में दिखाई देती है। इसीलिए वे विश्वकवि के रूप में पहचाने जाते है। साथ ही ब्रह्म समाज को स्थिरता देने में उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है। इनपर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव था। मानवता की उपासना में विवेकानन्द का स्पष्ट रूप से प्रभाव दिखाई देता है। दुःख को मानवता की एकसूत्रता के सुत्र में स्वीकारते हुए उसे साधनात्मक रूप प्रदान किया। हृदय की करूण भावनाएँ समाज को लक्ष्य बनाकर अभिव्यक्ति की गई। मानवता का विकास यही एकमात्र सबका लक्ष्य है और विश्व शांति के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीयता की भावना विकसित होने पर ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।

आधुनिक काल के युग में इसी विचारधारा को मानने वाला और प्रभावित करने वाला महान व्यक्ति है श्री. योगिराज अरविन्द। श्री. योगिराज अरविन्द मानव-जाति के विकास के लिए योग साधना करने में तत्पर थे। उन्होंने अपना जीवन सिर्फ मानव की सेवा करने में ही समर्पित किया था। मानवतावाद में ही अध्यात्मवाद की अनुभूति होती है। इसी को लेकर उनका साधनात्मक जीवन और इच्छाशक्ति की दृढ़ता मानव को पूर्ण मानव बनाने में सलग्न थी।

आधुनिक युग में समाज-सुधारक तथा विचारकों के माध्यम से समाज और सामाजिक व्यवस्था में काफी हद तक परिवर्तन हुआ था। समाज के साथ-साथ साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। सामाजिक अवस्था में भारतेन्दू युग और द्विवेदी युग दोनों में सामाजिक व्यवस्था का अंतर दिखाई देता है। इसी कारण भारतेन्दु युग में नवयुग चेतना का विकास हुआ और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए बड़ी अशांति निर्माण हुई। यह सब कुछ द्विवेदी युग में शांत हो गया। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खण्डन करते हुए सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए तत्पर थे। धीरे-धीरे मानवतावादी भावनाओं का विकास हो रहा था। विधवा विवाह, एक विवाह, नर-नारी की समानता आदि समाज से संबंधित भावनाओं का विकास पश्चिमी विचाराधारा के प्रभाव से आधुनिक काल में संभव हुआ।

munotes.in

१.३.३ आर्थिक परिवेश :

आधुनिक काल की सामाजिक परिवेश के बाद हमें आर्थिक परिवेश का विवेचन करना आवश्यक है। यहाँ पर देख सकते है कि साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरूचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिंतनात्मक परिवर्तन से हैं। समाज के कुछ लोगों की दृष्टि में आर्थिक परिवर्तनों के साथ साहित्यिक परिवर्तन का तालमेल बैठा देना ही साहित्य का इतिहास होता है तो कुछ लोग संस्कृति के धरातल पर ही अभिरूचियों का विकास-क्रम निर्धारित करते है। दोनों में उलझा हुआ संबंध है। आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गांवों का आर्थिक ढाँचा अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा। गाँव में ही आर्थिक व्यवहार चल रहे थे। अपनी आवश्यकताएँ अपने गाँव में ही पूरी करते थे। उनका बाहरी दूनिया से कोई लेना-देना नहीं था। इसी का नतीजा आधुनिक काल में आर्थिक परिवेश की स्थिति को देख सकते है। यहाँ आधुनिक काल का समय सन् १८५० से माना जाता है। परंतु उसी समय भारत देश में अंग्रेजों ने सत्ता स्थापित की थी। इसलिए भारत देश तथा समाज की आर्थिक स्थिति का विवेचन करना आवश्यक है। देश के समाज-सुधारों तथा विद्वानों को लग रहा था कि अब अंग्रेजों की सत्ता आने से देश की आर्थिक स्थिति में बदलाव आ जाएगा। परंतु इस तरह की आशा करना देश की जनता के लिए ठिक नहीं था। प्रारंभ में देश की स्थिति को देखते हुए अंग्रेजों की औद्योगिक विकास में बिलकुल रूचि नहीं थी। फिर भी देश का धन पुरी तरह विदेश में चला जा रहा था। इसी संदर्भ भारतेन्दु कहते है -

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्यारी।"

देश का धन विदेश जाने से समाज सुधारक, विद्वान तथा विचारकों के लिए यह चिन्ता का विषय बन गया। सोचते है आर्थिक स्थिति के परिवर्तन के साथ अन्य ढाँचे में भी बदलाव करने की जरूरत बनी है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से देश की सामाजिक संघटना में विघटन और परिवर्तन लक्षित होने लगा। अंगेजों के विजय की जिम्मेदारी यहाँ की स्थिर आर्थिक व्यवस्था पर ही नहीं है। देश की अनेक जातियों-उपजातियों में एकता का अभाव था। इसी कारण विदेशी मुसलमानों को युद्ध में विजय की सफलता मिलती गयी और अंग्रेजों को भी विजय की सफलता मिली। आज भी देश में आधुनिकरण हो गया फिर भी स्थिति यही रही है। पुरातन आर्थिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने पर भी जाति प्रथा शिथिल तो हो गई परंतु नष्ट नहीं हुई। आधुनिक साहित्य के भीतर इसके ऊपर करारा व्यंग्य किया गया है। जो आर्थिक परिवर्तन अंग्रेजों के द्वारा हुआ और उसमें सफलता भी हासिल की। परंतु यही आर्थिक परिवर्तन मुसलमानों के द्वारा संभव नहीं था। मुसलमानों के आगमन से सामाजिक रीति-नीतियों में संकोच दिखाई दिया और कहीं अपनी नीतियों का विस्तार दिखाई पड़ा। मुसलमान सामाजिक विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे। उनकी पूर्व की सामंतीय स्थिति शक्तिशाली थी। इसलिए विजयी होकर देश के उच्चतर सभ्यता में विजित हो गए फिर भी देश की जनता तथा समाज में कोई परिवर्तन नहीं ला सके। अंग्रेज सामंतीय व्यवस्था से आगे बढ़कर अपनी स्वतंत्र पूंजीवादी व्यवस्था को अपना चुके थे। उनकी सामाजिक विकास की दृष्टि देश के लोगों से आगे थी। इसी कारण उनके द्वारा अपनायी गई आर्थिक

व्यवस्था सफल हो गई। कहीं ना कहीं इसमें उनका स्वार्थ छिपा था। उसी स्वार्थ को पुरा करने के लिए अंग्रेजों ने धीरे-धीरे कदम उठाना प्रारंभ किया। नए-नए तरीके को अपनाने लगी।

अंग्रेजों के द्वारा गाँव के जमीन का बंदोबस्त करने के बाद उन्हें लोगों से थोडी-सी मालगुजारी मिलती थी। इसी में जमींदार और बड़े-बड़े जोतदारों का एक ऐसा वर्ग निर्माण हुआ जो हर समय अंग्रेजों को सहायता करने में तत्पर था। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ को साधने के लिए इस देश को लुटा और देश के भीतर स्थापित हुए व्यापार को भी नष्ट किया। सबसे पहले लॉर्ड कॉर्नवालिस ने देश के भीतर सन् १७९३ में बंगाल, बिहार और उड़िसा में जमींदारी की प्रथा लागु की थी। उसके बाद मुंबई, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश आदि के कुछ भागों में जमींदारी की प्रथा आरंभी की गयी। यही प्रथा सन् १८२० में टॉमस मुनरों ने 'इस्तमरारी बंदोबस्त' लागू करके जमीन को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में बदलना प्रारंभ किया। इसी का नतीजा जमींदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय-विक्रय किया करते थे। इसके पहले जमींन को खरीदा नहीं जाता था और ना ही बेचा जाता था। क्योंकि उसके ऊपर व्यक्ति का अधिकार नहीं था। इसी का फायदा यह हुआ कि खेत व्यक्तिगत संपत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक हुआ। खेतों में से उत्पादन निकालकर अब बाजारों में आने लगा। यातायात कि सुविधा बढ़ने से उत्पादन की किस्म पर प्रभाव पड़ा। जिसका ज्यादा फायदा हो उसका उत्पादन अधिक किया जाने लगा। इसी का नतीजा रूपयों के चलन से व्यावसायिकता की वृद्धि हुई परंतु किसानों की स्थिति वैसी ही रही। क्योंकि उन्हें एक तरफ से सरकारी मालगुजारी अदा करने की परेशानी रहती थी तो दूसरी तरफ से महाजन की ऋण अदायगी की। किसान बेचारा दो पाटों के बीच में पिसता जा रहा था और ऊपर से अंग्रेज भी समय-समय पर मालगुजारी का दर बढ़ा दिया करते थे। इसी कारण किसान महाजनों के चंगुल में बुरी तरह से फंस जाते थे और यह सभ्यता अंग्रेजों की कूटनीति का ही नतीजा है। उसी समय अकाल भी पड़ता रहता था। परंतु इस अकाल की स्थिति में अंग्रेज अधिकारी अकाल पीड़ितों की रक्षा करने में असमर्थ हो गए। कर का बोझ, अकाल और महामारी आदि की वजह से देश की जनता त्रस्त हो चुकी थी। इसका उल्लेख भारतेन्दु और उनके समसामायिक लेखकों के साहित्य में मिलता है।

देश के विभिन्न प्रांतों में गाँवों की पंचायत होती थी। इसी पंचायतों में झगड़ों का निपटारा किया जाता था। परंतु आधुनिक काल में अंग्रेजों के द्वारा नयी व्यवस्था लागु होने के कारण लोगों में एक-दूसरे से संबंध जटिल हो गए। अब पंचायातों में फैसला नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में नयी संस्थाओं का जन्म होना तय था। पंचायतों में कचहरियाँ को स्थापित किया गया। अंग्रेजों की नयी व्यवस्था के प्रति जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ा। अनेक किसानों के खेत टुकडों-टुकडों में बट गए। खेतों की संख्या कम होने लगी। किसान और सरकार के बीच में मध्यस्थों की संख्या बढ़ती ही गयी। इसी कारण किसानों का उत्पादन घटता ही गया। देश के सभी किसानों के जीवन का गुजारा खेती पर निर्भर था। गाँव और शहर में स्थापित किए उद्योग वे भी अंग्रेजों की कृपा से काल-कवलित हो गए। पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर अंग्रेजों ने नई अर्थव्यवस्था लागु की। उससे अनजाने में ही भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों-गाँवों की जड़ता टूटने लगी। गाँव और शहर एक-दूसरे के संपर्क में

आने लगे। गाँव-गाँव को एकसूत्रता में बाँधने वाली अर्थव्यवस्था पुरे देश में फैल गयी। जो देश केवल धार्मिक एकता में बँधा हुआ था वह अब राष्ट्रीय एकता की छत्रछाया में एक होकर जागरूक होने लगा।

आधुनिक युग में देश धार्मिक एकता में बंधा हुआ था वही देश बाद में जाति प्रथा के कारण अलग-अलग घुटों में बँटने लगा। इसी का नतीजा जाति आर्थिक वर्गों में बदलने लगी। परंतु जाति प्रथा की जड़ता को तोड़ना आधुनिक काल में संभव नहीं हुआ। आर्थिक वर्गों का उदय होने से उसमें उच्च वर्ग तथा उच्च जाती के लोगों का समावेश हुआ। अंग्रेजों के द्वारा दी गई सुविधाओं का लाभ उच्च जाति के लोगों ने ही लिया। उस समय राष्ट्रीय आंदोलन भी उन्हीं के हाथ में था। राजनीतिक दलों के सुत्रधार भी वहीं रहें। ऊँच-नीच का भेदभाव होने लगा। इसी का फायदा अंग्रेजों के द्वारा उठाया गया। बेरोजगारी, महँगाई, पूँजी का कुछ लोगों के पास जमा होना और देश में फैली हुई दरिद्रता से स्थिति ओर बिगड़ी हुई थी। पूँजीवाद ने मानव-समाज में शुद्ध आर्थिक संबंध स्थापित कर दिए थे। इसी कारण श्रमिक वर्ग की चेतना का आधार भी शुद्ध आर्थिक स्थार्थ था। धीरे-धीरे इस आधुनिक युग के विचारकों का ध्यान पुरी तरह से निर्माण हुई कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करूण दशा ने पूर्ण रूप अपनी ओर केन्द्रित कर लिया। वर्ग संघर्ष से व्यापक जागृति हुई और दलित-वर्ग विद्रोह करने के लिए तत्पर हुआ। आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावुकता का स्थान न्युनतम हो गया और यथार्थवाद को महत्व मिला।

१.३.४ सांस्कृतिक-धार्मिक परिवेश :

आधुनिक काल की आर्थिक स्थिति के बाद सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश का विवेचन करना महत्वपूर्ण है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से सांस्कृतिक और धर्म को लेकर देश के अनेक भागों में क्रांतिकारी के रूप में बदलाव हुए। नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता, संचार-सुविधा, प्रेस आदि को अंग्रेजों ने अपने नीजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया। परंतु आधुनिक युग में इससे देश का हित ही साध्य होने लगा। समाज अपने नए तरीके से खुद को ढालने लगा। परिस्थितियाँ बदलने लगी। परम्पराएँ टूटने लगी। इसके पूर्व धर्म पारलौकिक आकांक्षाओं से संबंधित था किन्तु इस आधुनिक काल के युग में धर्म इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बना है। पूँजीवादी समाज की भौतिकता के फलस्वरूप धर्म-सुधारकों को इस तरह का बाना धारण करना पड़ा था या यह कह सकते है कि इसके लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा।

आधुनिक काल में धर्म और संस्कृति के संबंध में अंग्रेजों को ईसाई मिशनरियों के आक्रमण रूख के कारण विचारकों तथा समाज सुधारकों को इस धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हुआ। उन्हें अंग्रेजों के सामने अपनी संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देश की जनता के सामने धर्म का नया अर्थापन करना आवश्यक हुआ। यह इस आधुनिक काल में जो पहल चली थी वह किसी हद तक सिद्ध भी हुई। धार्मिकता कहीं ना कहीं समाज सुधारकों के साथ जुड़ी हुई थी। पुराणपन्थी और सुधारक दोनों ही अपने-अपने मत के प्रचारार्थ धर्मशास्त्र का शरण लिया था। इस काल में राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा को उन्मूलित करने के लिए धर्मशास्त्र का आधार लिया था। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधारों को वैधता देने के लिए भी वेदों की ओर चलने के लिए कहाँ था और वेदों का नया अर्थ भी

प्रस्तुत किया था। धीरे-धीरे इस देश में तर्क की संगति पर विशेष बल दिया जाने लगा। इसी कारण रूढ़ियों को विच्छिन्न करने में काफी हद तक सुविधा हुई। इसमें परम्परावादी विचारक और धर्म-सुधारक सभी अतीत के गौरव में सफल हो गए। देश के लोगों में अपनी अस्मिता को लेकर आत्म-सम्मान का बोध होने लगा। विदेशी संस्कृति का बहिष्कार करके स्वतंत्रता की माँग करने को आत्म विश्वास जनता में प्राप्त हुआ। डॉ. नगेंद्र कहते है "इनके आदर्शों और व्यवहारों में सर्वत्र एकरूपता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ, टैगोर-परिवार ब्राह्म था। ब्राह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है, पर टैगोर-परिवार खूब धूमधाम के साथ दुर्गोत्सव मनाता था। आर्यसमाज में वर्ण-व्यवस्था जन्मना नहीं, कर्मणा मानी जाती है, पर आर्यसमाजियों में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे, जो जाति के बाहर विवाह-संबंध स्थापित करने में संकोच का अनुभव न करते रहे हों। दूसरा अंतर्विरोध यह था कि राजा राममोहन राय, रानाडे आदि बहुत से लोग ब्रिटिश राज्य को देश के लिए वरदान समझते थे, लेकिन प्रजा के दोहन, शोषण आदि का विरोध करते थे। समाज में एक ओर संस्कृतीकरण बढ़ रहा था तो दूसरी ओर लौकिकीकरण।" अंग्रेजों के सामने सभी विद्वानों तथा समाज सुधारकों को अपने देश की संस्कृति और धर्म का समर्थन करना पड़ा। इसीलिए देश की जनता के सामने एक नए धर्म का बोध होने लगा।

आधुनिक काल में मानवतावाद का महत्व बढ़ने लगा था। विशेषतः धर्म को लेकर मानवतावाद को आधार बनाया गया। इसलिए इसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। मानवतावाद ईश्वरवाद सें संबंधित हैं, क्योंकि मानवतावाद संस्कृत के शास्त्र और मध्यकालीन संतों-भक्तों की बानियों में भी मिलता है। कबीर हिन्दू-मुसलमान को लेकर यह प्रहार करते है कि सभी ईश्वर के संतान है। कर्मकाण्ड की निंदा वे इसलिए करते है कि वह ईश्वर प्राप्ति के बांधक है। वैसे तुलसीदास की भी स्पष्टोक्ति है `नाते सबै राम क मानियता।' आधुनिक युग में मनुष्य-मनुष्य की समता, स्वतन्त्रता आदि को सामाजिक न्याय के आधार पर समर्थित किया गया है। मानवतावाद को लेकर गांधीजी में धार्मिक समन्वय का रूप दिखाई देता है। वे मानवतावाद को अपनाते है। गांधीजी वैष्णव जन सबसे बड़ी विशेषता बताते है कि `पराई पीर जानना।' उनके अनुसार वही वैष्णव जन है जो भगवान का भक्त है। जो पराई पीर को जानता है और भगवान के विभिन्न नाम धर्मों का आधार बना हुआ है।

आधुनिक युग में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज आदि ने पुराने धर्म को लेकर नये तरीके से समाज को ढालने का प्रयास किया है। इसमें ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने आधुनिक युग के अनुसार खुद को स्वीकार कर लिया, लेकिन आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाये रखना चाहता था। पंरतु पुराने रीति-नीतियों में लौटना नहीं चाहता था। उस समय की परिस्थितियों की वजह से आर्य समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। इसमें `ब्रह्म समाज', `प्रार्थना समाज', `रामकृष्ण मिशन', `आर्य समाज' और `थियॉसाफ़िकल सोसाइटी' आदि को देखते है।

ब्रह्म समाज :

राजा राममोहन राय संस्कृत, अरबी, फारसी के बहुत बड़े विद्वान थे। वे अरबी भाषा के माध्यम यूनानी विचारकों और दार्शनिकों के विचारों से परिचित हो गए। बनारस में जाकर उन्होंने कुछ वर्षों तक

उपनिषद् और गीता का गहरा अध्ययन किया। बाद में मुसलमानों के एकेश्वरवाद एवं ईसाई धर्म से प्रभावित हो चुके थे। उन्हें सभी धर्मों की विचाराधाराओं का मूल वेदांत अर्थात उपनिषदों में मिला। विशेष रूप से `तैत्तिरीय' और `कौशीतकी' में। अतः इन्होंने राष्ट्रीय जागरण तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान के लिए सर्व प्रथम `ब्रह्म समाज' की स्थापना सन् १८२८ में की और आधुनिक भारत होने की नींव रखी। राजा राममोहन राय अपने उद्देश्य को साध्य करने के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे। उन्होंने समाज के सामने स्पष्ट रूप से यह तथ्य रखा कि प्राचीन भारतीय परंपरा का विशुद्ध रूप ब्रह्मसमाज में है न कि मूर्ति पूजा में। कर्मकांड, अंधविश्वास, मूर्ति पूजा, बाह्याडंबर, अंध रूढ़िवादिता, जाति-प्रथा और सती-प्रथा का विरोध किया। इसके साथ ही पुरूष-स्त्री के समान अधिकारों पर और विधवा विवाह पर राजा राममोहन राय ने अधिक बल दिया। पाश्चात्य संस्कृति को भी मूल्यवान समझा। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रसार में योग दिया और अंग्रेजों की अच्छाईयों की प्रंशसा भी की। उन्नीसवीं शती के पूर्वाद्ध तक जो कुछ अंग्रेजों ने किया उसे राजा राममोहन राय ने प्रगतिशील ही कहा है। इसी कारण उनका यह दृढ़ विश्वास निर्माण हुआ कि धार्मिक और सामाजिक सुधारों की प्रक्रिया साथ में ही चलनी चाहिए।

ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में तथा प्रसार-प्रचार करने में देवेन्द्रनाथ टैगोर (१८१७-१९०५) और केशवचंद्र सेन (१८३८-१८८४) का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देवेन्द्रनाथ टैगोर की अंतः प्रज्ञा पर काफी आस्था थी। केशवचंद्र सेन प्रयोगवादी रहे है और अपने उद्देश के लिए पूरे भारत में दूर-दूर तक लंबी यात्राएँ की। केशवचंद्र सेन राजा राममोहन राय की बौद्धिकता और तार्किकता के साथ-साथ वैष्णवों की भजन-कीर्तन पद्धति को भी समाविष्ट करने में सफल हुए।

प्रार्थना समाज :

सन् १८६४ में मुंबई और पूना शहर में केशवचंद्र सेन का आगमन हुआ। ब्रह्म समाज के प्रसार-प्रचार के लिए केशवचंद्र सेन ने दूर-दूर तक लंबी यात्राएँ की थी। इसी यात्राएँ के दौरान वे महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रानाडे के संपर्क में आ गए। उनके प्रभाव से सन् १८६७ में `प्रार्थना समाज' की स्थापना की। इनके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद रानाडे थे। वे उन्नीसवीं शताब्दी के एक प्रमुख बुद्धिजीवी, विधिवेत्ता तथा मेधावी व्यक्ति थे। निरंतर सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों के साथ संघर्ष करते रहे। इसके साथ ही पुरातन परम्पराओं और जाति-पाँति का विरोध भी करते रहे। अन्तर्जातिया विवाह, मनुष्य की समानता तथा स्त्री के शिक्षाओं पर अधिक बल देने का उन्होंने हर समय प्रयास किया। भारतीय संस्कृति को वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ढालने का भी प्रयास किया। उनकी मध्यकालीन महाराष्ट्रीय संतों के प्रति गहरी आस्था थी परंतु अपने विचारों में वे कहाँ पर भी प्रतिक्रियावादी नहीं थे और न किसी प्रकार का पूर्वाग्रह था। कहते है कि अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार जीवित अवयवों का संघटन है, जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती हैं। यह प्रक्रिया रूक जाती है तो समाज मृत हो जाने की संभावना को जताया है।

आर्य समाज :

आधुनिक काल में उत्तर प्रदेश, गुजरात और पंजाब आदि में आर्य समाज का प्रभाव अधिक था। यह आर्य समाज वैदिक धर्म से संबंधित था। वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार और प्रभाव अधिक होने से उत्तरी भारत में ईसाई धर्म का विरोध किया गया। सन् १८६७ में `आर्य समाज' की स्थापना `स्वामी दयानंद सरस्वती' ने बंबई में की थी। स्वामी दयानंद सरस्वती एक असाधारण व्यक्ति थे। वे संस्कृत के विद्वान, अत्यंत मेधावी और प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। उन्होंने आर्य समाज के लिए वेदों को आधार माना है। उनके अनुसार वेद अपौरूषेय हैं और वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वभौम है। अन्य धर्म अधुरे हैं। आर्य समाज की आचार संहिता सामाजिक और नैतिक मूल्यों के आधार पर आचार संहिता बनायी थी। इसमें जाति भेद तथा स्त्री-पुरूष में कोई भेदभाव नहीं था। इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था कह सकते हैं। दयानंद सरस्वती वैदिक धर्म के व्याख्याता होने के बावजुद वे पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा को स्वीकार करते है। इसी कारण उन्होंने शिक्षा के विकास के लिए सन् १८८६ में दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की और उसके साथ स्कूल, कॉलेज भी खोले। राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में और क्रांतिकारी बदलाव करने में आर्य समाज का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कुछ हद तक अंग्रेज भी इसे दबाने की कोशिश करती है परंतु वे असफल हो जाते है। क्योंकि उत्तर भारत में आचार-विचार, रहन-सहन और साहित्य-संस्कृति पर आर्य समाज का काफी प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई देता है। प्राचीन संस्कृति के प्रति अनुराग, वेदों के प्रति श्रद्धा, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना द्वारा शिक्षा का देशव्यापी प्रचार व प्रसार, नारी जाति के प्रति समादार व समानता की भावना, निम्न जातियों के प्रति अस्पृश्यता की भावना का निवारण, पुरातन सारहिन रूढ़ियों का परित्याग, जातिभेद तथा वर्ण-व्यवस्था की असमानता आदि आर्य समाज के महत्वपूर्ण कार्य रहे हैं।

रामकृष्ण मिशन :

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद उन्हीं के नाम से की है। परमहंस वास्तविक अर्थें में परमहंस थे। वे एक उच्च कोटि के साधक, अद्भुत भक्त, विचारक और ज्ञानी थे। गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्ति पूजक, मित्रहीन हिंदू भक्त होने के बावजूद अपने व्यक्तित्व से सारे बंगाल को हिला दिया। परंतु विवेकानंद उसके उलट थे। स्वामी विवेकानंद सन् १८९३ में आयोजित विश्वधर्म संसद में सम्मिलित होने के लिए शिकागों में चले गए। वहाँ उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन व संस्कृति को प्रस्तुत करके गौरव को प्राप्त किया। विश्वधर्म संसद में इनके सारगर्भित और ओजस्वी वेदान्त संबंधी भाषण को सुनकर सभी प्रभावित हो गए और वहाँ की पत्र-पत्रिकाओं में जैसे कि `न्यूयाँर्क हेराल्ड ट्रिब्यून' में छपा था कि "विश्वधर्म संसद में विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मुर्खता थी।" उनका प्रमुख उद्देश्य था रामकृष्ण परमहंस के विचारों तथा उपदेशों का प्रसार-प्रचार करना था। उसी के माध्यम से सामाजिक कार्यें में गहरी रूचि निर्माण करनी थी। उन्होंने जाति, छुआछूत तथा संप्रदाय आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति थी। शिक्षित वर्ग तथा उच्च वर्ग के प्रति कहते है कि "जब तक देश के हज़ारों लोग भूखे हैं, अज्ञानी हैं, मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को

munotes.in

धोखेबाज़ कहूंगा। ग़रीबों के पैसे से पढ़ कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते... उच्चवर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चूका हैं।" इस तरह से व्यक्त करता है। शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने के लिए सहायता करे उसे उन्होंने धर्म कहा है। विवेकानंद ने हिनत की भावना से यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है। उसका आध्यात्मिक चिंतन असमानांतर है। स्वामी विवेकानंद में यह दृढ़ धारणा बनी थी कि वेद और वेदान्त (उपनिषदों) में प्रतिपादित धर्म है वहीं भारत का वास्तविक धर्म है।

थियॉसाँफिकल सोसाइटी

थियॉसाँफिकल सोसाइटी का आंदोलन भारतीय धार्मिक परम्परा पर आधारित था। सन् १८७५ में दो अमेरिकन बन्धु मदाम ब्लावस्तु और ओल्कार्ट द्वारा न्युयॉर्क में थियॉसाँफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई थी। इनकी शाखा का प्रवर्तन इंग्लैड़ में हुआ। सोसाइटी के संस्थापक भारत में पहुँचने के बाद सन् १८७९ में अड्यार (मद्रास) में इसकी पहली शाखा खोल दी गई। इसकी एक अन्य शाखा इंग्लैड में स्थापित होने से श्रीमती एनी बेसेंट सन् १८९३ में भारत आ गयी और सोसाइटी के विकास के लिए समर्पित हो गयीं। इनके अद्भूत व्यक्तित्व और असाधारण वक्तृत्व के कारण अनेक उच्च वर्ग के शिक्षित लोग आकर्षित हो गए। शिक्षा के प्रचार तथा प्रसार में अतुलनिय योगदान होने के कारण उन्होंने अनेक शिक्षा संस्थाएँ खोली। बनारस का सेंट्रल हिंदू कॉलेज इसी तरह की संस्था है। थियॉसाँफिकल सोसाइटी ने हिंदू धर्म, संस्कृति व उसके अध्यात्म के व्यापक प्रचार से भारत में उदार समन्वयात्मक दृष्टि का विकास किया।

१.३.५ साहित्यिक परिवेश :

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का विशेष महत्व है। इसी आधुनिक काल के परिवेशों के अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि सभी परिवेश आते है। इसी के साथ साहित्यिक परिवेश में अन्य साहित्यों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्य का श्रृंगारकाल है। इस श्रृंगारकाल में साहित्य का विकास विशेषतः राजदरबारों में तथा सौन्दर्यपूर्ण वातावरण में निर्मित हुआ था। कलाकार तथा कवियों को अपना जीवनयापन चलाने के लिए राजदरबाराओं का आश्रय लेना पड़ा। अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करके उनसे पुरस्कार पाना तथा सौन्दर्य-चित्रण करना उस काल के कवियों का मुख्य उद्देश्य था। राजदरबार में रहने वाले कवि श्रृंगारी काव्य करते हुए रीति और अलंकार को प्राधान्य देते थे। इसमें जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहा वे `प्रेम की पुकार' के स्वरूप रीति से मुक्त है। इसी का नतीजा श्रृंगारकाल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ श्रृंगार रस का प्राधान्य, अलंकरण का प्राधान्य, मुक्तक शैली, ब्रजभाषा, नारी के प्रति प्रेमिका का स्वरूप, लक्षण ग्रंथों की प्रधानता, प्रकृति के उद्दीपन का चित्रण और वीर रस की कविता आदि श्रृंगार कालीन साहित्य रहा है।

रीतिकालीन काव्य परपंरा आधुनिक परिवेश के अनुकूल खुद को स्थापित करने में पुरी तरह से असमर्थ रहा। साहित्य के क्षेत्र में भाषा का परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है। इसी का परिणाम रीतिकालीन

munotes.in

परपंराओं की रक्षा करते हुए साहित्य के क्षेत्र में नवीन दिशा और विधाओं का जन्म हुआ। ब्रजभाषा गद्य के साथ-साथ काव्य के लिए खड़ीबोली गद्य का प्रयोग करना आरंभ हुआ। इसी के साथ चम्पू काव्य का भी निर्माण हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना आदि सभी गद्य विधाओं का निर्माण हुआ। इसमें नया-नया साहित्य सामने आने लगा। पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी। यह इसी युग की देन है। देश के अनेक भागों में छापखाने खुलने लगे। साहित्य का अनेक विधाओं में विकास होने लगा। साहित्य इन बहुत-सी विधाओं का रूप विधान पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर हुआ है। वर्ण्य सामग्री की दृष्टि से न सही पर विभिन्न काव्य रूपों के लिए जिस प्रकार से हिंदी साहित्य बंगला, गुजराती और मराठी भाषाओं के साहित्य का ऋणी है उसी प्रकार से अंग्रेजी साहित्य का भी ऋणी है।

आधुनिक काल में 'भारतेंदु युग' आधुनिक हिंदी साहित्य प्रवेश द्वार के रूप में पहचाना जाता है। क्योंकि इसी युग में काफी सीमा तक संधि-साहित्य का निर्माण हुआ है। भारतेंदु युग में हिंदी साहित्य का प्रचार-प्रसार काफी हुआ। द्विवेदी के युग में भाषा का परिमार्जन हुआ। उसके बाद हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में छायावाद को `स्वर्ण युग' के रूप में पहचान प्राप्त हुई। छायावादी युग के साहित्य को अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्पराओं के प्रतिक्रियात्मक एक चिरस्मरणीय महान आंदोलन ही समझना चाहिए। प्रगतिवादी साहित्य में विश्व-मानवता का स्वर विशेष रूप से मुखरित हुआ है। उसके बाद अकविता, समकालीन कविता, कहानी-समांतर, अ-कहानी के दौर महत्वपूर्ण रहें है।

१.४ सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल की युग स्थितियों तथा परिवेशों का विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में अनेक विद्वानों ने कालक्रम को लेकर चर्चा की है। परंतु इसमें आ. रामचंद्र शुक्ल जी के कालक्रम को बहुत सारे विद्वानों ने माना है। इसी समय पर कई परिवेशों का निर्माण होना तय था। जैसे कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक आदि परिवेशों के माध्यम से आधुनिक काल के विकास को दर्शाया है। इस विकास क्रम में अंग्रेजों की सत्ता का भारतीय लोगों को सामना करना पड़ा। अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ा। अंतः में यही कह सकते है कि साहित्य केवल हृदय की अनुभूति की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। बल्कि विचारों और सिद्धांतों की अभिव्यक्ति की भी आवश्यकता साहित्य के अंतर्गत हुई है और इसी विचारों की सफल व्यंजना गद्य में विकसित होती गई। यह कहीं ना कहीं आधुनिक काल के विकास के लिए अनिवार्य था। इसमें अनेक सुधारक, विचारक और विद्वानों तथा संगठनों के माध्यम से आधुनिक काल के विकास को दर्शाया है।

१.५ वैकल्पिक प्रश्न

१. आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल का समय क्या माना है?

२. हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक शब्द का अर्थ क्या दिया है?

३. आधुनिक काल में ब्रजभाषा की बदले में किस भाषा का निर्माण हुआ?

munotes.in

४. आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को क्या नाम दिया?

५. संपूर्ण देश में अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए किन दो शक्तियों को पराभूत करना बाकी था?

६. भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना कब हुई?

७. सामाजिक उत्थान के लिए गांधीजी की कौनसी भावना शक्तिशाली सिद्ध होती है?

८. मानवतावाद में किसकी अनुभूति होती है?

९. 'इस्तमरारी बंदोबस्त' यह प्रथा किस अंग्रेजों के द्वारा लगायी गई?

१.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. ब्रम्ह समाज

२. प्रार्थना समाज

३. आर्य समाज

४. आधुनिक काल के नामकरण को स्पष्ट करें?

१.७ बोध प्रश्न

१. आधुनिक काल को स्पष्ट करते हुए उसके परिवेश पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

१.८ संदर्भ ग्रंथ

१. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र

२. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

३. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी

४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

५. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

६. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

❖❖❖❖

munotes.in

२

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग

इकाई की रूपरेखा

२.० उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ भारतेन्दु युग (सन १८५० से १९०० ई. तक)

२.३ भारतुन्द्र युग की प्रवृत्तियाँ

२.४ द्विवेदी युग

२.५ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

२.६ सारांश

२.७ बोध प्रश्न

२.८ लघुत्तरीय प्रश्न

२.९ संदर्भ ग्रंथ

२.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के दो युगों पर चर्चा की गई है। यहाँ भारतेन्दु युगीन कविता और द्विवेदी युगीन कविता की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

२.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने

munotes.in

वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। भारतेन्दु युग ने हिन्दी साहित्य के लिए एक ऐसी आधारभूमि प्रदान की जहाँ से हिन्दी की दशा और दिशा दोनों बदलती है। समय के साथ अग्रसर हिन्दी साहित्य आज़ादी की लड़ाई के समय भी अपनी केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन कर रहा था। सामान्य जनता की जागरूकता में भी हिन्दी साहित्य की प्रबल भूमिका थी। महात्मा गाँधी के साथ-साथ लगभग सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हिन्दी के सामर्थ्य को समझने लगे थे और देखते ही देखते खड़ी बोली हिन्दी सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का एक सूत्र बन गई। पिछले डेढ़ सौ वर्षों की हिन्दी की इस यात्रा को उसकी प्रवृत्तियों और उसके अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए समय – कालखंड के अनुसार विविध नामों से अभिहित किया गया। उनमें यहाँ दो कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

१९ वीं सदी में सामाजिक नवजागरण के साथ हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देने लगे। परिवर्तित परिस्थितियों ने स्वच्छंद विहार के लिए रचनाकारों को प्रेरणा प्रदान की। जिसके परिणामस्वरूप, भारतीय कविता के प्रांगण में स्वच्छंदतावाद लहराने लगा। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों की प्रतिभा से पोषित होकर वह धीरे-धीरे पनपने लगा। भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लिखा। हिन्दी कविता को नए-नए विषयों में प्रवृत्त करने और गद्य एवं नवीन विधाओं के विकास में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य सृजन में सक्रिय होने वाले रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री आदि के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। आधुनिक हिंदी कविता ब्रज और खड़ी बोली दोनों भाषाओं में मिलती है। इस समय तक साहित्य में ब्रज भाषा की गति धीरे-धीरे मंद पड़ने लगी थी और खड़ी बोली हिंदी कविता ज़ोर पकड़ने लगी थी। तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर भारतेन्दु जी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व का विशेष प्रभाव पड़ा। इसीलिये हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस कालखंड को भारतेन्दु युग की संज्ञा दी गई। वास्तव में यह काल आधुनिक हिंदी साहित्य का द्वार है। आधुनिक भावबोध के परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग के काव्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।

२.२ भारतेन्दु युग (सन १८५० से सं १९०० ई.)

भारतेन्दु युग के साहित्यकार कवि की अपेक्षा समाजसुधारक, प्रचारक और पत्रकार अधिक थे। परिणामतः इन्होंने अपने-अपने पत्र-पत्रिकाओं में तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों, धार्मिक आडंबर, छल-कपट, अमीरों की स्वार्थपरता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए शिक्षित वर्ग की कटु आलोचना, अधिकारियों की रिश्वतख़ोरी, अकाल, गरीबी आदि नवीन विषयों का समावेश किया। भारतेन्दुकालीन कविता में रीतिकालीन श्रृंगारी परंपरा का निर्वाह भी होता रहा। उसमें नैतिक और

धार्मिक कविता की धारा का भी विकास हुआ। एक ओर तो इस काल के कवियों ने राधा और कृष्ण के भक्ति के मधुर प्रेम से सिक्त हृदयहारी पदों की सृष्टि की तो दूसरी और उपदेशात्मक सूक्तिमय काव्य का भी निर्माण किया और इनके साथ ही रीतिकालीन परिपाटी नायिका के हाव-भाव, नख-शिख वर्णन आदि के प्रति भी आग्रह दिखाया।

डॉ. रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग के संबंध में लिखते है कि "भारतेन्दु युग की विशेषता यह रही है कि, समस्त युग के साहित्याकाश में भारतेन्दु छाए रहे। उनकी प्रेरणा से पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, उनके संकेत पर अनेक लोग लिखने लगे। तात्कालिक युवक और साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्तियों के लिए वह प्रेरणा के स्रोत थे। उनकी प्रेरणा से अनेक साहित्यिक संस्थाएँ अस्तित्व में आई और हिन्दी जगत में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न हुआ।'

इस समय के सभी कवियों की वाणी में देशभक्ति का स्वर ऊँचा है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' और 'नीलदेवी' नामक नाटकों के गीतों में तथा अन्य स्वतंत्र कविताओं में भारत की हीन दशा का वास्तविक चित्रण किया है -

"आवहु सब मिलिहूँ रोवहु भाई,
हा, हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

२.३ भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियां

भारतेन्दुयुगीन कविता की भावगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं -

१) देशभक्ति

इस युग की राजनीति के अनुरूप और हिन्दी कविता में भी देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति के स्वर सुनाई देते हैं। भारतेन्दु जी कि इन पंक्तियों में विदेशी शासन के प्रति रोष और तोष दोनों है -

अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अधःपतन को देख कर इन कवियों ने अतीत का गौरव गान करके उसके उन्नयन की चेष्टा की। इनकी देशभक्ति में किसी प्रकार की चाटुकारिता नहीं है। कहीं-कहीं यदि अंग्रेजों की प्रशंसा है, तो वहीं देश की दशा का मार्मिक सिंहावलोकन भी है-

भीतर-भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन मन धन मूसे।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि! साजन, नहिं अंगरेज॥

महारानी विक्टोरिया के निधन के बाद व्यक्त की जाने वाली हार्दिक शोक-संवेदनाओं से पूर्ण भारतेन्दु युगीन कविताओं 'जयति राज राजेश्वरी' और 'हाय दया की मूर्ति, हाय विक्टोरिया माता' आदि पंक्तियों को देख कर कुछ लोग तत्कालीन कवियों की राष्ट्रीय भावनाओं पर आज सन्देह व्यक्त करने लगते हैं। इस सम्बन्ध में हमें यह ध्यान देना होगा कि सन १८८५ से पूर्व कंपनी के शासन में भारतीय जनता पर जो अत्याचार किये जाते थे, उनकी तुलना में विक्टोरिया की अपेक्षाकृत उदार शासन व्यवस्था ने भारतीय जनता में कुछ-कुछ सुख- शान्ति का प्रसार अवश्य किया था। इसलिए उस युग के कुछ कवियों में विक्टोरिया के प्रति जो उद्गार मिलते हैं उन्हें चाटुकारिता कहना उचित नहीं होगा। 'प्रेमघन' की 'हार्दिक हर्षादर्श' कविता में भी इस तथ्य को देखा का सकता है –

लेकर राज कंपनी के कर सों निज हाथन
किये सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।

२) **प्राचीनता तथा नवीनता का समन्वय :** इस काल की कविता में जहाँ देश प्रेम तथा समाज सुधार आदि नवीन विषयों का समावेश हुआ, वहाँ भाषा, भाव और छंद की दृष्टि से यह युग सामंजस्य का युग है। इस काल के कवियों ने पुराने काल के भक्त कवियों के समान पद भी लिखे, लीलाओं आदि का गान भी किया और रीतिकालीन कवि के समान नायिका का नख-शिख वर्णन भी किया। स्वयं भारतेन्दु जी तथा उनके अन्य सहयोगियों ने ईश्वर केन्द्रित अनेक सरस रचनायें प्रस्तुत कीं। इन रचनाओं में कहीं तो निर्गुण संतों की तरह विरक्ति भावना देखने को मिलती है और कहीं वैष्णव भक्तों की तरह तन्मयता दिखाई देती है। ऐसी कविताओं में भारत को उसकी दुरवस्था से मुक्त करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी की गई है। जैसा कि राधाकृष्ण दास मोह – माया को व्यर्थ बताते हुए कहते हैं –

जो विषया संतन तजी, ताहि मूढ़ लपटात
जो नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सो खात।

वहीं लोक कल्याण की बात करते हुए प्रेमघन लिखते हैं कि –

स्यामघन सम सोभित घनस्याम
दामिन सम राधारानी संग, मोहत मन अभिराम
भव भय ताप हरहु प्रभु मेरे सुखदायक छविराम।

इस काल में सूक्ति और उपदेश पद्धति पर भी काव्य सृष्टि हुई।

३) **नवजीवन का चित्रण**

भारतेन्दु युग का काव्य सामान्य जन की गलियों में पला। इस कविता की जनवादी प्रवृत्ति समाजसुधार में निहित है। यह कविता केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का साहित्य है। इसमें सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक

मिथ्याचार, छल-कपट, अमीरों की स्वार्थपरता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए शिक्षित वर्ग पर व्यंग्य, पुलिस और कर्मचारियों की लूट-खसोट, अकाल, महामारी के प्रकोप अंग्रेजों के आर्थिक शोषण तथा सामान्य जन-जीवन को प्रेरित और जागृत करने वाली बातों का यथार्थ चित्रण मिलता है। भारतेन्दु जी 'भारत दुर्दशा' में छूआछूत की तरफ संकेत करते हुए स्वयं लिखते हैं –

हमने बहुत फैलाए धर्म,
बढ़ाया छूआछूत का कर्म।

इसी प्रकार कवि 'प्रेमघन' पश्चिमी सभ्यता में रंगे और हिन्दू नाम से लज्जित होने वाले भारतीय नवयुवकों की निंदा करते हुए कहते हैं कि –

पढि विद्या परदेश की, बुद्धि विदेशी पाय।
चाल-चलन परदेश की, गई इन्हें अति भाय ॥
हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचित लजात।
भारतीय सब वस्तु ही सों ये हाथ घिनात ॥

४) प्रकृति चित्रण की पद्धति

भारतेन्दु काल के कुछ कवियों ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण करने का प्रयास किया है किन्तु, रीतिकालीन कवियों के प्रभाव के कारण वे परम्परा निर्वाह की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सके हैं। स्वयं भारतेन्दु जी ने 'सत्य हरिश्चंद' और 'चन्द्रावली' में क्रमशः गंगा और यमुना की स्वतंत्र छवि का अंकन करने का प्रयास किया है। किन्तु, अलंकार भार से दब जाने के कारण इन कविताओं में सहजता की अपेक्षा कृतिमता अधिक आ गई है। इसी प्रकार भारतेन्दु कृत 'बसंत होली', अम्बिका दत्त व्यास कृत 'पावस पचासा', प्रेमघन कृत 'मयंक महिमा' और प्रताप नारायण मिश्र कृत 'प्रेम पुष्पांजलि' आदि कविताओं में प्रकृति को आलंबन-रूप में स्वीकार करने पर भी श्रृंगारी भावनाओं की प्रधानता रही है।

५) हास्य-व्यंग्य

भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार से हिन्दी काव्य को जनमानस के अत्यधिक निकट लाने में विशेष सफलता प्राप्त हुई। कविता को सामान्य पाठकों की दृष्टि से आकर्षक और उपयोगी बनाने के लिए साहित्यकारों ने उसमें रोचकता का समावेश किया। हास्य-व्यंग्य इसी रोचकता का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन कर कविता में दिखाई देने लगा। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन और सामाजिक अंधविश्वासों पर तत्कालीन कवियों द्वारा किये गए व्यंग्य हमें आज भी आकर्षित करते हैं -

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै, जाति,
मान, धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोंहि करे खराब,
क्यों सखि साजन! नहीं, शराब।

६) इतिवृत्तात्मकता

इस काल के कवियों ने विभिन्न सामयिक विषयों पर फुटकर पद एवं कविताएँ लिखीं, जिनमें विचार और अनुभूति की गहनता नहीं। कहीं-कहीं तो मात्र तुकबंदी का प्रयास दिखाई देता है। उसे कविता की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। प्रतापनारायण मिश्र ने पद्यात्मक निबंध लिखे और दूसरे कवियों ने बहुत सी ऐसी उपदेशात्मक और सुधारात्मक कविताएँ लिखीं जिनमें केवल इतिवृत्तात्मकता है जो कि द्विवेदी काल में और अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का जन्म हुआ।

७) समस्या पूर्ति

भारतेन्दु युग में कवियों की प्रतिभा और उनके रचना कौशल को परखने के लिए कवि गोष्ठियों और और कवि समाजों में कठिन से कठिन विषयों पर समस्याओं की पूर्ति कराई जाती थी। काशी में भारतेन्दु जी द्वारा स्थापित 'कविता वर्धिनी सभा' , कानपुर का रसिक समाज, निजामाबाद में सुमेर सिंह द्वारा स्थापित 'कवि समाज' आदि की तरफ से आयोजित की जाने वाली कविगोष्ठियों में समस्यापूर्ति की प्रतियोगिता के रूप में प्रोत्साहन दिया जाता था। इनमे कवि निश्चित विषयों पर अपने विचार स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त करते थे। कानपुर के 'रसिक समाज' में प्रतापनारायण मिश्र द्वारा की गई एक समस्यापूर्ति का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है –

बनि बैठी है मान की मूरति सी , मुख खोलत बोलें न नाहीं न हाँ।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ ॥
बरषा है 'प्रताप जू' धीर धरौ, अब लों मन को समझायो जहाँ।
यह ब्यारी तबै बदलेगी कछू , पपिहा जब पूछिहें 'पीव कहाँ' ॥

८) **श्रृंगारिकता :** भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने रीतिकालीन कवियों का अनुशरण करते हुए प्रेम और सौन्दर्य की भावना से युक्त श्रृंगार प्रधान रचनायें भी प्रस्तुत कीं। भारतेन्दु की 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी', प्रेमघन की 'युवकमंगल स्तोत्र', 'वर्षा बिंदु', जगमोहन सिंह की 'प्रेम संगीत लता', आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। उदाहरणार्थ यहाँ जगमोहन सिंह की एक कविता प्रस्तुत है :

अब यों डर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि के छतियाँ
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की बतियाँ
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ
जगमोहन मोहिनी मूरति के बिना कैसे कटें दुःख की रतियाँ।

९) **भाषा :** कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु काल में ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया और गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी का। इस काल में भाषा के संबंध में एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया था। जिसका अंतिम निर्णय द्विवेदी युग में हुआ। शायद इसी कारण इस काल में खड़ी बोली में रचित कविताएँ निर्जीव और नीरस हैं।

१०) **छंद :** परंपरा से चले आते हुए सवैया, रोला, छप्पय, कवित्त आदि छंदों के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कविता में लोक प्रचलित छंदों जैसे लावणी, कजरी आदि का प्रयोग भी हुआ। कुछ कवियों ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का भी प्रयोग किया किन्तु इस क्षेत्र में इस समय कोई स्वतंत्र एवं नवीन प्रयास दिखाई नहीं पड़ता है फिर भी भारतेन्दु युग की कविताओं में नवीन छंदों का अभाव खटकता नहीं है।

निष्कर्ष : भारतेन्दु और उनके मण्डल के अधिकांश साहित्यकार प्रधानतः देशप्रेमी, पत्रकार और प्रचारक अधिक हैं, कवि और साहित्यकार कम। उनमें विचारों और अनुभूति की गहनता की अपेक्षाकृत कमी है और यही कारण भी है कि, इस काल की कविता में कलात्मक अभिव्यक्ति का अभाव है। इस काल की अधिकांश रचनाएँ न तो अधिक सरस हैं और न ही साहित्यिक, किन्तु भारतेन्दु, प्रेमघन और बालमुकुंद गुप्त की रचनाएँ काफी सरस और मधुर हैं। भारतेन्दु काल की कविता का महत्त्व जीवन और साहित्य के अनुशीलन की दृष्टि में है। इन कवियों को अपने कर्तव्यों तथा दायित्यों का पूर्ण ज्ञान है। इन कवियों ने तत्कालीन जीवन में डूब कर कटु सत्यों का यथार्थ वर्णन किया है। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही भारतेन्दु कालीन कविता का महत्त्व भी है।

२.४ द्विवेदी युग (सन १९०१ से १९१८)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आधुनिक हिन्दी कविता में पुनः एक नया मोड़ आया। यहाँ आते-आते भारतीय जनमानस में महरानी विक्टोरिया के प्रति कृतज्ञता का भाव कम हो गया। राजभक्ति का स्वर क्षीण हो गया और उसकी जगह शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना जागृत हुई। हिन्दी साहित्य में इस परिवर्तन युग के सबसे महान युग प्रवर्तक पुरुष एवं नायक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इस युग का कोई भी साहित्यिक आंदोलन गद्य अथवा पद्य का ऐसा नहीं जो कि, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनसे प्रभावित न हुआ हो। साहित्यिक दृष्टि से द्विवेदी जी एक कवि की अपेक्षा अनुवादक और पत्रकार अधिक थे। उनकी मौलिक रचनाओं का अधिक महत्त्व नहीं किन्तु, वे एक महान शक्ति के प्रतीक थे जिन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अद्भुत बल प्रदान किया। द्विवेदी जी के समान ही उनकी 'सरस्वती' पत्रिका भी अपने आप में एक संस्था थी। सन १९०३ में द्विवेदी जी ने सरस्वती का संपादन अपने हाथ में लिया और उसके माध्यम से खड़ी बोली हिन्दी को परिष्कृत-परिमार्जित करने में विशेष योग दिया। अपनी और अपने समय के अन्य कवियों की नवीन भावबोध से समन्वित कविताओं को 'सरस्वती' में स्थान देकर कवियों को काव्य रचना के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने अनेक नए कवि और लेखक तैयार किए, उनकी गद्य शैली और भाषा का संस्कार किया। उन्होंने भाषा की अस्थिरता दूर करके तथा उसका व्याकरण 'शुद्ध' करके उसे एक स्थिर रूप तथा व्याकरण दिया। विभक्तियों के प्रचार और पैराग्राफ पद्धति का श्रेय भी उन्हीं को है।

निःसंदेह भारतेन्दु युग में कविता ने नवीन मोड़ लिया और उसमें आधुनिकता का सहज समावेश हुआ, किन्तु उसमें प्राचीनता के प्रति मोह भी बना रहा। द्विवेदी युग में पहुँचते-पहुँचते कविता में बाल-सुलभ चंचलता और विमोहकता का स्थान अनुशासन, गंभीरता और विचारात्मकता ने ले लिया। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के भाव पक्ष और कलापक्ष इन दोनों में एक नूतन आदर्श की प्रतिष्ठा की। इस युग में हिन्दी साहित्य की नवीन परंपरा का यथेष्ट परिमार्जन तथा विकास हुआ। लगभग दो दशकों की इस छोटी सी अवधि में एक साहित्यिक अनेकरूपता आई। विशेषकर इस युग में हिन्दी साहित्य की कविता में प्रौढ़ता का संचार हुआ। इस युग के प्रमुख कवियों में श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि प्रमुख हैं।

इस युग की काव्यगत प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं -

२.५ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

१) देशभक्ति की कविता

इस काल के प्रत्येक कवि ने देशभक्ति के संबंध में कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। यहाँ देशभक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति छोटी-छोटी फुटकर कविताओं और प्रबंध काव्य दोनों रूपों में हुई। गुप्त जी का साकेत, उपाध्याय जी का प्रियप्रवास, रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणि' और सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरदूत' जहाँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रंथ हैं, वहाँ देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभूतियों के भी भव्य निदर्शन हैं। द्विवेदी युगीन काव्यधारा में व्यक्त राष्ट्रीय भावना की एक प्रमुख विशेषता राजनीतिक चेतना का स्वर है। कांग्रेस के आंदोलन में स्वदेशी की लहर दौड़ गई थी और उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी दिखाई देने लगा था। जैसा कि, श्रीधर पाठक एक कविता में विद्यार्थियों को सतसेवा का व्रत धारण कर देश की उन्नति करने को प्रेरित करते हैं -

"अहो छात्रवर वृंद नव्य भारत सुत प्यारे।
मातृगर्व सर्वस्व मोदप्रद गोद दुलारे॥
सतसेवा व्रतधार जगत के हरो क्लेश तुम।
देशप्रेम में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम॥"

इस काल के कवियों की कविताओं में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक तीव्र आक्रोश और क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों और कृषक-मजदूरों की दुरवस्था का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत कर इन कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग करते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया है। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में यही भाव दिखाई देता है –

munotes.in

उठो त्याग दें द्वेष एक ही सबके मत हों,
सीऊ ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल उन्नत हों।
सुख-सुधार संपत्ति शान्ति भारत में भर दें
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें॥

२) मानवतावादी विचारधारा

द्विवेदी युग की काव्यधारा की दूसरी मुख्य विशेषता मानवतावादी विचारधारा है। इस मानवतावादी विचारधारा के द्विवेदी युगीन काव्य में तीन स्वरूप मिलते हैं -

i) **समानता की भावना** - इसके अंतर्गत स्त्री-पुरुष की समानता आती है। वास्तव में इस काल के कवि महिला समाज में जागृति चाहते थे। इसलिए वे कभी प्राचीन काल के नारी के महान स्वरूप की चर्चा करते हैं तो कभी लोकसेविका के रूप में उसे प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं इस काल में नारी समर्पिता के रूप में भी चित्रित हुई है। जैसा कि श्रीधर पाठक लिखते हैं -

"अहो पूज्य भारत महिला गण, अहो आर्य कुल प्यारी।
अहो आर्य गृह लक्ष्मी, सरस्वती आर्यलोक उजियारी॥
आर्य जगत में पुनः जननि निज जीवन ज्योत जगाओ।
आर्य हृदय में पुनः आर्यता का सुचि स्रोत बहाओ॥"

यहाँ हम कह सकते है कि, भारतेन्दु युग में नारी को पुनः सम्माननीया रूप में देखने का प्रयत्न हो रहा था और द्विवेदी युग में नारीत्व के प्रति ठोस स्थापना हुई। गुप्त जी ने युग-युग की तपस्विनी नारी का बड़ा ही उदात्त चित्र खींचा है -

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

ii) **पीड़ित दुःखियों के प्रति सहानुभूति** - द्विवेदी युगीन काव्यधारा के मूल में जो मानवतावादी विचारधारा प्रवाहित हुई, उसमें गरीब, किसान, विधवा, अछूत आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

iii) **मानवीय गुणों की सहज स्थापना** – इसके द्वारा परम सत्य के स्वरूप की प्राप्ति की बात भी इस युग में की गई। मानव सेवा ही इस युग की मूल दृष्टि रही। धीरे-धीरे परम्परागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरुप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन -दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया। गोपालशरण सिंह की कविताओं में इस भाव का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार
विश्व प्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार॥

३) बौद्धिकता का व्यापक प्रभाव

द्विवेदी युगीन काव्यधारा की तीसरी प्रमुख विशेषता है बुद्धिवाद की प्रमुखता। नवीन वैज्ञानिक युग के अनुकूल ही इस विचारधारा का विकास हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के संघर्षण एवं नवीन परिस्थियों के परिवर्तन से भारतीय संस्कृति की परीक्षा वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से होने लगी। इस बुद्धिवादी विचारधारा का द्विवेदी युग में बड़ा व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस युग की कविता में भी यह प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इस युग में सबसे अधिक क्रांति धार्मिक क्षेत्र में हुई। पुरानी रूढ़ियों एवं परम्पराओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखा गया। इस युग में राम के आगमन को नर में नारायणत्व की स्थापना माना गया। जैसा कि साकेत के राम कहते हैं -

"भव में नव वैभव प्राप्त करने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

इस प्रकार नर में नारायणत्व की उद्भावना इस युग की बुद्धिवादिता का स्वरूप है।

४) **श्रृंगार का बहिष्कार :** महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से इस युग की काव्यधारा नैतिकता के कठोर बंधन में जकड़-सी गई है। इस युग में श्रृंगार और प्रेम का जो डटकर विरोध हुआ, उसके स्वरूप का विवेचन करने के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त है - रामचरित उपाध्याय की कविता 'काम की करतूत' की निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ दर्शनीय है :-

रति के पति! तू प्रेतो से भी बढ़कर है, संदेह नहीं,
जिसके सिर पर तू चढ़ता है, उसको रुचता गेह नहीं।
मरघट उसको नंदनवन हैं, सुखद अंधेरी रात उसे,
कुश कंटक हैं फूल सेज से, उत्सव है बरसातों से।।

५) इतिवृत्तात्मक एवं गद्यात्मकता

इतिवृत्तात्मकता एवं गद्यात्मकता द्विवेदी युगीन कविता की एक प्रमुख विशेषता है। इस युग की कविता की शैली सरल गद्य शैली हो गई। कविता का उद्देश्य केवल उपयोगिता हो गया। उपयोगितावाद का स्वरूप काव्य में इतिवृत्तात्मक वर्णनों में दिखाई पड़ता है। उसमें विशेष कल्पना प्राचुर्य एवं सरसता और माधुर्य नहीं है। द्विवेदी जी की आदर्शवादिता, सात्विकता और संयम के प्रभाव के साथ-साथ अश्लीलता और श्रृंगारिकता आदि का बहिष्कार कर दिया गया। कविता में इतिवृत्तात्मकता (matter of fact) की प्रवृत्ति के फलस्वरूप उसमें लाक्षणिकता, चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम रह गई जो इस संसार की गति को तीव्र करके सहृदय के मन को आकर्षित किया करती है। कल्पना की लम्बी उड़ानों के सहारे रचे गए संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती। सन १९०७ में 'सरस्वती' में प्रकाशित एक कविता में इस इतिवृत्तात्मकता को देखा जा सकता है :

munotes.in

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रन्थ होते यदि विद्यमान।
तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।
हे ग्रन्थ ! द्रव्यादि न लेते, तो सुशिक्षा तुम नित्य देते ॥

६) **अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद की प्रचुरता :** द्विवेदी युग में 'सरस्वती' में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद भी छपा करते थे। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया और इस काल में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद व्यापक पैमाने पर हुए। जैसा कि, डॉ. रविन्द्रसहाय वर्मा ने लिखा है कि, "द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते हैं। १९०३ से १९०८ के मध्यवर्ती काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अथक परिश्रम किया। ये अनुवाद अनवरत रूप से 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहे।"

७) **नवीन एवं सामान्य लोकजीवन के विषयों का काव्य में निरूपण**

शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि, "बात यह थी कि, खड़ी बोली का प्रचार बराबर बढ़ता दिखाई देता था और काव्य के प्रवाह के लिए कुछ नई-नई भूमियाँ दिखाई पड़ती थीं। देश दशा, समाज दशा, स्वदेश प्रेम, आचरण संबंधी उपदेश आदि तक ही नई धारा की कविता न रहकर जीवन के कुछ और पक्षों की ओर भी बढ़ी पर गहराई के साथ बढ़ी। त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंग काव्यबद्ध हुए जिनके बीच-बीच में जन्मभूमि प्रेम, स्वजातीय गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करने वाले जोशीले भाषण भी रखे गए।" उदाहरण के लिए 'पराधीन प्राकृत' कविता में कांताप्रसाद गुरु ने खुशामदी भारत वासियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि -

"पराधीनता मे रह कर यह, अपना सब कुछ भूल गई,
भाषा, भोजन, भेष, भाव, भावी, सब बातें हुई नई।
अपनी जन्म भूमि का भी जब, इनको कोई ध्यान नहीं,
वन के जो प्यारे साथी हैं, उनकी भी पहचान नहीं॥"

इस प्रकार के नवीन सामाजिक विषयों की ओर झुकाव का संकेत करने वाले कवियों में गोपाल शरण सिंह, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध सिंह उपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

८) **आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण :** द्विवेदी युगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलंबन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह आदि कवियों की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के श्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। रामनरेश त्रिपाठी के खंडकाव्यों में प्रकृति के मोहक चित्र भरे पड़े हैं –

पर्वत शिखरों पर हिम गलकर, जल बनकर नालों में आकर।
छोटे बड़े चीकने अगणित शिला समूहों से टकराकर॥
गिरता उठता फेन बहाता अति कोलाहल हर – हर
वीर वाहिनी की गति से कहता रहता निसिवासर॥

९) छंद के क्षेत्र में स्वच्छंदता की ओर झुकाव और खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग

द्विवेदी युग आते-आते खड़ी बोली हिन्दी काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। प्रारम्भ में तो यह भाषा बड़ी अव्यवस्थित रही किन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से इसकी पदावली का परिष्कार हुआ। द्विवेदी जी ने कवियों को उनकी त्रुटियों की ओर संकेत भी किया और लगभग सबने उसका अनुकरण किया। इस युग की कविता में खड़ी बोली के दो रूप दिखाई देते हैं – एक, उसका वह रूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा, उसका वह रूप है जिसमें संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। यहाँ दोनों के एक-एक उदहारण प्रस्तुत हैं : ग

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है।
देश दशा पर प्यारे भाई – आई कितनी बार रुलाई। (महावीर प्रसाद द्विवेदी)

ठीक इसी प्रकार संस्कृतनिष्ट पदावली का एक उदाहरण देखिये :

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली ॥ (हरिऔध)

द्विवेदी जी छंद के क्षेत्र में पूर्णतः स्वच्छंदतावादी थे। उन्होने कवियों को विविध प्रकार के छंदों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। उनके द्वारा अतुकांत छंद को भी महत्त्व दिया गया। द्विवेदी जी ने संस्कृतवृत्तों का प्रयोग करने पर भी ज़ोर दिया। संस्कृत अतुकांत छंदों की माधुरी अयोध्यासिंह उपाध्याय की 'प्रियप्रवास' में भी देखी जा सकती है -

"कथन को अब न कुछ शेष है,
विनय यों करता दीन अब।"

इस युग के लावणी तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग करने वाले प्रमुख कवि श्रीधर पाठक हैं।

२.६ सारांश

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, द्विवेदी युग, भारतेन्दु युग और छायावादी युग के बीच की कड़ी है। यह युग भारतेन्दु युग से प्रभावित हुआ और इसने अग्रिम युग को प्रभावित किया। इस युग में कुछ कवि ऐसे हैं जिनकी कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं - मुक्त गीतात्मकता, भाषा की लाक्षणिकता और रहस्यात्मकता इन सबका मूल द्विवेदी युग की कविताओं में है। द्विवेदी युग के अंतिम वर्षों की रचनाओं से आधुनिक युग की छायावाद और रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं और प्रगतिवाद का संबंध भी इनसे जोड़ा जा सकता है। इस युग की हिन्दी कविता अहम् दायित्त्व से अनुप्राणित कविता है। उसमें मनोरंजन से अधिक गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। हर रूप में स्वतन्त्रता की दृष्टि से, नए विषयों की उद्भावना की दृष्टि से, नई चेतना की व्याख्या की दृष्टि से और भाषा संस्कार आदि दृष्टियों से द्विवेदी युग की कविता तत्कालीन भारतीय समाज के लिए तो महत्त्वपूर्ण थी ही आज के लिए भी अति प्रासंगिक है। यथा-

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, इसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्य भूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।

२.७ बोध प्रश्न

१. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियों को अंकित कीजिए ।

२. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताओं पर सोदाहरण चर्चा कीजिए।

३. द्विवेदी युगीन लक्षणों को रेखांकित कीजिए।

४. द्विवेदी युगीन काव्य समाज सुधारक काव्य है - चर्चा कीजिए।

२.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'कविवचन सुधा' पत्रिका के संपादक कौन है ?

२. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' किस युग के कवि है ?

३. हास्य व्यंग्य की अभिव्यक्ति किस युग में हुई हैं ?

४. भारतेन्दु युग ने काव्य में किस भाषा का प्रयोग किया है ?

५. भारतेन्दुजी ने अपने काव्य में कौनसे देव की आराधना की है ?

६. महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन किस वर्ष में किया ?

७. द्विवेदी युग के कवियों ने किस भाषा का प्रयोग किया है ?

८. 'दुर्गावती' किस कवि की रचना है ?

९. 'रंग में भंग' किस कवि की काव्य रचना है ?

१०. "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आंचल में है दूध और ऑखों में पानी ॥" प्रस्तुत पंक्तियां किस कवि की है?

२.९ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपूरक इतिहास - डॉ. सभापति मिश्र

२. आधुनिक हिन्दी साहित्यः वाद, प्रवृत्तियां एवं विमर्श - डॉ. दत्तात्रय मुरूमकर

३. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां - डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

५. हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

❖❖❖❖

इकाई : 3

३

छायावादी काव्य और प्रगतिवादी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

३.० इकाई की उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ छायावाद

३.३ छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

३.४ प्रगतिवाद

३.५ प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

३.६ सारांश

३.७ बोध प्रश्न

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

३.९ संदर्भ ग्रंथ

३.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के **छायावाद और प्रगतिवाद** की चर्चा की गई है। इस इकाई के अंतर्गत इन दोनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों अवगत कराना है। इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे। अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है।

३.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने

munotes.in

वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया। भारतेंदु युग ने हिन्दी साहित्य के लिए एक ऐसी आधारभूमि प्रदान की जहाँ से हिन्दी की दशा और दिशा दोनों बदलती है। समय के साथ वह आज़ादी की लड़ाई के समय भी अपनी केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन कर रही थी। सामान्य जनता की जागरूकता में भी हिन्दी साहित्य की प्रबल भूमिका थी। महात्मा गाँधी के साथ-साथ लगभग सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हिन्दी की सामर्थ्य को समझने लगे थे और देखते ही देखते खड़ी बोली हिन्दी सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का एक सूत्र बन गई। द्विवेदी युग के बाद की कविता को छायावाद और उसके बाद के कविताकाल को प्रगतिवादी कविता के नाम से अभिहित किया गया। यहाँ इन दोनों कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा।

३.२ छायावाद (१९१८ -१९३८)

दो विश्वयुद्धों के बीच की स्वच्छंदतावाद की कविता को सामान्यतः छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। छायावादी साहित्य कला और भाव के क्षेत्र में एक महान आंदोलन है जिसकी सर्वप्रमुख भावना आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है। हिन्दी साहित्य की प्रस्तुत काव्य धारा अपने आप में मौलिक और स्वतंत्र है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि, "बंगला में प्रतीकात्मक आध्यात्मवादी रचनाओं को छायावादी कहा जाता था। अतः उसके अनुकरण पर हिन्दी साहित्य में ऐसी रंचनाओं के लिए छायावाद नाम चल पड़ा।' वहीं जयशंकर प्रसाद का मानना है कि, "मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही क्रांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है।' छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है। छायावाद के नामकरण को लेकर भी प्रारंभ के विद्वानों में अनेक मतभेद रहे। फिर भी छायावादी कवियों ने इसी नाम को सहर्ष स्वीकार किया। इस काल की कविता के लिए 'छायावादी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **मुकुटधर पाण्डेय** ने किया था।

डॉ. नगेन्द्र ने इसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा तो **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने इसके सम्बन्ध में कहा कि 'छायावाद वास्तव में हृदय की अनुभूति है। वह भौतिक संसार के क्रोड़ में प्रवेश कर अनंत जीवन के तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन में जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।'

वहीं छायावाद को स्पष्ट करते हुए **महादेवी वर्मा** ने लिखा है कि 'छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ है अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हुआ, परन्तु उसकी सौन्दर्य दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है – यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देना है। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिए, क्योंकि यह स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता की प्रतिक्रया थी।'

सामान्यतः छायावाद का समय सन १९१८ से १९३८ ई. तक तक माना जाता है लेकिन, उसका प्रारंभ तो कुछ वर्ष पूर्व ही हो चुका था। कुछ विद्वानों का मानना है कि इसका प्रारंभ 'निराला' की रचना 'जूही की कली' – (सन -१९१६) में ही हो चुका था और जयशंकर प्रसाद जी की 'कामायनी' (सन – १९३६) इसके चरम उत्कर्ष की कृति है। लगभग २० वर्षों के अपने समय में छायावादी कविता ने हिन्दी साहित्य को अनंत समृद्धि प्रदान की। इसकी प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं -

३.३ छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

१) व्यक्तिवाद की प्रधानता :

हिन्दी के छायावादी काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति आधुनिक औद्यौगिकता में प्रेरित व्यक्तिवाद है। इस व्यक्तिवाद के फलस्वरूप छायावादी कवि ने स्वच्छंदतावाद, कलावाद की दुहाई दी जो नैसर्गिक थी। वास्तव में केवल आध्यात्मिक पक्ष या दार्शनिक अनुभूति ही छायावाद नहीं है, छायावादी कविता मूलतः व्यक्तिवादी कविता है, जिसमें मध्ययुगीन अवशेषों से युक्त भारतीय समाज और व्यक्ति के बीच व्यवधान और विरोध को वाणी मिली है। छायावादी काव्य में वैयक्तिक सुख-दुख की अभिव्यक्ति खुल कर हुई है। 'जयशंकर प्रसाद' का 'आँसू' तथा पंत जी के 'उच्छवास' और 'आँसू' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर निदर्शन है। जैसे -

"रो-रोकर, सिसक-सिसककर,
मैं कहता करुण कहानी,
तुम सुमन नोंचते रहते,
करते जानी अनजानी।"

डॉ. शिवदान सिंह चौहान इन कवियों की व्यक्तिवादिता के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'यहाँ कवि 'मैं' प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का 'मैं' था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके। छायावादी कवियों के भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता नहीं आ पाती।' जैसा कि निराला जी ने लिखा है –

'मैंने मैं शैली अपनाई
देख एक दुखी निज भाई।
दुःख की छाया पड़ी हृदय में,
झट उमड़ वेदना आई ॥

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति सुख-दुखों की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुःख की अनुभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छन्दता की ओर प्रवृत्त किया।

munotes.in

२) **प्रकृति-चित्रण :** सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे नारी सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य इन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। इस काव्य में प्रकृति का मानवीकरण सर्वत्र दिखाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौन्दर्य एवं प्रेम की अभिव्यक्ति की है। जैसा कि, पंत जी लिखते है -

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।"

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से छायावादी कवियों में पन्त जी का प्रथम और अतुलनीय स्थान है। इन्हें प्रकृति और कल्पना के सुकुमार कवि के रूप में भी देखा गया।

छायावाद के काव्य में प्रकृति की प्रतीकात्मकता का भी विशेष महत्त्व है। इन कवियों ने प्रकृति का प्रतीक रूप अपनी कविता में उपस्थित कर अपने काव्य की सुषमा को संवर्धित किया है। यहाँ प्रसाद जी द्वारा वर्णित एक प्रकृति चित्रण भी प्रस्तुत है -

"पगली, हाँ संभाल ले, कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी,अरी उठा बेसुध चंचल॥"

छायावादी कवि ने निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण भी प्रकृति के माध्यम से किया है - "मैं नीर भरी दुःख की बदली।" वैसे तो अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का ही वर्णन किया है परंतु कहीं-कहीं उसके उग्र रूप का भी चित्रण मिलता है।

३) **नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण**

छायावादी कवि का नारी चित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म और मर्यादित है। इसमें स्थूलता और नग्नता प्रायः नहीं के बराबर है फिर भी वह चित्रण एक नया कुतूहल उत्पन्न करता है। जैसे -

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥"

इन कवियों ने नारी जीवन को एक नई दृष्टि भी प्रदान की है। कवियों ने यहाँ प्रकृति को नारी रूप में तो देखा है लेकिन, उसका वह रूप आत्मा को प्रकाशित करने वाला भी है -

"तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणी, त्रिवेणी की लहरों का गान।

इनके प्रेम चित्रण में कोई लुकाव-छिपाव नहीं है, उसमें कवि की वैयक्तिकता है। इन्होने नारी संबंधी सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण करते समय स्थूल क्रिया-व्यापारों के चित्रण पर बल नहीं दिया है, भाव-दिशाओं का चित्रण अधिक है। इनकी प्रणय गाथा का अंत प्रायः दुःख, निराशा तथा असफलता में होता है। अतः उसमें मिलन अनुभूतियों की अपेक्षा विराहानुभूतियों का चित्रण

अधिक हुआ है और इस कार्य में इन्हें पूर्णतः सफलता भी मिली है। जैसा कि पन्त जी लिखते हैं –

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर , विरह अहह कराहते इस शब्द को।
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से, निठुर विधि ने आँसुओं से है लिखा।

४) रहस्यभावना

कुछ आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार, "विश्व के अथवा प्रकृति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढ़ी है तो किसी असीम के प्रति अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है।" छायावाद के प्रत्येक कवि ने फैशन के रूप में, नाम कमाने के रूप में या आंतरिक, अनुभूतियों के प्रदर्शन के रूप में रहस्यवादी भावना की अभिव्यक्ति की है। जैसे -

"पिय, चिरंतन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं,
तुम मुझमैं। फिर परिचय क्या?"

पन्त जी 'मौन निमंत्रण' कविता में जिज्ञासामयी रहस्य भावना से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। प्रकृति पर आधारित उनकी रहस्य चेतना का एक मार्मिक उदाहरण देखिये –

उस फ़ैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही माँ,
वह अपनी वय वाली में, सजा हृदय की थाली में।

प्रसाद, पन्त और महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों ने उस परब्रह्म के प्रति कौतूहल, जिज्ञासा, आश्चर्य और विषमय आदि भावों से आपूरित होकर रचनाएँ की हैं। इनकी रहस्यात्मकता विरहानुभूति से उपजी है। यहाँ मिलन की नहीं, मार्मिक विरह की व्यंजना व्यक्त हुई है। महादेवी वर्मा का रहस्यवाद तो उनकी आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति है –

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित-प्रति का अभिनन्दन रे !

निराला जी की कविताओं में भी भक्तिपरक रहस्य भावना देखी जा सकती है। उनकी रचनाओं पर अद्वैतवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है।

५) देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना

छायावादी कवियों ने रहस्यवाद के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना एवं देशप्रेम की भावना की भी सुंदर अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रीय जागरण काव्य राष्ट्रीय भावना को सदा साथ लेकर चला है। ये भावनाएँ कभी प्रकृति के प्रति अनुराग व्यक्त करती है -

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।"

तो कभी राजनीतिक आंदोलन के प्रति सक्रिय प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। जैसे -

"मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक ॥"

चूँकि, छायावादी काव्य दो महायुद्धों के बीच का काव्य है और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के भी चरमोत्कर्ष का यह समय है इसलिए राष्ट्रीयता की भावना का संचार इन कवियों के लिए समय की माँग भी थी। जनजागरण का सन्देश संप्रेषित करना इनका मूल मंतव्य है। निराला जी की कविता में भी राष्ट्रीयता का भाव विविध रूपों में व्यंजित हुआ है।

भारति जय विजय करे , कनक शस्य कमल धरे

तथा

क्लेद मुक्त अपना तन दूँगा
मुक्त करूँगा तुझे अटल।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि छायावाद की समयावधि में राजनीति के माध्यम से महात्मा गाँधी ने देश के लिए जो कार्य किया देशप्रेम की उस भावना को अपने काव्य के माध्यम से सामान्य जनता तक पहुँचाने का वही महत्त्वपूर्ण कार्य छायावादी कवियों ने किया।

६) वेदना और निराशा

छायावादी कवि अपने काव्य में अपने जीवन की वेदनाओं को ही अभिव्यक्त करता हुआ दिखाई देता है। यह वेदना कहीं करुणा के रूप में तो कहीं निराशा के रूप दिखाई देती है। प्रसाद जी एवं महादेवी वर्मा के काव्यों में अभिव्यक्त वेदना, सेवावाद, मानवतावाद तथा आध्यात्मवाद पर आधारित है। जैसा की - महादेवी वर्मा जी लिखती है -

"प्रिय! जिसने दुःख पाला हो!
वर दो यह मेरा आँसू,
उसके उर की माला हो!
मैं दुःख से श्रृंगार करूँगी "

महादेवी वर्मा के काव्य में यह वेदना आत्मा और परमात्मा के विछोह के रूप में उद्वेलित हुई है।

प्रसाद जी के काव्य में वियोग के अनेक रूप प्रस्फुटित हुए हैं। उनकी यह वेदना-भावना मनु के साथ अधिक सादृश्य ग्रहण करते हुए दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त वे अन्यत्र भी अपनी वेदनाजनित आँसुओं की चर्चा करते हैं। 'आँसू' में वे लिखते हैं

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई॥

७) पलायनवादिता

छायावादी कवियों में वेदना के साथ पलायनवादिता भी देखाई देती है। ये कवि यथार्थ के बंधनों से ऊब कर प्रकृति, रहस्य, कल्पना और क्रांति के स्वप्न लोकों में पलायन करते हुए दिखाई देते है -

"ले चल वहाँ भलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागरलहरी,
अंबर के कानों में गहरे,
निश्चल प्रेम कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनि रे॥"

८) **मानवतावाद :** छायावाद हिन्दी साहित्य का ऐसा काल खंड है जिसमें मानव-जीवन अपनी सम्पूर्ण विराटता के साथ प्रकट हुआ है। इस काल का काव्य तत्कालीन मानवजीवन का समीपी जीवन चित्र प्रस्तुत करता है। इन कवियों के काव्य में उपेक्षित और दीन –हीन व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति घृणा तथा समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए मंगल भावना दिखाई देती है। कल्याण की यही भावना कामायनी में भी देखी जा सकती है –

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, जग को सुखी बनाओ।

पन्त जी की अनेक कविताओं में भी मानवता के कल्याण की भावना देखी जा सकती है। निरला साहित्य में पीड़ितों के प्रति असीम संवेदना उमड़ती दिखाई देती है –

मानव मानव से नहीं भिन्न ,
निश्चय, हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर।

इस रूप में त्याग , सेवा, उदारता, सहानुभूति, सद्भाव, समता और लोक कल्याण की कामना आदि विविध भाव इन कविताओं में सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

छायावाद में काव्य संबंधी दृष्टिकोण कल्पनात्मक रहा है और उसमें सुंदर तत्त्व की प्रधानता बनी रही। छायावादी कवि के इस आदर्शवादी कल्पनात्मक दृष्टिकोण को उसके कला पक्ष में भी देखा जा सकता है।

९) युग का प्रभाव

यद्यपि की छायावादी युग में व्यक्तिवादिता का ही प्रभाव अधिक रहा फिर भी वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता और युग का प्रभाव भी इस काल की कविताओं पर दिखाई देता है। छायावादी कवियों ने वैज्ञानिक चेतना से भी प्रभाव ग्रहण किया है। अतिशय बौद्धिकता इसी वैज्ञानिक चेतना की उपज है। प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' में युग के समस्त घात-प्रतिघातों का प्रतिबिंब स्पष्ट है। मानवता के विजय की कामना करते हुए प्रसाद जी लिखते है कि,

"शक्ति के विद्युत कण, जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
समन्वय उनका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जय।"

पंत जी के काव्य में भी विकासवाद का वर्णन मिलता है। जैसे -

"जो है समर्थ जो शक्तिवान,
जीने का अधिकार उसे।"

यहाँ कहना उचित होगा कि यह युग विज्ञान का युग है अतः उससे कवियों का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

१०) श्रृंगारिकता की भावना एवं ऐंद्रिकता

छायावादी काव्य विशुद्ध सौंदर्यवादी और प्रेमवादी काव्य है। किन्तु, इसमें कहीं-कहीं ऐंद्रिकता और अश्लीलता की भावना अपरिपक्व एवं उच्छृंखल कवियों में पाई जाती है। प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा पंत और निराला आदि में श्रृंगार की भावना का संयमित रूप दिखाई देता है। जैसे-

"तुम कनक किरण के अंतराल में, लुक-छिपकर चलते हो क्यों।
मत मस्तक गर्व वहाँ करते, यौवन के धन रसकन ढरते।।" (जयशंकर प्रसाद)
वहीं बच्चन जी लिखते हैं कि,
"तब तक समझूँ कैसे प्यार, अधरों से जब तक न कराये,
प्यारी उस मधु रस का पाना।"

छायावादी कवियों नें श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। इनकी कविताओं में कहीं-कहीं मांसल श्रृंगार की भी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। निराला जी अपनी 'शेफालिका' कविता में लिखते हैं -

बंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
यौवन उभार ने / पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे – लाल सी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

छायावादी कवियों की श्रृंगारी भावना अति सूक्षम है । यद्यपि कि इन कवियों नें कहीं-कहीं पर स्थूल श्रृंगार को भी रूपायित किया है, लेकिन इसकी व्याप्ति व्यापक नहीं है ।

११) दार्शनिक चिंतन : छायावादी कविता में अनेक प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं का संगुफन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । इन कवियों के साहित्य में वेदों-उपनिषदों का प्रभाव तो दिखाई पड़ता ही है, साथ ही साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद, महात्मागाँधी और महर्षि अरविंद की विचारधाराओं की छाप भी है । इनके काव्य में दर्शन के कई रूप देखे जा सकते हैं। प्रसाद जी ने शैवागामों से प्रभावित होकर आनंदवाद की प्रतिष्ठा की है और कामायनी का साध्य – आनंद स्वीकार किया है –

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था ।

इसी प्रकार पन्त जी ने वेदों-उपनिषदों, अरविंद, महात्मागाँधी और विवेकानंद से प्रभाव ग्रहण कर काव्य प्रणयन किया । महादेवी वर्मा के काव्य में बौद्ध दर्शन का सविस्तार उल्लेख मिलता है और निराला जी की कविता 'तुम और मैं' में भी अद्वैत दर्शन देखा जा सकता है ।

भाषा की भास्वरता और शब्दविन्यास : खड़ी बोली की प्रतिष्ठा , परिष्कार और परिमार्जन द्विवेदी युग में ही संपन्न हो गया था, छायावाद में उस खड़ी बोली ने अपना काव्यात्मक और कलात्मक रूप प्राप्त किया । छायावादी कवियों का शब्द भण्डार संस्कृत की तत्सम शब्दावली बंगला, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी, और देशज आदि शब्दों से समृद्ध है । ये कवि शब्द चयन में बाहरी प्रभावों से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं । निराला की 'जूही की कली' कविता पर बँगला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । अंग्रेजी ने भी इन कवियों को दूर तक प्रभावित किया है ।

वास्तव में छायावादी साहित्य का कलापक्ष भी उतना ही सुंदर है जितना उसका भाव पक्ष है। इन कविताओं में प्रतिकात्मकता, चित्रात्मकता, भाषा एवं लाक्षणिक पदावली के साथ-साथ गेयता भी पाई जाती है। छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। अलंकार योजना में इन कवियों ने प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी के दो नवीन अलंकारों - मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय का भी अधिक उपयोग किया है। प्राकृतिक पदार्थों प्रातःकाल, संध्याकाल, बादल, सूर्य, चंद्रमा आदि जहाँ पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है वहाँ मानवीकरण है। कल्पना की अतिवादिता ने छायावाद को हमारे जीवन से दूर कर दिया और यही इसके पतन का कारण भी बना। कल्पना, क्लिष्टता के कारण जहाँ एक ओर इसमें अस्पष्टता आई वहाँ इसे अपेक्षित जनप्रियता भी प्राप्त न हो सकी। फिर भी छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ। छायावाद के आधार स्तम्भ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जी ने हिन्दी साहित्य संसार को जो निधि प्रदान की वह हिन्दी साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। डॉ. देवराज के अनुसार 'वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य को सुन्दर शब्दकोष और कोमल मधुर अनुभूतियाँ छायावाद की ऐतिहासिक देन हैं ।' छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक महान आन्दोलन के रूप में उभर कर आया और भाव तथा शैली दोनों स्तरों पर एक नई क्रांति के रूप में देखा गया ।

३.४ प्रगतिवादी हिन्दी कविता

प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक स्वस्थ्य एवं सामयिक दृष्टिकोण है। इसमें जनता की उस आशा, आकांक्षा एवं कर्मेच्छा की अभिव्यंजना हुई है जो देश, समाज और मनुष्य को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं बौद्धिक आस्था से मुक्त होने की प्रेरणा देती है। छायावाद की प्रेम सौन्दर्य की भावव्यंजना प्रगतिशील भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई। छायावादी 'छन्द- बन्ध' भी इस प्रगतिशील भाव सरिता को अपने कूलों (किनारा) में बांधने में समर्थ नहीं हुआ। अतः मुक्त छन्द की अवतारणा हुई जिसमें मुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रहारपूर्ण धारा में हुई। निराला जी के शब्दों में "वह कविता की स्त्री सुकुमारिता के विरूद्ध कवित्व का पुरुष गर्व है। प्रगतिशील यथार्थवाद के लिए मुक्त छन्द अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुआ।" पंत जी ने 'युगांत' में छायावाद का अंत करते हुए युग वाणी में जनवादी विचारधारा को अपनाया। 'ग्राम्या' में प्रगतिवाद मान्यताओं का व्यापक प्रयोग है। प्रगतिवाद का आलंबन जन-जीवन है और भारत में जन-जीवन के केंद्र हैं गाँव। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रगतिवादी कविता के संबंध में लिखा है कि, "यह युग की माँग को पूरा करनेवाला साहित्य है। इसकी शक्ति इस बात में है कि, वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है।"

वास्तव में प्रगतिवादी साहित्यिक आन्दोलन का मूल उद्देश्य साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना करना था। इस 'वाद' या साहित्यिक आन्दोलन में यह प्रतिबद्धता जर्मन विचारक कार्लमार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रेरित एवं प्रभावित होने के कारण आई। इस प्रकार इस वाद का आगमन आदर्शवाद के विरोध में हुआ। इसके लिए कार्लमार्क्स, लेनिन, वहाँ की मजदूर और किसानों द्वारा निर्मित सरकार तथा लाल सेना आदर्श बनी। इसीलिये प्रगतिवाद को मार्क्सवादी चिंतनधारा या साम्यवादी देशन का साहित्यिक संस्करण कहा गया। सामान्य रूप से इसका काल सन १९३८ से १९४३ तक माना गया। लेकिन, यह विचारधारा आज भी जीवित है और इसके भावों को केंद्र में रखकर रचनाएँ हो रही हैं।

प्रगतिवाद की काव्यधारा के प्रमुख कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, डॉ. रागेय राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र, त्रिलोचन, अमृतराय, राजेंद्र यादव, डॉ. महेंद्र भटनागर आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

३.५ प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ :

प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:

१) **सामाजिक यथार्थवाद :** जनसमूह की आर्थिक विषमता एवं राजनीतिक चेतना से उद्भुत इस जनवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक यथार्थवाद की है। सामंती तथा पूँजीवादी व्यवस्था प्रधान भारतीय समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों – रूढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, अथवा मान्यताओं से इस युग का कवि क्षुब्ध है। उसका मानना है कि इनके रहते सुन्दर समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। धर्म और अंधविश्वासों के नाम पर भोली – भाली जनता का

जो शोषण हो रहा है वह एक प्रकार का शोषण है और यह सब बंद होना चाहिए और सभी के जीवनावश्यक वस्तुओं की पूर्ति होनी चाहिए -

"तन को दो आहार अन्न का,
मन को चिंतन का अधिकार।तन मन दोनों बढ़े अगर तो,
चमक उठे सचमुच संसार॥"

यदि छायावादी काव्य में कल्पना प्रवण अंतर्दृष्टि का पल्लवन हुआ तो प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक यथार्थ दृष्टि मूल मंत्र के रूप में अभिव्यक्त हुई। यही प्रगतिवादी दृष्टिकोण है। विलासी उच्च समाज के आधार स्तम्भ कृषक और मजदूर है उन्हीं कृषक और मजदूरों को प्रगतिवाद ने अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए इनकी कविताएँ ग्रामीण जीवन के प्रति सहानुभूति सर्वत्र देखी जा सकती है जैसा कि - केदारनाथ अग्रवाल लिखते है कि -

"सड़े घूरे की बदबू से दबकर,
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है।"

भूख से बेहाल मानव का मार्मिक चित्रण निराला जी की 'भिक्षुक' कविता में भी देखा जा सकता है।

२) **सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेष्टता :** प्रगतिवादी कवि सामाजिक जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों की व्यंजना करता है। वह कल्पना लोक की उड़ानें नहीं भरता बल्कि अपने सामाजिक यथार्थ को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इस प्रकार जीवन और काव्य को अधिकाधिक घनिष्ठ बनाने के चेष्टा की गई। प्रगतिवाद का स्पष्ट विचार है कि -

"जो न समय की दर्दीली साँसों में मित बने,
गीतकार, ऐसे गीतों को धरती कभी न गाएगी।"

प्रगतिवादी आलोचकों का मत है कि कविता का संबंध सामाजिक वास्तविकता से है और वही कविता उत्कृष्ट है जो वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है। ये प्रगतिवादी कवि देश की समस्याओं के प्रति तो जागरूक हैं ही इससे आगे बढ़कर विश्व में कहीं भी मानवता के प्रति अन्याय होने पर अपनी संवेदना प्रकट करते है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अमेरिका द्वारा जापान पर गिराए गए परमाणु बम का प्रगतिवादी कवियों ने सम्पूर्ण मानवजाति पर एक अमानवीय आक्रमण माना। इसीलिये 'हिरोशिमा का शाप' कविता में कवि का कहता है कि -

"एक दिन न्यूयॉर्क भी मेरी तरह हो जाएगा,
जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जाएगा।
आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा,
न्यूयॉर्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पाएगा॥"

इसीप्रकार राष्ट्रपिता महात्मागांधी के ऊपर चली गोलियों से प्रगतिवादी कवि आहात हो जाता है –

बापू मरे ......
अनाथ हो गई भारत माता
अब क्या होगा .....

इसप्रकार इन प्रगतिवादी कवियों ने प्रारम्भ से ही बंगाल के अकाल, हिंदुस्तान का बँटवारा, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, भुखमरी, बाढ़, महामारी, महंगाई आदि सभी सामयिक घटनाओं पर अपनी जागरूकता प्रकट की है।

३) बौद्धिकता और व्यंग्य का प्रसार :

वैसे तो आधुनिक काल में द्विवेदी युग से ही साहित्य में बौद्धिकता का समावेश हुआ है। यह यंत्र युग की देन है। इसी कारण साहित्य में भी वैज्ञानिक दृष्टि से प्राचीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विश्लेषण हुआ। प्रगतिवाद में इस बौद्धिक दृष्टि का रूप जनजीवन की समस्याओं में दिखाई पड़ता है। कवि सुधार की भावना से प्रेरित होकर सामयिक समस्याओं के वर्णन में व्यंग्य दृष्टि जोड़ देता है। वह पूंजीवाद को, उसकी शोषण प्रवृत्ति को, आधुनिक राजनीति को उसकी झूठी लीडरी को तथा अन्य आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के समर्थकों को अपने व्यंग्यों का लक्ष्य बनाता है। 'पंत जी' 'ग्राम्या' में आर्थिक कमजोरी का वर्णन करते हुए एक भिखारी के संबंध में लिखते है -

"भुला है, कुछ पैसे या गुनगुना,
खड़ा हो जाता है वह,
पिछले पैरों के बल उठ,
जैसे कोई चल रहा जानवर।"

वही डॉ. मल्लखान सिंह की एक कविता में भी वेदनासिक्त वर्णन व्यंग्यात्मक रूप में अभिव्यक्त हुआ है -

"किसने यह संसार बनाया,
किसने रचा समाज,
श्रमजीवी का भाग भूख है,
कामचोर का काज।"

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विडम्बनाओं पर करारी चोट की है।

४) परिवर्तन की पुकार / क्रांति की भावना

प्रगतिवाद में प्राचीन का परिवर्तन कर नवीन युग के अनुकूल बनाने के प्रेरणा है। इस पुकार में कवियों की क्रांति की भावना मुखरित हुई है। इस काल का कवि जीर्ण रूढ़ियों- परम्पराओं के

विनाश के साथ-साथ शोषक वर्ग का भी विनाश चाहता है । इसलिए इस काल का कवि सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित होकर विप्लव गान करता है -

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं,
जिससे उथल-पुथल मच जाए,
नियम और उपनियमों के,
बंधन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा के,
सब तार मूक हो जाएँ।"

इस काल का कवि समाज के गलित अंगों को अलग करके उसके शरीर को दृढ़ और सुरक्षित बनाना चाहता है। कार्लमार्क्स की तरह ही इस विचाधारा का कवि रक्त-क्रांति से भी नहीं डरता है । उसकी इच्छा है कि सम्पूर्ण विष का सर्वहारा वर्ग सुख-शांतिमय जीवन तभी व्यतीत कर सकेगा जब शोषकों का सम्पूर्ण विनाश हो जाएगा । इस कार्य के लिए कवि केदारनाथ अग्रवाल साहित्य एवं कला से जुड़े लोगों का आह्वान करते हुए लिखते हैं –

हे दधीचि ! शक्ति डंका बजाओ,शांति का उल्लास सूरज उगाओ ।
लाल सोने का सबेरा चमचमाओ , लेखनी के लोक में आलोक लाओ ।

५) सांस्कृतिक समन्वय की भावना

कुछ प्रगतिशील रचनाकार एक नवीन विश्व संस्कृति की कल्पना करते हैं । मार्क्स ने जब यह कहा था कि आर्थिक व्यवस्था के आधार पर संस्कृति का निर्माण हो, तो उसका मतलब यह था कि, पुरानी संस्कृति के तत्त्व और स्वरूपों को साहित्यकार अपने में समेटकर अधिक पुष्ट और विकसित करे। इस प्रकार एक नवीन समन्वयात्मक संस्कृति को जन्म मिला। पंत जी के काव्य में सांस्कृतिक समन्वय की चर्चा है जिसके मूल में अरविंद का चेतनावाद और मार्क्स का समाजवाद है। पंत जी ने एक ऐसी संस्कृति की कल्पना की है जिसमें धर्म, जाति, वर्ण आदि के भेदभाव मिट जाएंगे और केवल मानव स्वभाव ही सुंदर मानव आदर्श बनकर अपूर्ण को पूर्ण और सुंदर बनाएगा -

"आज वृहत्त सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खंड मनुष्यता को युग-युग की होना है नवनिर्मित,
विविध जाति, वर्गों, धर्मों को होना है सहज समन्वित,
मध्य युगों की नैतिकता को मानवता में विकसित॥"

६) राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता की भावना :

प्रगतिवादी कविता में इन दोनों भावनाओं का विकास हुआ। यहाँ राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना का स्वरूप देश के अतीत गौरवगान से भिन्न है। इस काल का कवि अपने जनपद, प्रदेश,

देश आदि की ओर देखकर प्रसन्न होता है। इन कवियों ने राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय भावना का भी विकास किया। प्रगतिवादी विचारधारा के अनुसार विश्व में पूंजीवादी अर्थ नीति से पीड़ित निम्नवर्ग का एक विशाल समुदाय निर्मित हो गया है। इन्हीं मजदूरों और दीनजनों की प्रगति इस काल का कवि चाहता है। चूंकि, रूस इस दिशा की तरफ बढ़ रहा था इसलिए उसके प्रति इन कवियों में सद्भावना के विचार मिलते है। जैसे -

"लाल रूस है, ढाल साथियों,
सब मजदूर किसानों की,
वहाँ राज है पंचायत का,
वहाँ कहाँ है बेकरी ॥"

इसके अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर मैत्री की कामना भी इन कवियों ने की है -

"मुक्त भारत रहेगा, तब,
शांति-समता-पंथ-सहचर।
न्याय-नय का ध्वज उड़ाते,
चलोगे तुम युगल रहबर।"

७) मानवता की महत्ता का प्रकाशन :

सामाजिक यथार्थ की दृष्टि को अपनाकर भी प्रगतिवादी कहीं भी निराश नहीं होता। उसे मानवता की असीम शक्ति पर विश्वास है। प्रगतिशील कवियों ने कर्म का संदेश सुनाया है उठते हुए व्यक्ति को उठाया है और मानवता की शक्ति पर इतना विश्वास करता है कि, ईश्वर के अस्तित्व पर भी उसे संदेह होने लगता है। जैसे -

"जिसे तुम कहते हो भगवान,
जो बरसाता है जीवन में,
रोग-शोक-दुख-दैन्य अपार,
उसे सुनाने चले पुकार?"

प्रगतिवादी कवि मानव को संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना मानता है । उसके पास असीम शक्ति है। उसे अपने विकास के लिए भाग्य और ईश्वर नहीं बल्कि अपनी शक्ति पर विश्वास करना चाहिए । वह मानव की अनंत शक्ति के प्रति संकेत करते हुए कहता है –

सामने तूफ़ान है, पर बड़ा इंसान है ,
पैर से जिसने मिटा दी, संकटों की सृष्टि सारी ।- (महेंद्र भटनागर)

८) प्रेम का शुष्क एवं सामाजिक रूप :

कुछ आलोचक प्रगतिवाद पर नीरसता एवं शुष्कता का आरोप लगाते हुए उसमें प्रेम वर्णन के अभाव का संकेत देते है। वस्तुतः यह धारणा गलत है। प्रगतिवादी को भी प्रेम और उसका दुखड़ा है किन्तु जीवन में अन्य कष्टों के आगे उसका स्वर दब जाता है। डॉ. रांगेय राघव का मानना है

कि, "प्रेम का अपना स्थान है। प्रगतिवादियों ने प्रेम के प्रति प्रायः उदासीनता दिखाई है क्योंकि उन्होने प्रेम को उच्च वर्ग की विरासत माना है।" इनके अनुसार प्रेम भौतिक पर आश्रित होता है न की काल्पनिक पर। दो मनुष्यों की चेतना का समाश्रय प्रेम जब हृदय में उत्पन्न होता है तब व्यष्टि की भूमि में समष्टि का बीज पड़ता है और एक व्यापकता सामने आती है -

"कि चूम लिया तुमने प्यार से,
मेरी मुग्ध मुँदी पालको को
कि पुलकित हो ज्यों ही,
खोलकर आँखे देखा मैंने,
तुम्हारा वह अमिताभ मुखमंडल।
कि, लो खुल पड़े सत्ता के,
अगम देवालय के वातायन॥.......
शिशु की मुस्कान सी निर्मल,
यह दुग्ध धारा।
मानव की चिरकाम्या तुम्हारे प्यार की,
संजीवनी सुधा धारा।"

९) नारी स्वातंत्र्य की पुकार :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी को भी शोषित माना है। वह पुरुष की दासी बनकर बहुत समय से उसकी छाया बनी है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठी है। इस प्रकार नारी को विलास की सामग्री माननेवाले सामंती आदर्शो का उन्होने खुलकर विरोध किया। जैसे -

"योनि नहीं हैं रे नारी,
वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो,
वह रहे न नर पर अवसित ॥"

इस काल के कवियों ने नारी उत्थान को समाज के विकास के लिए अति आवश्यक माना। उनका मानना है कि नारी को आत्मनिर्भर बनना होगा। पुरुष की पराधीनता से वह तभी मुक्त हो सकती है। एक तरफ 'पन्त' जी ने कहा कि – ' मुक्त करो नारी को, सर्जक पत्नी प्यारी को' तो वहीं निराला जी 'विधवा' शीर्षक कविता में नारी के प्रति वेदना व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल – तांडव की समिति रेखा - सी
वह टूटे तरु की लता से दीन,
दलित भारत की विधवा है।'

यहाँ तक कि, इन प्रगतिवादी कवियों में पशु की भाँति रुदन करने वाली अबला के स्वतंत्रता की पुकार तथा वेश्या वर्ग के प्रति भी सहानुभूति दिखाई देती है। वेश्या वर्ग को प्रगतिवादी कवि मनुष्य की वासना का जीवित प्रतीक मानते है -

"माता बनी दुग्ध भर आया, किन्तु न भरता पापी पेट,
जननी बनकर भी पशुओं में, वहीं सकेगी लेटा।"

१०) **साम्यवादी व्यवस्था का यशोगान :** भारत में प्रगतिवादी आन्दोलन पाश्चात्य की देन है। कार्ल मार्क्स ने जिस साम्यवादी दर्शन की परिकल्पना की, उसके आधार पर उसे पहली सफलता रूस में प्राप्त हुई। अक्टूबर १९१७ में रूसी क्रांति के फलस्वरूप राजसी का अंत हुआ और किसानों, मजदूरों तथा कामगारों की सरकार स्थापित हुई। प्रगतिवादी कवियों को भारतीय समाज में व्याप्त पूँजीवादी एवं सामन्ती व्यवस्था के विनाश के लिए साम्यवादी सिद्धांत ही सर्वाधिक उपयुक्त लगी तथा सोवियत रूस की सर्वहारा सरकार उन्हें आदर्श प्रतीत हुई। इसलिए ये कवि उस शासन व्यवस्था तथा लाल सेना का यशोगान करते रहे। इस परिप्रेक्ष्य में रांगेय राघव का 'अजेय खंडहर' प्रबंध काव्य विशेष चर्चित रहा। इस सन्दर्भ में शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविताओं को भी देखा जा सकता है। रांगेय राघव ने तो रूस को गरीबों का मसीहा माना है –

लाल झंडा, लाल तारा, लाल सेना घर उसकी
वह समाधि हृदय –हृदय की आज अभिवादन रहे कर
वह गरीबों का मसीहा, दीप – सा अब भी चमकता
क्रान्ति के इस कठिन पथ पर एक आशा बन दमकता।

११) **प्रगतिवाद काव्य का कला-पक्ष**

प्रगतिवादी कवियों ने अपने समाज हितकारी विचारों को जन-जन को ग्राह्य बनाने के लिए सरक, व्यावहारिक भाषा अपनाई। यही कारण है कि इस काल की कविता की भाषा और शैली दोनों सुबोध और सुगम है। जैसा कि, कवि स्वयं कहता है -

"तुम वहाँ कर सको, जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए, क्या तुम्हें अलंकार ॥"

बीसवीं सदी का अधिकांश अवधी काव्य में भी प्रगतिवादी विचारों की अनुगूँज सूनी जा सकती है। भोजपुरी और राजस्थानी में भी इन कवियों सरल सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। छंद की दृष्टि से इन कवियों ने जनगीत एवं लोकगीतो की शैली अपनाकर नई धुनों का सृजन किया है। भाषा की दृष्टि से भी इन कवियों में प्रगति के दर्शन होते हैं। इनके यहाँ छंद की गति, लय, भाषा की सरलता एवं शब्दों की योजना बड़ी ही स्वाभाविक है। यहाँ कवि पन्त जी लिखते हैं कि -

"खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश।
अब गीत मुक्त औ, युगवाणी बहती आयास ॥"

वास्तव में प्रगतिवादी कवियों ने पूरी तरह से सामान्य जीवन के दुःख-दर्द को अपने काव्य में उकेरने का प्रयास किया है। इन्होनें कला के क्षेत्र में दैनिक जीवन को स्थान दिया है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार 'इस वर्ग के अनेक कवि मूलतः छायावादी हैं , जिन्होंने बीच-बीच में प्रगतिवादी कवितायें भी प्रस्तुत की हैं । इस प्रकार के कवियों में मुख्यतः सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, आदि का नाम उल्लेखनीय है ।' इसके अतिरिक्त दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, गोपालशरण सिंह तथा सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों का नाम प्रगतिवादी कवियों में सम्मान के साथ लिया जाता है ।

३.६ सारांश

छायावादी काव्य व्यक्तिवादी काव्य है इसीलिए छायावादी कविता में मानव जीवन की आशा-निराशा अभिव्यक्त हुई है आधुनिक जीवन शैली के चलते इस काव्य में एकांतता और असंतोष और स्वप्न लोक में विचरण करती मानवीय दृष्टिकोण प्रदर्शित होता है। प्रगतिवादी काव्य सामाजिक यथार्थवादी सौंदर्य दृष्टि के दर्शन करता है। यह मानवतावादी साहित्य है जिसमें उस तबके का वर्णन हुआ जो सदियों से दरिद्रता, अज्ञानी और गुलामी का जीवन जीते आये है।

३.७ बोध प्रश्न

१. छायावाद की काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए ।

२. छायावाद के संबंध में कवियों आलोचकों के विचारों का परिचय दीजिए ।

३. प्रगतिवाद कविता का दार्शनिकता का परिचय दीजिए ।

४. प्रगतिवादी काव्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'छायावादी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?
उत्तर - मुकुट घर पाण्डेय

२. 'छायावादी' को 'स्थूल के प्रति विद्रोह' किस विद्वान ने कहा
उत्तर - डॉ. नगेन्द्र

३. सामान्यतः छायावाद का समय माना जाता है?
उत्तर - सन १९१८ से १९३८ ई. तक

४. 'उस फैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही माँ। वह अपनी वय वाली में, सजा हृदय की थाली में ।। उकत पंक्तियाँ कौनसे छायावादी कवि ने लिखी है?
उत्तर - सुमित्रानंदन पंत

५. छायावादी कवियों ने अधिकांशतः कौनसी भाषा का प्रयोग किया है?

उत्तर - खडी बोली

६. प्रगतिवादी काव्य का प्रेरणा स्रोत माना जाता है

उत्तर - मार्क्सवाद

७. पंत जी की किस रचना में जनवादी विचारधारा को अपनाया गया है

उत्तर - युगांत

८. प्रगतिवादी काव्य का प्रमुख उद्देश्य था?

उत्तर - यथार्थवाद की स्थापना

९. भवानी प्रसाद मिश्र किस वाद के कवि माने जाते है?

उत्तर - प्रगतिवाद

१०. 'सड़े घूरे की बदबू से दबकर, महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है।" उक्त पंक्तियाँ किस कवि की है?

उत्तर - केदारनाथ अग्रवाल

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई : ४

४

प्रयोगवाद एवं नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ प्रयोगवाद

४.३ प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

४.४ नई कविता

४.५ नई कविता की प्रवृत्तियाँ

४.६ सारांश

४.७ बोध प्रश्न

४.८ लघुत्तरीय प्रश्न

४.९ संदर्भ ग्रंथ

४.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रयोगवाद और नई कविता की चर्चा की गई है | इस इकाई के अंतर्गत उक्त दोनों काव्यान्दोलनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है | इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों कालों की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे |

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है | इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे | अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है |

४.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता भी जिम्मेदार थी जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया | १९ वीं सदी के उत्तरार्ध

में नव चेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ | इस सदी में स्वतंत्रता प्राप्ति की जो ज्योति जली थी वह २० वीं सदी के प्रारंभ में ही एक मशाल के रूप में परिवर्तित हो गई | इस सदी के दूसरे दशक में महात्मागांधी के आगमन से इस संघर्ष को मानो पंख लग गए और देखते ही देखते यह आन्दोलन भारत के जन-जन तक पहुँच गया | इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया | २० वीं शताब्दी में द्विवेदीयुग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद और फिर नई कविता का आगमन होता है | निश्चित ही यह गुलामी का अंतिम दशक और आज़ादी का प्रथम दशक समाज और साहित्य दोनों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण रहा | इस इकाई के अंतर्गत इन दोनों कालखंडों और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा |

४.२ प्रयोगवाद और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का प्रारम्भ सन १९४३ में प्रथम 'तार सप्तक' के प्रकाशन से ही माना जाता है। इस 'तार सप्तक' में सात कवियों गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय की कविताओं का संग्रह हुआ। इसके बाद सन १९५१ में दूसरा सप्तक प्रकाशित हुआ जिसमें भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती की कवितायें संग्रहित हैं | समय तथा धारा परिवर्तन के साथ ये कवि नई कविता तथा उसके परवर्ती काव्यान्दोलनों के कवि के रूप में भी जाने तथा पहचाने गए |

प्रगतिवाद जब मार्क्सवादी दर्शन एवं दलगत राजनीति से बद्ध हो गया, उसमें राजनीतिक जागरूकता का प्राधान्य हो गया और सबसे अधिक मध्यमवर्गीय जीवन की चेतना का प्रकाशन करते-करते कविगण ऊब गए तो उनमें अहंवाद एवं वैयक्तिकता की भावना आई। इन भावनाओं को बढ़ानेवाला पाश्चात्य दार्शनिकों का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण है। इनपर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद और डार्विन के अस्तित्ववाद का विशेष प्रभाव पड़ा। प्रयोगवाद के मूल में भी समाजशास्त्रीय दर्शन है, किन्तु वह वैयक्तिकता एवं अहंवाद से अत्यधिक प्रभावित है। प्रयोगवादी कवियों पर मार्क्स के स्थान पर फ्रायड और डार्विन का अधिक प्रभाव पड़ा। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के सम्बन्ध में लिखते हैं कि –'प्रयोगों का लक्ष्य है – व्यापक सामाजिक सत्य के खंड-खंड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना, जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण संभव हो सके |' वहीं पं. नंददुलारे वाजपेयी जैसे विद्वान इसे एक अस्वस्थ धारा मानते हैं और लिखते हैं कि –'किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक सृजन का स्थान नहीं ले सकता |' यहाँ प्रयोगवाद की विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं।

1) **गहन वैयक्तिकता :** प्रयोगवादी कविता में वैक्तिकता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में हुई है| इन कवियों की यह घनघोर वैक्तिकता या तो उनका अहं है या उनके अहं भाव से ही उनकी गहन वैयक्तिकता पैदा हुई है | इस काव्यधारा में अहं एक सम्पूर्ण वाद के रूप में आया है | कवि अज्ञेय और नरेश कुमार ने इसे बड़ा विस्तार दिया है | कवि नरेश कुमार एक जगह लिखते हैं –

विश्व के इस रेत-वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ
XX XX
क्या नहीं तुम देखते ?
आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है |

अज्ञेय ने भी इस अहंनिष्ठ वैक्तिकता को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है |

२) सामाजिकता का अभाव

प्रयोगवादी कवि समाज कल्याण या वास्तविक यथार्थ के आदर्श को लेकर नहीं चलते। वस्तुतः ये कवि व्यक्ति को समाज में चलते हुए देखने के अभ्यासी नहीं है बल्कि, अपनी वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करके समाज के मध्यवर्गीय मानव की दुर्बलता का प्रकाशन करते हैं। इसलिए कहीं-कहीं अपनी यथार्थवादिता एवं ईमानदारी दिखाने के लिए यौन वर्जनाओं एवं कुंठित वासनाओं का चित्रण करते हैं तथा अनेकानेक ऐसे ही कौशलों का सहारा लेते हैं जिसमें मन की नग्नता एवं अश्लील मनोवृत्तियों का चित्रण मिलता है, जैसा कि इस धारा का कवि नारी को नागिन और बाघिन के रूप में चित्रित करता है -

"आओ मेरे आगे बैठो,
जैसी बैठी होती काली
काली नागिन दो जिव्हावाली....
उगलो जहर ओंठ पर.....
जैसे बैठी होती बाघिन
लगता हो,
अब झपटे मानो अब निगले।"

३) कल्पनाशीलता की प्रक्रिया

छायावादी कवियों ने प्रकृति के पुराने उपमानों को अपनी कल्पना का रंग देकर मधुरता उत्पन्न किए तो प्रयोगवादी कवियों ने उसकी क्षुद्रता का उद्घाटन करने में ही अपनी यथार्थवादिता का परिचय दिया। प्रयोगवादी कवि जहाँ भी अपनी दृष्टि डालते हैं वहीं से नग्न यथार्थवादिता को ढूँढ लाते हैं। जैसा कि अज्ञेय जी चाँदनी का उपहास करते हुए लिखते हैं -

"वंचना है चाँदनी सित,
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार,
शिशिर की राका-निशा की शांति है निस्सार !
दूर वह सब शांति, वह सित भव्यता, वह।"

४) लघुता के प्रति दृष्टिकोण

प्रयोगवादी कवियों ने अपने असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप ही मानव जगत के लघु और क्षुद्र प्राणियों पर साहित्यिक दृष्टिपात करके प्रकृति एवं यंत्र जगत की लघु वस्तुओं को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसलिए कविता में पहली बार 'चूड़ी का टुकड़ा', 'बाथरूम', 'गरम पकौड़ी', 'फटी ओढ़नी की चिन्दियाँ', 'तीन टांगों पर खड़ा सिर झुकाया हुआ गधा' इत्यादि का चित्रण हुआ। रात के एक चित्रण में यह प्रवृत्ति यहाँ लक्षित है -

"ठंडी हो रही है सत,

धीमी,

यंत्र की आवाज,

रह-रह गूँजती अज्ञात !

स्तब्धता को चीर देती है

कभी सीटी कहीं से दूर इंजन की

कहीं मच्छर तड़प भन-भन

अनोखा शोर करते हैं,

चूहे भूखे निकलकर

तोड़-ताबड़ जोर करते हैं | (महेंद्र भटनागर-टूटती श्रृंखलाएँ)

५) बौद्धिकता की प्रतिष्ठा

अतिशय बौद्धिकता प्रयोगवादी कवियों की प्रमुख विशेषता है | वे सारे तथ्यों का दर्शन बुद्धि के ही अलोक में करते हैं | प्रयोगवादी कवियों ने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की जैसा कि, धर्मवीर भारती ने लिखा है, "प्रयोगवादी कविता में भावना है किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं । सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा हैं और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनि मात्र है।" यहाँ इस बौद्धिकता को स्पष्ट करती हुई अज्ञेय की निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं-

"चलो उठें अब,

अब तक हम थे बंधु

सैर को आए -

और बैठे रहे तो

लोग कहेंगे,

धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं।

वह हम हों भी

तो यह हरी घास ही जाने।"

यहाँ कवि का हृदय समाज से भयभीत है क्योंकि वह अपनी भावुकता को भूलकर बौद्धिकता के विशेष तर्कवाद को अपना चुका है।

५) प्रेम का स्वरूप

प्रयोगवादी कवि काव्य में प्रेम का शाश्वत स्वरूप मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होकर प्रस्तुत करता है। उसमें साधनात्मक प्रेम का अभाव है और मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति की प्रचुरता है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी यौन वर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रयोगवादी कवि में न तो प्रेम का सामाजिक रूप है न रहस्यात्मक आवरण वाला और न ही छायावाद के समान सूक्ष्म एवं भावनात्मक। प्रयोगवादी कवि की वासना बादलों को देखकर उदीप्त हो उठती है और वह कहता है -

"आह मेरा श्वास है उत्तप्त -
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार -
प्यार है, अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि?"

६) विद्रोह का स्वर

इस काव्यधारा के अंतर्गत कला के क्षेत्र में छंद विधान तथा भाषा शैली के प्रति विद्रोह हुआ और भाव क्षेत्र में प्राचीन रूढ़ियों का परित्याग कर दिया गया। इसका कारण युद्धोत्तरकालीन मध्यवर्ग की जर्जर व्यवस्था है | मध्यवर्ग ने ही विद्रोह किया और इसी को प्रकट करने के लिए तीव्र उद्गार व्यक्त किए | सामाजिक परिस्थिति की उलझन का जो स्वर 'कुकुरमुत्ता' में मुखरित हुआ था, वह हिन्दी कविता में लम्बे समय तक बना रहा | अज्ञेय की कविता में भी कवि द्वारा आतताई सामाजिक परिवेश को चुनौती देखी जा सकती है -

"ठहर-ठहर आतताई ! जरा सुन ले।
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।"

७) **प्रकृति चित्रण :** छायावादी कविता में प्रकृति जिस बहुरंगी आभा के साथ प्रस्तुत हुई है, वह अत्यंत विलक्षण है | यहाँ अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती और नरेश मेहता आदि कवियों की रचनाओं में प्रकृति के अनेक सुन्दर रूप दिखाई देते हैं | कहीं प्रकृति का स्वतंत्र रूप अपनी सहजता के कारण आकर्षित करता है और कहीं उद्दीपन रूप चित्त को चंचल बनाकर आनंदित-पीड़ित करता है | अज्ञेय की 'अरी ओ करुणामय', तथा 'ऋतुराज' में प्रकृति का आलंबनगत तथा 'बावरा अहेरी' की कुछ कविताओं में प्रकृति का उद्दीपनगत रूप चित्रित हुआ है | भवानीप्रसाद मिश्र प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं और वे सतपुड़ा के जंगलों का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊंघते अनमने जंगल |
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं और आँख मीचे |

८) अतृप्त रागात्मकता

प्रयोगवादी कवियों के काव्य में अतृप्त रागात्मकता के दर्शन होते हैं। इन कवियों के प्रयोग की दिशा भी पूर्णतया निश्चित नहीं हुई है। अतः उनकी रागात्मकता वृत्ति पूर्ण तृप्त नहीं हो पाई है। अज्ञेय की 'प्रथम किरण' कविता इस प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण है| शमशेर की 'शरीर स्वप्न' कविता में भी हम इस प्रवृत्ति को देख सकते हैं :

"मकई से लाल गेहुएँ तलुए
मालिश से चिकने हैं,
सुखी-भूरी झड़ियों में व्यस्त,
चलती-फिरती पिंडलियाँ।
मोटी डाले जांघों से न अड़े।
सूरज का आइना जैसे नदियाँ
इन मर्दानी रातों की चमक,
इनको खूब पसंद।"

९) सामाजिक एवं राजनीतिक विद्रूपता के प्रति व्यंग्य

प्रयोगवादी कवियों ने जीवन की कुरूपताओं पर सर्वत्र व्यंग्य किया है। समाज के उन पक्षों को इन कवियों ने अपने काव्य में बड़ी सच्चाई के साथ चित्रित किया है जो दूर से सहज और सुन्दर तो लगते हैं लेकिन नजदीक जाने पर दुर्गन्ध ही आती है | यह स्थिति राजनीति की हो या किसी अन्य क्षेत्रों की, सभी विद्रूपताएँ इनके काव्य की वर्ण्य वस्तु रही हैं | महानगरों में पनपती वैश्यावृत्ति एवं क्लर्की प्रवृत्ति ने इन कवियों को अधिक आकर्षित किया। उदाहरणार्थ :

"सबेरे - सांझ चाय पीता है
डालडा खा खुशी से जीता है,
कौन जाने शरीर में क्या है
दिल है खाली, दिमाग रीता है
कलम से मन से काम करता है
यों ही हर दिन को शाम करता है
है समझदार कि साहब
बा-अदब झुककर सलाम करता है।
हौसले – दिल के थक जाते हैं ;
बाल जल्दी पक जाते हैं |
- (देवराज दिनेश)

ठीक इसी प्रकार आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय जी लिखते हैं :

साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ ! उत्तर दोगे ?
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया |

१०) वैचित्र्य प्रदर्शन

अधिकतर प्रयोगवादी कवि वैचित्र्य प्रदर्शन को लेकर चले हैं। उसमें वृत्ति का सहज संयोजन प्रायः नहीं मिलता है। कहीं-कहीं यह उनकी मानसिक उलझन को भी व्यक्त करता है। अज्ञेय की 'हवाई यात्रा' नामक कविता में इस विशेषता को देखा जा सकता है -

"अगर कहीं मैं तोता होता!
तो क्या होता?
तो क्या होता;
तो होता। (आह्लाद से झूमकर)
तो तो तो तो ता ता ता ता (निश्चय के स्वर में)
होता, होता होता होता।"

इस कविता में वृत्ति का अभिनिवेश नाम मात्र को नहीं है। केवल वर्ण्य और वर्णन का वैचित्र्य प्रदर्शन हुआ है।

११) व्यापक सौन्दर्य बोध

सौंदर्यवाद एक शाश्वत प्रवृत्ति है जो युगानुयुग प्रतीकों एवं भाषा शैली के माध्यम से प्रत्येक युग के साहित्य में प्रकट होती है। छायावाद को प्रसाद जी सौन्दर्य की शाश्वत प्रवृत्ति का युगानुरूप प्रकाशन मानते हैं। प्रगतिवाद में सौन्दर्य बोध के मानदंड बदले और क्षुद्र तथा निम्नस्तर के मानव जगत में सौंदर्य का बोध उद्घाटित हुआ। प्रयोगवादी कवि उससे कुछ और आगे बढ़ा। अब सौन्दर्य का विस्तार 'बाँस की टूटी हुई टाटी', 'कंकरीट के पोर्च', 'खंभे से लटकती ओढनी की दो-चार चिन्दियाँ' तक हो गया और इससे भी आगे बढ़कर अत्यंत गंदी जगह पर केवल 'तीन टाँगों पर खड़ा सिर झुकाया हुआ गधा' भी इन कवियों के सौन्दर्य बोध में आ जाता है। अति उपेक्षित वस्तु या स्थान का बड़ा सौंदर्यपूर्ण वर्णन करना इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। 'मेघराज इन्द्र' की 'हवा चली' कविता में इस प्रवृत्ति को देख सकते हैं -

"हवा चली।
छिपकली की टाँग,
मकड़ी के जाले में फँसी-रही, फँसी-रही।"

१२) शैली शिल्प की नवीन मान्यताएँ

बहुत से आलोचक तो प्रयोगवाद को शैली शिल्प के नवीन प्रयोगों तक ही सीमित मानते हैं। लेकिन, अज्ञेय जी इसे प्राचीनता के बहिष्कार और नूतनता के प्रवेश के बीच के समय का विविध प्रयोग मानते हैं । प्रयोगवादी काव्य में यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति अधिकतर प्रतीकों के माध्यम से हुई है। अज्ञेय की कविताओं में नग्न प्रतीकों के दर्शन होते हैं -

"सो रहा है झोंप अँधियारा,
नदी की जाँघ पर,
दो पंखुरिया,
भरी लाल गुलाब को; तकती पियासी
पिया-के ऊपर झुके उस फूल को।"

प्रयोगवादी प्रतीकात्मक शैली में छायावादी लाक्षणिक वक्रता के स्थान पर सांकेतिकता का आधिक्य है। प्रयोगवादी कवियों ने उपमानों की प्रतिक्रिया की और नए-नए उपमानों का प्रयोग किया। जैसे -

"मेरे सपने इस तरह टूट गए,
जैसे भुजा हुआ पापड़।"

प्रयोगवादी कवियों ने शैली के भी अनेकों नवीन प्रयोग किए और ऐसा करने में कहीं-कहीं भाव बिल्कुल लुप्त हो गया, केवल विलक्षणता और दुरूहता ही पाठकों के पास पहुँची। जैसे -

"खामोश
हो,
होश..... न खो
रो मगर...... जी।
xx xx
तू - ही
तू - ही
तू - ही।"

प्रयोगवादी कवि भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोगों के पक्षपाती हैं । इसलिए कहीं-कहीं प्रादेशिक शब्दों से और शब्दों के तोड़-मरोड़ से इनकी भाषा में भदेसपन आ गया है। जैसे - गोरियाँ, छोरियाँ, भोरियाँ आदि।

प्रयोगवादी कवियों के प्रयोगों का अंत यहीं नहीं होता बल्कि इसका प्रभाव छंदों पर भी पड़ता है। जैसे -

"चलते चलो, चलते चलो
सूरज के संग-संग चलते चलो, चलते चलो।
तम के जो बंदी थे,
सूरज ने मुक्त किए
किरणों ने गगन पोंछ
धरती को रंग दिया।"

इस प्रकार प्रयोगवादी कविता यथार्थता को अभिव्यक्त करती हुई और अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हुई धीरे-धीरे नई कविता का रूप धारण करने लगी। इन दोनों के बीच अत्यधिक समानता भी है इसलिए आ. नन्ददुलारे वाजपेयी प्रयोगवादी कविता के संबंध में लिखते हैं कि, 'प्रयोगवादी कविताओं में अनुभूति की ईमानदारी का अभाव है। सामाजिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा बुद्धिग्रस्तता वैचित्र्य की व्यापक प्रवृत्ति, वृत्ति के सहज अभिनिवेश का अभाव लक्षित होता है|' डॉ. नगेन्द्र को तो 'प्रयोगवादी कविता अत्यंत दुरूह और बौद्धिक' लगती है | वैसे, यदि इस दुरूहता को स्वीकार कर भी लिया जाए तो भी प्रयोगवादी कविता की इतनी उपलब्धियाँ हैं, जिससे उसके महत्त्व और आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में उसकी अपरिहार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता| प्रयोगवादी कविता जीवनानुभूति की कविता है जो सीधे मिट्टी और आदमी की गहरी संवेदना से संलिप्त है | वह आदमी की सम्पूर्ण चेतना को प्रकृति में शब्दायित करती है |

४.३ नई कविता

प्रयोगवाद के अनंतर तीसरे सप्तक के प्रकाशन के बाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में कविता का एक नया रूप उभरा, जिसे नई कविता के नाम से अभिहित किया गया। इससे पूर्व इसे अकविता, नकविता, अस्वीकृत कविता, श्मशानी कविता व भूखी पीढ़ी की कविता आदि अनेक पड़ावों से गुजरना पड़ा। किन्तु, बाद में नई कविता अस्पष्टता आदि के कुहासे को पार कर सर्वसम्मत रूप से नई कविता के नाम से पुकारी जाने लगी। इसमें आधुनिक जीवन बोध, वर्तमान जीवन की असंगतियाँ और उलझनें, एक प्रौढ़ मानवतावादी स्वर, जीवन के अजनबीपन, अकेलापन, टूटन, झटकते हुए परिसंबंध, नवजीवन सौन्दर्य, नवीन शिल्प, सपाट बयानी आदि की प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। निष्कर्षतः 'नई कविता' एक नई मनःस्थिति का एक प्रतिबिंब है। एक नए रागात्मक संबंध का एक नया मोड़ है। मानवजाति और सृष्टि के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में मानव और मानवजाति का नया संबंध नई कविता की मूल विशिष्टता है।

श्री गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार –'मौजूदा कविता के अंतर्गत वे दोनों ही प्रकार की कविताएँ कही जाती रही हैं जिनमें एक ओर या तो शैली-शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं और दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है | लेकिन नई कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्त्वों का संतुलन और समन्वय है | यह नई कविता नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है | उसकी नजर अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है |' इस कविता की विशिष्टतायें निम्नवत हैं : -

४.४ नई कविता का प्रमुख प्रवृत्तियाँ

१) मानव ही केंद्र बिन्दु

नई कविता में मानव को दो रूपों में चित्रित किया गया है - एक रूप में मानव व्यक्ति पर आग्रह है - उसके व्यक्तित्व के विकास, उसके मन की पहचान, उसकी राग-विरागात्मक वृत्तियों को

समझना आदि। दूसरे रूप में मानव समष्टि पर आग्रह है। नई कविता का कवि आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक ऐसे मानव की स्थापना करना चाहता है, जो समाज की कुरूपताओं, कलुषताओं, रूढ़ियों और खोखली परम्पराओं के प्रति तीव्र विद्रोह कर एक स्वस्थ सामजिक जीवन दर्शन को तलाशने व उसके अनुरूप इतिहास निर्माण की चेष्टा में कुशल है | इसमें सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों की चर्चा व्यापक रूप में की गई है। जैसा कि - गिरिजाकुमार माथुर भावी उज्जवल मानवता की आशा करते हुए लिखते हैं कि -

"अब युग की अँधियारी रजनी मिटने को है,
जन रवि का उग्र प्रकाश चरण,
अंकित हो रहा है, धरा के मैले अंचल पर,
जिसमें मानवता छिपी धूप बन सोती है।"

२) अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थवादी दृष्टि

यह दोनों वस्तुएँ इस कविता की मुख्य तत्व हैं । अनुभूति की सच्चाई का संबंध चाहे एक क्षण से हो या चाहे समूचे काल से, किसी सामान्य व्यक्ति का हो या किसी विशेष पुरुष की, आशा का हो या निराशा का, वह सब कविता के लिए मूल्यवान है। आज का अभिनव बुद्धिवाद, आधुनिक कवि की यथार्थ दृष्टि में सन्निहित है। यही उसके मानव की चेतना की पहचान है। मनुष्य का दर्द मूलतः एक है और नई कविता का कवि बड़ी ही ईमानदारी से उस वेदना को अभिव्यक्त करता है - 'अज्ञेय' के शब्दों में-

"चेहरे थे असंख्य,
आँखे भी,
दर्द सभी में था
जीवन का दर्द सभी ने जाना था।"

३) **मानवीय प्रेम-भावना** : 'नयी कविता' में प्राप्त प्रेम-भावना की आकर्षक विशेषता उसकी नितांत मानवीयता है | हार्दिकता, सरलता, मानवीयता एवं मार्मिकता 'नयी कविता' में प्राप्त अधिकांश प्रेम-प्रसंगों की अपनी विशेषतायें हैं | नगर में नौकरी करने वाला पति छुट्टी पर गाँव में रहने वाली प्रेयसी के वियोग के समय को किस प्रकार काट रहा है-

अभी तो मेरी छुट्टी के तैतीस दिन हैं...
आज तो बीत ही चला बत्तीस समझो,
कल दिन भर व्यस्त रहूँगा
तो इकतीस –
गया एक मास , तीस रोज |

नई कविता की प्रेमभावना में कहीं-कहीं वासनामय भाव भी देखा जा सकता है –

आज मुख्य मेहमान हो तुम
रात के इस फ्लोर शो में
एक बार, बस एक बार, अपने तन की छाप
छोड़ जाओ मुझ पर |

४) क्षणवाद का चित्रण

यह कविता जीवन के एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी शक्ति के साथ भोगने का आग्रह करती है। क्षणबोध शाश्वत जीवन-बोध का विरोधी नहीं बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है | क्षण में दिखाई देने वाले किसी जीवन सौन्दर्यमय भाव में अनुभूत होने वाली जीवन व्यथा, जीवन का उल्लास, क्षण में दिख पड़ने वाली मनःस्थिति या बाहरी व्यापार कोई छोटा सत्य नहीं होता | उसका जीवन और साहित्य में एक अपना मूल्य है - वह क्षण की मार्मिक सत्यानुभूति के साथ जीवन को एक नवीन सार्थकता प्रदान करती है। जैसा कि, धर्मवीर भारती जी 'अंधा युग' में लिखते है -

"जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।"

५) लोक संपर्क

नई कविता का कवि यथार्थ के प्रति जागरूक रहना चाहता है। उसकी दृष्टि भविष्य पर भी लगी है और संघर्षजन्य कटुताओं के बीच भी लोकसम्पर्क बनाए रखना चाहता है। नई कविता के रचनाकार अधिकतर मध्यवर्ग से ही सम्बद्ध रहे हैं इसलिए इनकी रचनाओं में उनके समय का पूरा परिवेश झलकता है | यही कारण है कि यहाँ शहर और गाँव दोनों के दर्शन होते हैं | गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों में -

"आज दुनिया के करोड़ो आदमी,
सह रहे हैं धूप, सर्दी और नमी।
जिंदगी का एक भी साधन नहीं।
उग्र तपती धूप है, सावन नहीं॥"

नई कविता किसी वाद विशेष में नहीं फँसना चाहती और जनविरोधी राजनीति की तीव्र आलोचना करती है।

६) परंपरा विरोधी

नई कविता में पुरातन परम्पराओं के प्रति कोई विशेष आस्था नहीं है | इस धारा का कवि आज परम्पराओं को संघर्षपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त समझता है | यही कारण है कि नई कविता में आज का सामाजिक , आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परम्पराओं से व्याप्त मानवी जीवन के प्रति उदासीनता, निराशा और अविश्वास की भावनाएँ अधिक उभरी हैं | परंपरा के दूर हट जाने के कारण आधुनिक नवीन कवि स्वयं मोह ग्रस्त है और उसे जीवन का कोई स्पष्ट मार्ग दिखाई नहीं देता है। कुछ कवितायें स्वस्थ दृष्टिकोण में अवश्य लिखी गई हैं, जिसका एक उदाहरण यहाँ दर्शनीय है -

"जीवन कभी सुना न हो
कुछ मैं कहुं कुछ तुम कहो
संसार मेरा मीत है
सौंदर्य मेरा गीत है,
मैंने कभी सोचा नहीं
क्या हार है क्या जीत है
सुख-दुःख मुझे जो भी मिले
कुछ मैं कहूँ कुछ तुम कहो।"

७) आधुनिकता का आग्रह

नई कविता में आधुनिक युग बोध और आधुनिक सौंदर्य बोध ये दोनों बातें बड़ी ज़ोर-शोर से उठाई गई हैं। आधुनिकता कोई बुरी वस्तु नहीं है और प्रत्येक युग के साहित्य में आधुनिकता पाई जाती है। आज का जीवनक्रम इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि जब तक हम आधुनिकता को समझने की चेष्टा करते हैं तब तक दूसरी आधुनिकता आ जाती है। नई कविता के कवियों ने यथासंभव इस आधुनिकता के प्रति अपना आग्रह दिखाया है।

८) **मानव मूल्यों के विघटन की पुकार :** जिन नैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मूल्यों को शाश्वत मानकर मानव-समाज उनके सहारे जीवन में शान्ति और सुख प्राप्त करने के लिए युगों-युगों से प्रयत्नशील रहते आया है वे दोनों विश्वयुद्धों के बाद खोखले साबित होने लगे थे | चारो तरफ बढ़ती व्यक्तिवादिता, चोरी, बेईमानी और रिश्वतखोरी आदि ने इन सभी मानवीय मूल्यों के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया था | इस विघटित अवस्था का वास्तविक चित्रण नई कविता में देखा जा सकता है | मूल्यों की दृष्टि से विघटित इसी दुनिया को देख कर कुँवर नारायण जी लिखते हैं कि –

पागल से लुटे-लुटे, जीवन से छूटे-छूटे
ऊपर से सटे-सटे
अन्दर से हटे – हटे –
कुछ ऐसी भी दुनिया जानी जाती है |

९) नई कविता और रस

आलोचकों द्वारा नई कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि, इसमें कोई रस नहीं होता और साधारणीकरण की मात्रा भी नहीं होती है किन्तु, यह आरोप पूरी तरह सत्य नहीं है | अच्छी व समर्थ नई कविता में इसकी भरपूर मात्रा होती है। भवानीप्रसाद मिश्र की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है

"जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
सभी किस्म के गीत बेचता हूँ।"

नई कविता का कवि तल्खी का स्वर भी उठाता है प्रातः काल का वर्णन करते हुए कवि की त्वचा ठंडी हवा का स्पर्श नहीं करती बल्कि, वर्तमान की कठिनाई उसे दिखाई देने लगती है। जैसा कि -

"सूरज उगते ही,
मनहूस लोग भजन गाने लगते हैं।
और हम अपनी बेकारी की,
सोचने लगते है।"

इसी प्रकार समाज की व्यभिचारी प्रवृत्ति का वर्णन भी इन कवियों ने बड़े ही अच्छे ढ़ंग से किया है। जैसे -

"अकेलेपन का साँप रेंग रहा है
और उगल रहा है आत्मरति का विष,
बंद दरवाजे,
और बिस्तरों पार खामोश पड़ी रही रात
नीली रोशनी में कैद।"

१०) कला पक्ष एवं शिल्प विधान

नई कविता में प्रतीक और बिम्ब विधान को छोड़ कर सपाट-बयानी पर अधिक बल दिया गया है। इस काल का कवि समस्त शासन और व्यवस्था तंत्र को तोड़ने के सात-साथ भाषा तंत्र को भी तोड़ना चाहता है | इन कवियों की भाषा अनुभव के निकट की होती है। इसमें कोई संकोच और झिझक नहीं है। भाषा के सरलता की एक बानगी देखिए -

"न कोई छोटा है न कोई बड़ा है,---
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है,
जो मेरे सामने मुरम्मत के लिए खड़ा है। - धूमिल

नई कविता में लोकभाषा नवीन शब्दों, लोकजीवन के नवीन प्रतीकों उपमानों और छंदों का प्रयोग किया गया है। नवीन भावों के लिए भाषा में नवीनता आवश्यक भी थी। अतः इन कवियों की भाषा सरल, छोटे वाक्यों, सुबोध तथा प्रचलित शब्दों यहाँ तक कि, अंग्रेजी के शब्दों, मुहावरों और

कहावतों आदि से परिपूर्ण होती है। भाषा, भाव एवं संगीतात्मकता की दृष्टि से नए कवियों ने लोक गीतों के प्रभाव को भी स्वीकार किया है।

नई कविता के नाम पर आज ढेरों कविताएं लिखी जा रही है जिनमें बहुधा परिपक्व जीवन दृष्टि और अकुशल हाथों का भोंडापन देखा जा सकता है। कहीं अनर्गल प्रलाप दिखाई देता है तो कहीं बौद्धिकता का अतिरेक, अतिशय यथार्थवाद, अस्तित्ववाद आदि का अधकचरा प्रभाव। वास्तव में नई कविता को अपने इन नकारात्मक पक्षों को छोडना होगा क्योंकि, नई कविता, नवीन काव्याभिरुचि, नवीन सौंदर्य और नए संवेदना की कविता है। निःसंदेह कुछ स्वस्थ्य दृष्टिकोण के आधुनिक कवियों ने कुछ अत्यंत सुंदर रचनाएँ की हैं। उनमें वह सब कुछ है जो जीवन के लिए है। इन कवियों ने नई कविता को अवांछित रूढ़ियों और राजनीति से बचाया है और उसे नवीन उद्भावनाओं तथा प्रशस्य सौंदर्य से संवलित किया है।

अंत में यही कहना समीचीन है कि, नई कविता के क्षेत्र में परिपक्व और अपरिपक्व दोनों प्रकार के कवि है। कुछ लोकविरोधी रचनाएँ करते है और कुछ पूर्णतः लोकोन्मुख । आज की कविता का मूल प्रश्न जीवन और जगत के ज्ञान के अधूरेपन या पूरेपन, विकारग्रस्तता या शुद्धता के प्रश्न के साथ अटूट रूप में जुड़ा हुआ है। नए कवि को ज्ञानपक्ष की अत्यंत आवश्यकता है। नई कविता में भी उच्चमध्यवर्ग तथा गरीब मध्यवर्ग - दो दल बन गए हैं। उनकी वर्गीय वृत्तियाँ उनके काव्य तथा साहित्य संबंधी सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। फिर भी नई कविता का कवि अपने युग के प्रति उत्तरदायी दिखाई देता है |

नई कविता के प्रमुख कवियों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय', डॉ. धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण शाही, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, दुष्यंतकुमार, गिरिजाकुमार माथुर, कीर्ति चौधरी आदि प्रमुख हैं।

४.६ सारांश

प्रयोगवाद के कवियों ने बौध्दिकवादी अवधारणा का अवलबंन किया है इस कारण प्रयोग वादी काव्य में भावनाओं का अभाव है और मानव जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए प्रयोगवादी काव्य, निराशा, कुंठा और वासनात्मक प्रवृत्ति की और कब खिच जाती है पता ही नहीं चलती। नई कविता का विषय क्षेत्र अति विस्तृत है इसीलिए जीवन के सभी प्रसंगों को आन्तरिक और बाह्य दृष्टि से विस्तृत वर्णन नई कविता में हुआ है। मुक्तक शैली के प्रयोग के कारण छंद, बिम्ब, प्रतीक और अलंकार के बंधन में नहीं फंसी।

४.७ बोध प्रश्न

१. प्रयोगवादी काव्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

२. प्रयोगवादी कविता का सोदाहरण समझाइए।

३. नई कविता की प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

४.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. प्रयोगवाद का आरंभ किस वर्ष से माना जाता है।

२. विद्वानों ने प्रयोगवाद का अर्थ क्या बताया है ?

३. प्रयोगवाद के प्रमुख कवि माने जाते है ?

४. बिंबवाद का प्रभाव किन कवियों पर रहा ?

५. किस काल के कवियों की कविताओं मे बौध्दिकता के कारण भावनात्मकता का अभाव है ?

६. नई कविता का प्रचलन कब से शुरू हुआ ?

७. 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन वर्ष है ?

८. 'परिवर्तन' कविता के कवि कौन है ?

९. कीर्ति चौधरी कौनसे सप्तक की कवियित्री है ?

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई : ५

५

आधुनिक हिन्दी साहित्य के साठोत्तरी कविता और समकालीन हिन्दी कविता प्रवृत्तियाँ और उपलबधियॉ

इकाई की रूपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य
५.१ प्रस्तावना
५.२ साठोत्तरी कविता
५.३ साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
५.४ समकालीन हिन्दी कविता
५.५ समकालीन हिन्दी कविता
५.६ सारांश
५.७ बोध प्रश्न
५.८ लघुत्तरीय प्रश्न
५.९ संदर्भ ग्रंथ

५.० उद्देश्य :

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के साठोत्तरी कविता, और समकालीन कविता की चर्चा की गई है | इस इकाई के अंतर्गत उक्त दोनों काव्यान्दोलनों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है | इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी उक्त दोनों काव्यधाराओं की कविताओं का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे |

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है | इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे | अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी कविता, नवगीत और समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है |

५.१ प्रस्तावना :

२०वीं के मध्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये उमंगों की जो ज्योति जली थी वह एक – डेढ़ दशकों में ही निराशा में बदलने लगी | जिन नैतिक मूल्यों को भारतीय समाज में जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक माना जाता रहा वे सब यहाँ आते-आते व्यर्थ सिद्ध होने लगे | सत्ता का अहंकार सत्ताधारियों

munotes.in

के सिर पर सवार होकर बोलने लगा था | परिणामस्वरूप सत्ता के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा होने लगा | बहुत जल्दी ही यह आन्दोलन भारत के जन-जन तक पहुँच गया | इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को भी विविध रूपों में प्रभावित किया | २० वीं शताब्दी में द्विवेदीयुग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद और फिर नई कविता उसके बाद साठोत्तरी कविता, नवगीत और समकालीन कविता का आगमन होता है | इस इकाई के अंतर्गत इन तीनों काव्यधाराओं और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा |

५.२ साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

साठोत्तरी कविता से तात्पर्य सन १९६० के बाद की कविता से है | लम्बे संघर्ष और अनंत बलिदानों के बाद प्राप्त आजादी के बाद का लगभग एक दशक भारतीय जनमानस के लिए मोहग्रस्तता का समय रहा | इस दशक में भारतीय जनता के मन में आज़ादी के बाद दिये गए आश्वासनों के प्रति एक भ्रम बैठा हुआ था | मौलिक अधिकार, सामाजिक न्याय और आर्थिक आत्मनिर्भरता का आश्वासन, विदेशनीति में पंचशील, अहिंसा और सहअस्तित्त्व का आधार, पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा प्रगति तथा आम आदमी की खुशहाली ऐसे ही भ्रम थे लेकिन समय के साथ इन सबसे धीरे-धीरे मोहभंग होने लगा था | चीन के आक्रमण में हुई पराजय से देश का स्वाभिमान तो आहत हुआ ही, देश की पूरी अर्थ व्यवस्था भी चरमरा उठी | खाद्यान्न की कमी, राजनीतिक क्षेत्रों में पैर फैलाता भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनैतिकता, व्यक्ति की गरिमा का ह्रास आदि के कारण चारो तरफ आशंकाएँ, अस्वीकृतियाँ, भय तथा निराशा और ऊहापोह की स्थिति पनपने लगी | एक तरह के असंतोष और अनुशासनहीनता की स्थिति तैयार होने लगी | गरीब और अमीर के बीच का फासला बढ़ने लगा | इन बदलावों ने तत्कालीन साहित्यकारों को भी गहराई तक प्रभावित किया परिणाम स्वरुप उनमें आक्रोश और विद्रोह का भाव अंकुरित होने लगा | यद्यपि कि साठोत्तरी कविता को लेकर हिन्दी आलोचना जगत में खूब खरी-खोटी कही गई | इस कविता और इसकी प्रवृत्तियों पर खूब आरोप भी लगाये गए लेकिन साठोत्तरी कविता निराला और मुक्तिबोध की ही परम्परा का विकास है | निराला और मुक्तिबोध का स्वर साठोत्तरी कविता तक पहुँचते –पहुँचते व्यंग्य और विद्रोह में परिवर्तित हो गया | यह कविता अपने समय का जीवंत दस्तावेज़ प्रस्तुत करती है | इस धारा के युवा कवि चारो ओर व्याप्त अस्थिरता, अस्तव्यस्तता, अराजकता और घुटन के परिदृश्य को रेखांकित करते हैं | इस प्रकार साठोत्तरी कविता धीरे-धीरे एक आन्दोलन का रूप धारण कर लेती है |

इन साठोत्तरी कवियों में लगभग सभी वही रचनाकार थे जो नई कविता में और उससे पूर्व प्रयोगवाद में भी लिख रहे थे | इनमें पन्त, बच्चन और दिनकर आदि कवियों से लेकर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि रचनारत थे तो दूसरी तरफ मुक्तिबोध, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, अरुण कमल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, राजकमल चौधरी, कैलाश वाजपेयी, मणिका मोहिनी, प्रयाग शुक्ल, राजीव सक्सेना और श्याम परमार आदि तमाम युवा रचनाकार भी थे | साठोत्तरी हिन्दी कविता में अकविता, शुद्ध कविता, ठोस कविता, सहज कविता,

ताजी कविता , सपाट कविता, युयुत्सु कविता, बीटनिक कविता , अस्वीकृत कविता, आक्रोशित कविता या अकविता आदि तमाम प्रवृत्तियाँ एक साथ विद्यमान थीं | एक तरह से इस समय कविता में 'वादों' की बाढ़ सी आई हुई थी | यही कारण है कि सन १९६७ के बाद की इन सभी काव्य प्रवृत्तियों को नामांकित करने के लिए एक समग्र नाम दिया गया – साठोत्तरी कविता | डॉ. रसाल सिंह के अनुसार –'साठोत्तरी कविता मूलतः सन १९६७ के बाद की कविता को कहा जाता है |' इस धारा के कवियों ने आजादी के बाद के लगभग डेढ़-दो दशकों के अपने कडवे अनुभवों को कविता का केन्द्रीय विषय बनाकर स्वतंत्रता के बाद के सत्ता प्रतिष्ठानों के आडम्बरों की बखिया उधेड़ना शुरू किया |

५.३ साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

साठोत्तरी युवा कवियों के काव्य में उनके निजी स्वर अपने मूल प्रवृत्तियों के साथ अभिव्यक्त हुए हैं | इन युवा कवियों ने इसी स्वर के बल पर परम्परा की रूढ़ अभिव्यक्तियों को तोड़ा है और समकालीन समाज, राजनीति तथा व्यवस्था से मोहभंग की स्थिति को उजागर किया है | इस कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है :

१) **मोहभंग के स्वर :** आज़ादी की लम्बी लड़ाई को भारतीय जनता जिस आशा और विश्वास के साथ देख रही थी, आज़ादी के बाद 'सब कुछ अच्छा' हो जाएगा के जो सपने देखे गए थे वे सपने आजादी के डेढ़ दशक बीतते – बीतते ही एक भ्रम की तरह लगने लगे | आजाद भारत में जनतंत्र के नाम पर मूल्यहीन राजनीति, अपराधीकरण, लूटमार, भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता का ही अधिक विकास हुआ | इसके परिणाम स्वरुप मानवीय संवेदना का ह्रास और अभिजात निरंकुशता को बढ़ावा मिला | इस अभिजात निरंकुशता ने लम्बे समय तक प्रजातंत्र के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग विपक्ष को पनपने ही नहीं दिया | विकास की जो धारा चली उसका पूर्ण लाभ सत्ता से जुड़े लोगों और उनके प्यादों तक सीमित रह गया | ऐसे में सामान्य जनता बहुत जल्दी ही स्वयं को ठगी हुई सी महशूस करने लगी और स्वतंत्र सरकार से उसका मोहभंग होने लगा | साठोत्तरी कविता के युवा कवि कुमार विकल इसी मोहभंग को केंद्र में रखते हुए लिखते हैं –

हमारे हिस्से के शहर में कभी भी आग नहीं जलती
सिर्फ राजमहल की आग की आँच पहुँचती है
इसलिए हमारी रोटियाँ कच्ची रह जाती हैं
हमारे कपड़े देर से सूखते हैं
हमारी नसों में दौड़ता खून जम जाता है
हमारे खून के खिलाफ
यह राजमहल की साजिश है
कि हमें आग नहीं
आग का भ्रम दिया जाता है |

२) **यौन सम्बन्धों की खुली अभिव्यक्ति :** वर्ष १९६० के बाद के साहित्यकार यौन सम्बन्धों के बारे में विशेष बदनाम हुए | यहाँ तक कि इस काल की कहानी भी इस प्रभाव से अपने को अलग नहीं रख सकी | पाश्चात्य साहित्य का यह प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है | साठोत्तरी कविता के कुछ कवियों का विद्रोह तो नारी के पाशविक उपभोग तक सिकुड़ कर रह गया क्योंकि उनके लिए स्त्री विलाश की एक वस्तु मात्र रह गई | हिन्दी कविता में यौन व्यवहारों को घृणित शब्दावली देने का श्रेय मुख्यरूप से अकवितावादियों को है | इन कविताओं में नारी या पुरुष के अंगों का चित्र खींचता कवि अनेक स्थानों पर अपनी मर्यादाओं को भी भूल जाता है| यहाँ कवि विद्रोह नारी के इर्द–गिर्द ही सिमटता दिखाई देता है –

एक नंगी औरत
आँख मींच हाथों से अंग ढाँप
चीत्कारती जा रही है | (चंद्रकांत देवताले)

साठोत्तरी पीढी के कवि चाहे अपनी जितनी सफाई दें , चाहे पेट को देह से अलग न मानकर इस प्रवृत्ति को उचित ठहराएँ, किन्तु इनकी विभत्सता किसी भी स्वस्थ समाज को स्वीकार्य नहीं हो सकती | एक विशेष आश्चर्य यहाँ यह भी होता है कि इस युग की कवयित्रियाँ भी सारे लाज-संकोच त्याग कर कवियों की उसी मर्यादाहीनता का समर्थन करती हैं –

सुबह से दिन डूबने तक
मैं इंतज़ार करती हूँ / रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर
एक दूसरे को कुत्ते की तरह चाटेंगे
विवाह के बाद ज़िंदा रहने के लिए
जानवर बनना जरूरी है | (मणिका मोहिनी)

इन कवियों की कविताओं को देखकर यही लगता है कि इस पूरी पीढी ने किसी न किसी रूप में अस्वाभाविक वामाचार, निर्वीर्य पौरुषहीनता और नपुंसकता को स्वेच्छा से अपना लिया है और सारा जीवन इसी यौन प्रक्रियाओं के आस-पास केन्द्रित हो गया है | इसीलिए यह कहने में भी उसे हिचक नही है कि –

मुझे माफ़ करना मेरी शताब्दी !
अभी नहीं आ सकता हूँ तेरे काम / क्योंकि मैं ....
अपनी नपुंसकता का इलाज़ करा रहा हूँ| (विनय 'मुखबिर')

३) **पारिवारिक विघटन के स्वर :** स्वतंत्रता के बाद शिक्षा (-?) जैसे-जैसे बढ़ने लगी वैसे-वैसे संयुक्त परिवारों का विघटन प्रारंभ हो गया और एकल परिवार बढ़ने लगे | लोग गाँव छोड़ कर नगरों की तरफ आकर्षित होने लगे और तनाव जीवन का अंग बनने लगा | इन तनावों को साठोत्तरी कविता के कवियों ने बेहिचक अभिव्यक्ति प्रदान की है –

जीवन के अनुभव का एक बोल कहता हूँ –
बाप कभी न बनना पैसे न हों यदि
बेटे और बेटियों के क्रोध से बचना | (राजेन्द्र किशोर)

ठीक इसी प्रकार राजकमल चौधरी ने 'मेरे पिता का परिवार' नामक कविता में एक संयुक्त परिवार में लड़ते हुए भाइयों और इधर-उधर पड़े हुए बच्चों का यथार्थ चित्रण किया है | इन कवियों ने 'विवाह को तोते की रट, और पत्नी को बासी चने जैसा माना है और विवाह को एक प्रकार के समझौते के रूप में प्रस्तुत किया है | इनके यहाँ पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव और एक दूसरे से स्वतंत्रता की ललक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है| जगदीश चतुर्वेदी एक ऐसे ही परिवार का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

हर शादीशुदा मर्द कायर है :
हर शादीशुदा नारी फ्रस्टेटेड है
क्योंकि वे एक दूसरे को प्यार नहीं करते
क्योंकि वे एक दूसरे को हेय समझते हैं
क्योंकि उन्हें पास रहने से एक दूसरे की
.... कमियाँ ही दिखाई देती हैं
औपचारिकता के परिवेश में
सोचते रहते हैं एक दूसरे को
जहर देने की बात |

इस प्रकार प्रेम, सौहार्द्र और सम्मान, जो पति-पत्नी को एकता के सूत्र में बाँधते हैं, उनकी भर्त्सना करके, उन्हें तोड़ देने का प्रयास इस काल के कवियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है |

४) **राजनीतिक – सामाजिक यथार्थपरक दृष्टि :** साठोत्तरी कविता का राजनीति से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है | इस युग में कविता राजनीति की पूँछ मरोड़ने का कार्य बड़ी निडरता से करती है | राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करने वाली इस दशक की कविताएँ विशेष में चर्चा रहीं | धूमिल की कविता 'पटकथा', लीलाधर जगूड़ी की कविता 'इस व्यवस्था में', बलदेव बंशी की कविता 'आत्मदान' आदि कविताओं में इस काल का राजनीतिक परिदृश्य देखा जा सकता है | इनका स्पष्ट मानना है कि 'राजनीतिज्ञों नें प्रजातंत्र का हौवा खड़ा करके भारतरूपी गाय को बूँद-बूँद निचोड़ डाला है | उनका व्यवहार अत्यंत क्रूर एवं अमानवीय रहा है |' इस काल के चर्चित कवि ऋतुराज अपनी एक कविता में तत्कालीन राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता के विरुद्ध सामान्य जनता में भरे क्रोध को 'बहुरुपिया' के रूप में चित्रित करते हुए लिखते हैं-

यह आदमी नहीं है
इसका मेकप, इसकी स्त्रीवाचक
भाषा का तेवर आज की राजनीतिक नैतिकता के खिलाफ
खुला यह बुनकर अब कपड़ा नहीं बुनता
क्योंकि कोई भी कपड़ा इस नंगई को ढकने में ओछा है

५) **विद्रोही स्वर :** समय की दृष्टि से साठोत्तरी कविता का काल विद्रोही स्वर वाले आंदोलनों का रहा | इस कालखंड में तेलंगाना, श्रीकाकुलम और नक्सलबाड़ी से लेकर जे. पी. आन्दोलन आदि को तीव्र होते हुए देखा जा सकता है | एक बार फिर सत्ता ने लोकतांत्रिक तरीके को छोड़कर दमन का रास्ता अपनाया | ऐसे में साठोत्तरी कविता का जनवादी कवि खुलकर सत्ता के विरोध में खडा हो गया –

वहाँ गोलियाँ महज इस बात पर चल पडीं
क्योंकि वे जीना चाहते थे | (लीलाधर जगूड़ी)

यह समय कुछ-कुछ ऐसा हो गया था कि जनतंत्र में साम्राज्यवादी ताकतों और हथकंडों का इस्तेमाल जनता और जनतंत्र के बीच के संवादों को कुचल देता था | सरेआम जनतंत्र की हत्या देखकर इस काल के कवियों का रक्त गरम हो रहा था इसीलिये 'गोली और गुलाब' कविता में कुमारेन्द्र लिखते हैं –

गुलाब धरती से आसमान को मिलाते हैं
और जब अपना संगीत छोड़ते हैं
गोलियाँ अक्सर मेरे जेहन से उतर जाती हैं
गोली मैं तब चुनूँगा
जब धरती से आसमान का संवाद टूट जायेगा
और भाषा अंधकार में ले जाकर हमारा साथ छोड़ देगी
मगर ऐसा नहीं होगा |

इस काल का कवि अपने समय और सामान्य लोगों की आवाज़ बुलंद करने में ही अपनी कविता की सार्थकता समझता है | जैसा कि कुमार विकल लिखते हैं –

मुझे लड़नी है एक छोटी - सी – लड़ाई
छोटे लोगों के लिए
छोटी बातों के लिए |

६) **परम्पराओं में अविश्वास :** सन साठ के बाद का साहित्य उस पीढी का साहित्य है जो पीढी विवशता की स्थिति में पैदा हुई है तथा अंत तक उसी लाचारी और विवशता में आजतक जी रही है | इस काल का कवि किसी स्थिति विशेष के प्रति नहीं, वरन पूरी मानव सभ्यता को उधेड़ कर सामने रखने के लिए प्रयत्नशील जान पड़ता है | शांति उसके लिए महत्त्वहीन है क्योंकि उसका प्रादुर्भाव एवं विकास शीत युद्ध के युग में हुआ है | नैतिकता उसको वर्जनाओं के रूप में प्राप्त हुई, उसके लिए समाज केवल एक भीड़ है | यहाँ जो व्यवस्थावादियों के लिए निषिद्ध स्थिति है, वह कवि के अनुभव का घर तक बन जाती है | इन कवियों नें सामान्य जीवन में भी परम्पराओं को तोड़ने का कार्य किया है | यहाँ तक कि परम्परा के इस विरोध में यह कवि परम्परावादी पिता को भी पसंद नहीं करता है –

ओ पिता / मैंने तो तुमसे माँगा नहीं कुछ भी /
कुछ भी नहीं चाहा / यह दिशाहीन सुबह
यह लक्ष्य-भ्रष्ट शाम / यह धर्म और जाति से गंधाता
हुआ नाम / यह घिसट – घिसट चलती हुई भाषा
यह गैर कानूनी गति-विधि निरोधक अधिनियम /
यह एड़ी से चोटी तक क़र्ज़ में डूबा हुआ भविष्य |

साठोत्तरी कविता का शिल्प पक्ष : साठोत्तरी कविता का कवि सामान्य जनता से पूर्णतया जुड़ा हुआ है इसलिए **उसकी भाषा सामान्य जीवन की भाषा रही है |** यह गद्य की ओर बढ़ती भाषा है जिसके साथ सपाटबयानी भी चलती है | इसी सपाटबयानी के माध्यम से साठोत्तरी कवियों ने राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आवरण का खुलासा किया तथा संघर्ष के लिए ललकारने का कार्य किया –

चट्टान की तरह कठोर है वर्तमान
कर सको तो उसके सीने पर हस्ताक्षर करो
यह रजाई के अन्दर घुसकर बैठना कोई मकसद नहीं रखता |
(अशोक वाजपेयी)

साठोत्तरी कविता के कवियों ने **आम-जीवन से भी शब्दों, मुहावरों और कहावतों** का चयन किया है| इस कविता के चरित्रों में मोचीराम, लुकमान अली, महंगू तथा बलदेव खट्टिक आदि प्रमुख हैं | यहाँ लोकजीवन को दर्शाने के लिए लोकभाषा के ठेठ शब्दों तक का प्रयोग मिलता है | उदाहरण के लिए महानगरीय संस्कृति का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

जीने पर मिलते हैं लिपस्टिक के ट्यूब
फ्रेंच लेदर के पैकेट / और शक्ति देने वाली गोलियों की रबर | (जगदीश चतुर्वेदी)

ग्रामीण संस्कृति से जुड़े हुए कुछ कवि जैसे धूमिल, मुक्तिबोध आदि देशज क्रियाओं का प्रयोग भी अपनी कविताओं में करते हैं | शब्दों के ऐसे प्रयोग से यहाँ भाषा में तेजी देखी जा सकती है –

और चिथड़े अंगरखे के साथ / खून को "नून"
और नून को / पसीना बनाती है | रम्मा ठोंकता जाता हूँ |
(गोविन्द उपाध्याय)

साठोत्तरी कविता **प्रतीकों से भरी हुई है |** यहाँ नये और पुराने दोनों प्रकार के प्रतीक देखे जा सकते हैं | ये प्रतीक जीवन के विविध क्षेत्रों में विद्यमान सत्य की तलाश करते हुए जान पड़ते हैं | कवि कुमार विकल देश को एक मकान का प्रतीक मानते हुए कहते हैं –

अब रोटी कपड़ा मकान की मेरी समस्या नहीं
मुझे तो मिल गई एक नई खुदाई
अब देश की एक शानदार इमारत
नाम योजना भवन में रहता हूँ | न पीता हूँ न खाता हूँ |
मजे से आँकड़ों के चने चबाता हूँ |

साठोत्तरी कविता के उपमान नए, ताज़े एवं सटीक हैं | इनके उपमान सामान्य जन-जीवन से लिए गए हैं, अतः इनकी सार्थकता स्वयंसिद्ध है | शहरी एवं ग्रामीण जीवन के चरित नायकों को स्थान देने के कारण उपमान भी शहरी एवं ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति से लिए गए हैं | यहाँ अधिकांश काव्य रचना दीनों और असहायों को केंद्र में रख कर की गई है इसलिए गरीब की फटी हुई एड़ियों की उपमा खेत की मेड़ में पड़ी हुई दरारों से की जाती है–

एड़ियाँ – तलुओं में फट चुकी हैं इस कदर
दरारें बिवाइयाँ कि खेत की मेड़ / से लगी खाइयों /
पर हँसी आती है / जेठ बैसाख के ताप में कोरी चाम पर
उठाते हैं फफोले / पानी बुलबुले की भाँति फूट जाते हैं
पसीने की धार कभी भाप बनकर उड़ जाती है |

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि साठोत्तरी कविता की जननी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ रहीं, साथ ही विज्ञान के बढ़ते कदम और औद्योगीकरण ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की | इन सब स्थितियों में मानव अपने जीवन की सार्थकता, प्रयोजन और उनके मंतव्य के प्रति ही नहीं , वरन समूची सभ्यता और संस्कृति की छवि, सार्थकता आदि के प्रति भी संशय से भर उठा, जिसके कारण उसकी चेतना निस्संगता, निरर्थकता, संशय, अविश्वास, तनाव, आत्मनिर्वासन और बिखराव आदि से भर उठी | यही सब, संवेदना के रूप में, कवि के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने लगा | कवि समाज में जो कुछ भोगता है, उसी का वर्णन अपने काव्य में करता है | उसकी संवेदनाएँ सामान्य जन की संवेदनाएँ ही हैं | ग्राम एवं महानगरों का यथार्थ चित्रण यहाँ सर्वत्र देखा जा सकता है | अपने परिवेश में व्याप्त विसंगतियों से कवि पूर्णतः असंतुष्ट था इसलिए उसकी कविताओं में सत्ता के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ | कहीं-कहीं यही विद्रोह आक्रामक रूप धारण कर लेता है |

५.४ समकालीन हिन्दी कविता

हिन्दी कविता सतत प्रवाहमान ऐसी सरिता है जिसे युगीन अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं ने अपने-अपने ढंग से गति और आकृति प्रदान की है। वैसे तो प्रत्येक काल की कविता अपने युग की पहचान है, जीवंत दस्तावेज़ है; किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की कविता का मानसिक तेवर स्वतंत्रता पूर्व की कविता से सर्वथा भिन्न है और इन काव्यान्दोलनों में रचनागत चिंतनमूलक अंतर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि समकालीन हिन्दी कविता अपने पूर्ववर्ती सभी कालों, युगों तथा आंदोलनों से अलग है, क्योंकि अन्य युगों की कविताएँ जीवन के कुछ विशिष्ट पक्षों को लेकर लिखी गयी हैं जबकि समकालीन हिन्दी कविता जीवन की सुरूपता और कुरूपता को उसके प्रकृत रूप में स्वीकार करते हुए रची गयी है। अतः समकालीन हिन्दी कविता सम्पूर्ण जीवन की कविता है - ऐसा जीवन जिसमें राजनीति, धर्म, संस्कृति, समाज, अर्थ आदि सब कुछ जटिल भाव से समाविष्ट है। सामान्यतः विद्वानों द्वारा सन १९७० के बाद की कविता को समकालीन कविता के नाम से अभिहित

किया गया | आपातकाल से उत्पन्न आक्रोश ने इसे गति प्रदान कि और समकालीन कविता अपने समय की अनुगूँज की गई | 'यह कविता अमानुषीकरण की हर प्रक्रिया का विरोध करती है और मनुष्य के विवेक को जागृत करती है| इसलिए वह जहाँ समाज में व्याप्त विषमता को उजागर करती है , वहीं उन शक्तियों के खिलाफ मोर्चाबंदी भी करती है, जो इस विषमता के लिए जिम्मेदार हैं | सूचना विस्फोट, संवेदनहीनता, प्रकृति और पर्यावरण से लेकर बच्चों और बूढ़ों तक की समस्याओं से जूझती समकालीन कविता वर्तमान हर पक्ष तक आवाजाही करती है |'

५.५ समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ

समकालीन हिन्दी कविता में जीवन और जगत से जुड़ी प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति को अत्यंत यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। भरसक प्रयासों के बाद भी जब स्वराज्य को आदर्श रामराज्य में परिणत न किया जा सका तो जनमानस में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गयी। जीवन के इस कटु यथार्थ का सामना करने में उसे जिन दबावों-तनावों को झेलना पड़ा है, जिन-जिन आरोहों-अवरोहों, संकल्पों-विकल्पों में से गुजरना पड़ा है, उसकी स्पष्ट छाप हमें समकालीन हिन्दी कविता में दिखाई पड़ती है। परंपरित मूल्यों-मान्यताओं का विरोध करने वाली इस कविता में प्रतिक्रियात्मक स्वर ही अधिक प्रबल है। यथास्थिति को नकारकर आमूलचूल परिवर्तन लाने की आकांक्षा तथा समकालीन परिवेश एवं यथार्थ को स्पष्ट बेलाग शब्दों में व्यंजित करना ही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। समकालीन हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :

१) **विघटित व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह**

व्यवस्था एक व्यापक प्रत्यय है। यह समूचे परिवेश का पर्याय है जिसके अंतर्गत समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति आदि सब कुछ समाहित है। व्यवस्था ही किसी देश अथवा समाज की पहचान बनाती है, उसे स्थायित्व प्रदान करती है, किन्तु जब इस व्यवस्था के मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं की अवहेलना कर इसमें मनमाने ढंग से परिवर्तन किये जाते हैं तो यह विघटन की शिकार हो जाती है और कोई भी विघटित व्यवस्था कल्याणकारी नहीं हो सकती है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी कविता में भी ऐसी अव्यवस्थित व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश एवं असंतोष दिखाई पड़ता है। ढोंगी और भ्रष्ट व्यवस्था को कवि मानस एक पल भी सहन करने के लिए तैयार नहीं; उसे तो एक चिनगारी की तलाश थी, जिससे इसे सदा-सर्वदा के लिए खाक किया जा सके -

एक चिनगारी और -
जो खाक कर दे
दुर्नीत को, ढोंगी व्यवस्था को
कायर गति को
मूढ़ मति को

कवि को अकम्प विश्वास है कि इस विषम व्यवस्था को दूर करने का एक ही उपाय है - वह है जनक्रांति। केवल जनक्रांति से ही अपने 'होने का अहसास' दिलाया जा सकता है इसीलिए उसकी रुचि केवल बैठे-बैठे कविता करने तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह आगे बढ़कर एक दावानल भड़काना चाहता है -

पुनश्च के नाम पर कविता लिखकर अपने को
बहलाना मेरा शगल नहीं
शगल तो यह भी नहीं कि
राह चलते बिम्ब या प्रतीक से
टकराऊँ और फिर उसके या अपने खून की नुमाइश
करते हुए किसी युद्ध की कहानियाँ सुनाऊँ।
एक जंगल है सिर की जगह पर और एक
माचिस है मेरे हाथ में कलाम के नाम पर।
चाह है कि एक दानावल भड़काऊँ ताकि अपने होने का
अहसास दिला सकूँ, मंजूर करने की राह पहचान सकूँ।

२) जीवन का वास्तविक निरूपण

कोई भी रचना तभी जीवंत एवं प्राणवान बन सकती है, जब उसका जुड़ाव जीवन से हो। जीवन के तीव्र उत्कट अनुभवों की आँच में तपे बिना साहित्य-सर्जना संभव नहीं है। चूँकि, रचनाकार अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध होता है, अतः यह आवश्यक है कि बदलते मान-मूल्यों के साथ-साथ कविता का तेवर भी परिवर्तित हो। जहाँ तक समकालीन हिन्दी कविता का प्रश्न है इसमें जीवन की निर्मम वास्तविकताओं को अत्यंत ईमानदारी से निरूपित किया गया है। व्यक्ति के सारे खतरे उठाने को तत्पर यह कविता जीवन की विसंगतियों को बेपर्द करना चाहती है। वह उन रुग्ण एवं विकृत व्यवस्थाओं के भीतर तक झाँक लेना चाहती है, जिसके कारण जीवन दीनानुदिन जटिल और संघर्षपूर्ण बनता जा रहा है -

मुझे लगा मुझे एक दाने के अंदर
घुस जाना चाहिए
पीसने के पहले मुझे पहुँच जाना चाहिए
आटे के शुरू में
चक्की की आवाज के पत्थर के नीचे
मुझे होना चाहिए इस समय
जहाँ से
गाने की आवाज आ रही थी।

munotes.in

यद्यपि जीवन की इन तमाम विद्रूप-विसंगतियों-व्यवस्थाओं को चित्रित करने में कवि ने पूरी ईमानदारी बरती है, फिर भी वह कहीं-न-कहीं स्वयं को लाचार, विवश पाता है, क्योंकि जितनी पीड़ा, जितना संत्रास इन वर्षों में आम आदमी को झेलना पड़ा है, उसे कविता में बयान कर पाना संभव नहीं है -

संभव नहीं है
कविता में यह सब कह पाना
जो घटा है
बीसवीं शताब्दी में मनुष्य के साथ

३) मोहभंग की स्थिति

इस काल की कविता पूर्णतः मोहभंग की कविता है। भ्रष्ट व्यवस्था, राजनेताओं की वादाखिलाफी, बढ़ते विदेशी ऋण, पूंजीवादी अधिनायकत्व, महँगाई, भुखमरी, बेरोजगारी, कालाबाजारी आदि समस्याओं ने आम आदमी के मन में असंतोष एवं आक्रोश की भावना को ही उपजाया। आजादी उसके लिए महज तीन थके हुए रंगों का नाम बनकर रह गयी -

बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने आप से बात करता हूँ -
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब है।

लोकतन्त्र के पहरेदारों के हाथों ही लोकतान्त्रिक मूल्यों की हत्या होते देखकर यह मोहभंग और गहरा हो जाता है। ऐसी हत्यारी व्यवस्था से अलग होने के लिए जनता को आगाह करते हुए कवि कहता है -

आदमी को तोड़ती नहीं हैं लोकतान्त्रिक पद्धतियाँ
केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी
नागरिक बना देती हैं
आदमी को इस लोकतंत्री सरकार से अलग हो जाना चाहिए।

४) राजनेताओं के प्रति क्षोभ की अभिव्यक्ति

देश की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट राजनेताओं को ही दोषी मानता है, क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति केवल कुर्सी तक सीमित है, इनका दिन-ईमान सब कुर्सी है -

अरमान बसे हैं कुर्सी में
मन प्राण बसे हैं कुर्सी में
भगवान बसे हैं कुर्सी में
सब धर्म-कर्म कुर्सी, उनके
वे कुर्सी छोड़ नहीं सकते लाचारों को आवाज न दो।

ये राजनेता इस कुर्सी के लिए वे अपना धर्म-ईमान सब बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं | यदि आवश्यकता हो तो वे दलबदल करने से भी नहीं चूकते हैं -

लाल टोपी पहनकर गया हुआ विधायक
सफ़ेद टोपी पहनकर लौट आता है
और सफ़ेद वाला काली
इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं बदलता

किन्तु कवि इन विषम परिस्थितियों से घबराकर चुप बैठने वाला नहीं है, इसलिए वह साफ-साफ दो टूक शब्दों में ऐलान करता हुआ चलता है -

सुनें कि मेरी कविता में उनकी मौत की सजा का
ऐलान किया जा रहा है
आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसो। और हर पेड़
पर लटकती मिलेगी हिंदुस्तानियों के
मुसोलिनियों की लाशें
और.....

इसके बाद भी कुछ कहना बाकी रह जाता है क्या?

५) व्यक्ति और सामान्य सत्ता की प्रतिष्ठा

जनतंत्र में जन की महत्ता निर्विवाद है। साधारण जनता की उपेक्षा करके न तो राजनीति ही की जा सकती है और न कविता, क्योंकि इतिहास साक्षी-

जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गई है
तब-तब
वे लोग
अपनी पिपीलिकावत साधारणता के साथ
इतिहास की आग पर चलकर
पुराण पुरुष बन जाते रहे हैं।

धूमिल की 'मोचीराम', 'पटकथा', त्रिलोचन की 'नगई मेहरा', केदारनाथ सिंह की 'माँझी का पुल' तथा रघुवीर सहाय की 'रामदास' आदि कविताएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

६) परंपरागत मूल्यों का विघटन

सन साठ के बाद के वर्षों में उपजी मोहभंग की स्थिति ने पारंपरिक प्रणाली के प्रति नकार का भाव अपनाया। धर्म, सत्य, ईश्वर, न्याय उसके लिए बेमानी शब्द हो गए, क्योंकि विज्ञान की महती उपलब्धियों ने आज मनुष्य को इतना समर्थ और शक्तिसंपन्न बना दिया कि मिथ्या दर्प में चूर होकर वह स्वयं को ईश्वर के समकक्ष समझने लगा। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म आदि किसी चीज से उसे भय नहीं रह गया, मानवीय मूल्य अपना जीवन से अपना महत्त्व खोने लगे। ऐसी ह्रास की स्थिति में रचनाकार का चिंतित होना स्वाभाविक है; इसीलिए वह कहता है

प्राण हुए सस्ते अब पानी के मोल बिके
स्नेह, प्रेम, नेह, मोह दिखते हैं थके-थके
घर से निष्कासित हो शांति खड़ी होती है
उसको अपनाओ आलम्बन बदनाम न हो |

समकालीन हिन्दी काव्य पर विदेशी जीवन-पद्धतियों - बीट, हिप्पी, सन ट्राइबर्स, हैपनिंग - का भी गहरा प्रभाव है। गिंसबर्ग, नित्शे, किर्केगार्द को अपना आदर्श मानने वाले कवियों के लिए ईश्वर किसी कारागार में जन्म लेकर किसी पागलखाने में मर चुका है। उसे किसी ऐसे ईश्वर में आस्था नहीं है जो नकली मुखौटे लगाकर स्वयं तो सोने की मूर्तियों में रहता हो, स्वयं तो सर्वशक्तिसंपन्न कहलाता हो और जरूरत पड़ने पर स्वयं की भी रक्षा करने में असमर्थ हो| ऐसे अक्षम ईश्वर के विरुद्ध कवि एक लम्बी लड़ाई की बात करता है | 'ईश्वर तुम नहीं हो' काव्य संग्रह में जे.पी.नारायण ईश्वर से सीधे प्रश्न करते हैं –

ईश्वर ! तुम्हारे धार्मिक कुहासे के विरुद्ध
तुम्हारे शोषण के विरुद्ध
तुम्हारी अपवित्र आस्था के विरुद्ध
तुम्हारे लापता –लावारिस श्रद्धा
और विश्वास के विरुद्ध
तुम्हारे मायालोक, तुम्हारे आध्यात्मिक झूठ
और काल्पनिक देवत्व के विरुद्ध
लड़नी है हमें लम्बी लड़ाई |

७) आस्था और अनास्था का संकुल चित्रण

समकालीन हिन्दी काव्य में आस्था और अनास्था दोनों का संकुल चित्रण मिलता है। बदलते मानव-मूल्यों ने मानवीय संवेदनाओं को भोथरा बना दिया है। प्यार-प्रेम जैसी सुकोमल भावनाएँ

केवल छलावा बनकर रह गयी हैं, इनकी आड़ में मनुष्य कोई भी घटिया-से-घटिया कर्म करने से नहीं चूकता -

सहानुभूति और प्यार
अब एक ऐसा छलावा है
जिसके जरिये
एक आदमी दूसरे को अकेले
अंधेरे में ले जाता है और
उसकी पीठ में
छूरा भोंक देता है

किन्तु फिर भी कवि को विश्वास है कि एक-न-एक दिन नया प्रभात अवश्य आयेगा और सबमें सहज समता का भाव उपस्थित होगा -

सहज समता हो सभी में व्याप्त
व्यवस्था के हेतु यह पर्याप्त
भूमि पर फिर भूमि की संतान
करे शासन, श्रम बने श्रीमान।

८) व्यक्ति-मन का सहज चित्रण

समकालीन कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि इसमें पूरी ईमानदारी के साथ आम आदमी के दैनंदिन संसार को चित्रित किया गया है। यहाँ औसत व्यक्ति की सहज-साधारण संवेदनाओं को इतने कलात्मक ढंग से उकेरा गया है कि वह स्वयं में अद्भुत-असाधारण बन गयी है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति की त्रासदियों को झेलते-झेलते मनुष्य की चेतना इतने खंडों में बंट गयी है कि उसे हर चीज से वितृष्णा-सी हो गयी है, इसी मनःस्थिति को व्यक्त करती हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

क्या मैं छपाऊँ इश्तिहार?
क्या मैं बन जाऊँ किसी क्लब का सदस्य?
क्या मैं बैठे.... बैठे
करूँ सभी
परिचित-अपरिचित को फोन?
क्या मैं तमाम मूर्ख स्त्रियॉ से हँस-हँसकर
बात करूँ झुक-झुक नमस्कार?
दूसरों के बच्चों से
झूठ-मूठ प्यार?

९) काम का उन्मुक्त चित्रण

पाश्चात्य जीवन-दृष्टि से प्रभावित समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं में काम का उन्मुक्त चित्रण देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति के चतुर्वर्गों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला 'काम' अपनी प्राचीन गरिमा को खोकर केवल पाशविक उपभोग तक सीमित रह गया है। नारी को केवल भोग-विलास की वस्तु माना जा रहा है और अधिक आश्चर्य होता है, यह देख कर कि अश्लीलता की इस दौड़ में कवयित्रियाँ भी पीछे नहीं हैं। भारतीय नारी की सारी मान-मर्यादा को भूलकर वह निःसंकोच स्वर में कहती है -

सुबह से दिन डूबने तक
मैं इंतजार करती हूँ
रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमटकर
एक दूसरे को कुत्ते की तरह चाटेंगे |

चाहे जो हो, इस प्रकार के गर्हित चित्र न तो समाज के लिए कल्याणकारी हैं और न साहित्य के लिए। मात्र भोगवाद पर टिका हुआ कोई भी चिंतन अधिक दिन तक स्थायी नहीं रह पाता है और यही कारण रहा कि यह प्रवृत्ति भी जल्दी दम तोड़ गयी।

१०) प्रकृति चित्रण

समकालीन हिन्दी कविता में प्रकृति का वह बहुरंगी रूप देखने को नहीं मिलता जो छायावाद में था। प्रकृति के प्रति इस तटस्थ रागात्मकता का कारण इसके केंद्र में स्वयं मानव का होना है, फिर भी जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, त्रिलोचन, प्रयाग शुक्ल आदि के काव्य में प्रकृति का सुंदर रूप दिखाई पड़ता है। यहाँ एक उदाहरण देखें -

स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे हैं
कहीं जरा भी रंध्र नहीं है। जब तक बूँदा-
बाँदी हो जाती है। फैल फैल कर मूँदा
बदली ने नभ-नील-नयन को। उधर तीरे हैं
बादल के ऊपर बादल, चहुँ ओर फिरे हैं।
नाना रूपों-रेखाओं में, जैसे खूंदा
खूँदी बंधे अश्व करते हैं। सुंदर फूंदा
किरणों का निकला, जिससे सांध्य चिरे हैं।

इस काल का कवि प्रकृति संरक्षण के प्रति जागरूक भी दिखाई देता है | वह प्रकृति के विनाश के दुष्परिणामों से आज के मानव को सावधान करता दिखाई देता है | गंगा प्रसाद विमल 'काश पेड़ों के पाँव होते' कविता में लिखते हैं –

उन्हें काटते हैं लोग

तो काट देते हैं
पक्षियों के आवास
प्रकृति का सदाबहार / यौवन
काट देते हैं लोग / स्मृति
और सरहद रेगिस्तान की |

११) जनवादी चेतना की विस्तृत व्यंजना

सामान्य रूप से, जनवाद से तात्पर्य उन मार्क्सवादी-माओवादी विचारधाराओं से है में सर्वहारा वर्ग की मुक्ति और संघर्ष के लिए किए गए सचेतन प्रयास एवं वर्गविहीन परिकल्पना प्रमुख है | लोकतन्त्र की इस वनतंत्री व्यवस्था से क्षुब्ध होकर कवि-मा विराट विश्वव्यापी चिंतन-प्रक्रिया के प्रति आकर्षित होना सहज-स्वाभाविक ही था। विश्वास है कि इन भयावह परिस्थितियों से टकराने का एकमात्र विकल्प संघर्ष ही है वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति के पास जाना चाहता है, चाहे वह प्रेमचंद का 'होरी या धूमिल का 'मोचीराम' -

राजतंत्र की इस वनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और असक्षम हूँ
मेरे स्नायुतंत्र पर भय और आतंक की कंटीली/झाड़ियाँ
उग आयी हैं / जिन्हें काटने के लिए
ठीक हाथों और ठीक शब्दों की तलाश में
मैं होरी किसान और मोचीराम के
पास जाऊँगा / मैं अपने मुहल्ले के पास जाऊँगा।

१२) बच्चों और बूढों की चिंता : समकालीन कविता का कवि समाज के हर पक्ष पर नजर रखता है | ऐसे में आज के परिवेश में बच्चे और बूढ़े उसे निहायत लाचार दि एक तरफ लोगों की भागमभाग वाली जिन्दगी नें बच्चों को उनके माता-पिटा के प्र कर दिया है तो दूसरी तरफ हिलते-काँपते खड़े होने की कोशिश करते बच्चों को स उन्हें बस्तों के बोझ से लाद दिया जाता है | वहीं गरीब बच्चों का बचपन अन्धकार रहा है | जिसे देखते हुए चन्द्रकांत देवताले लिखते हैं –

ढेर सारे बच्चे /
सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं
ढेर सारे बच्चे बीड़ी के अद्धे ढूँढ रहे हैं
ढेर सारे बच्चे होटलों में / कप बसियाँ रगड़ रहे हैं

munotes.in

बच्चों की तरह ही समकालीन कवियों ने वृद्ध जीवन की वास्तविकताओं को भी अपनी कविताओं में बड़ी यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है | भौतिकता की अंधी दौड़ ने लोगों के लिए घर के वृद्ध एक संकट की तरह लगने लगे हैं | यदि कुछ परिवारों में उनके लिए कोई जगह है भी तो केवल इसलिए कि वे घर के अनेक छोटे-मोटे कार्यों को करते रहते हैं | इसी उपयोगिताधर्मी पीढी की मानसिकता इस कविता में व्यक्त हुई है –

आखिर मर गया बूढा
वो बड़ा अच्छा था आटा पिसवाता था
सफाई वाली से अच्छी तरह सफाई करवाता था
सादगी से रहता था / बच्चों को खाना सिखाता था /
उसके रहते घर को ताला नहीं लगाना पड़ता था |

१३) भाषिक भंगिमा

भाषा भावों-विचारों की संवाहिका होती है। भाव-विचार जैसे होंगे, भाषा का तेवर भी वैसा ही होगा। यदि कविता का प्रतिपाद्य यथार्थपरक और आम आदमी के दैनंदिन से लिया गया है तो स्वाभाविक है कि उसका शिल्प भी तदनुरूप सहज-सपाट होगा। चूँकि, समकालीन कविता अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध कविता है। अतः पारिवेशिक विसंगतियों-विद्रूपताओं की बेपर्द अभिव्यक्ति के लिए जो दो टूक शैली अपनायी गई है, उसने भाषा को नयी शक्ति प्रदान की है। समकालीन काव्य-भाषा आभिजात्य और संस्कार की भाषा नहीं है, अपितु अनुभवों की भट्टी में तपी-निखरी आम बोलचाल की भाषा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

बाबू जी! सच कहूँ-मेरी निगाह में
न कोई छोटा है न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफहमी का
शिकार है। जो यह
सोचता है कि पेशा एक जाति है।
और भाषा पर।
आदमी का नहीं किसी जाति का अधिकार।

व्यंग्य भाषा का अचूक बाण है, यही वह धारदार अस्त्र है जिसके माध्यम से जीवन और जगत की अनगिनत विसंगतियों-विद्रूपताओं के मर्म पर सीधा प्रहार किया जा सकता है। समकालीन कवियों को जहाँ भी दोगलापन नजर आया वहाँ वे चूके नहीं, चाहे वह देश का प्रधानमंत्री हो या कोई अमीर-धनकुबेर या फिर अन्य कोई और। नेहरू की गिरती साख को रुपये के अवमूल्यन से जोड़कर कितना तीखा-चुभता व्यंग्य किया गया है, देखें -

हिंदुस्तानी रुपये पर छपी है जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर
और इस तस्वीर की कीमत अभी तक
कुल ३६.५ प्रतिशत नीचे गिरी है।

१४) अप्रस्तुत विधान

प्रस्तुत को अधिक स्पष्ट-सुबोध बनाने के लिए रचनाकार अप्रस्तुत का संयोजन करता है। प्रस्तुत का यह संयोजन सादृश्य-संस्थापन के माध्यम से होता है, इन्हें उपमान भी कहा जाता है। समकालीन वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए कवि ने अप्रस्तुत विधान हमारे आस-पास के परिवेश, हमारे रोज़मर्रा जीवन के चिरपरिचित क्षेत्रों से ही लिए हैं। यद्यपि ये उपमान सामान्य जीवन में से ही लिए गए हैं, फिर भी इनमें एक विशिष्ट भंगिमा है -

बुद्धि पर पर्त/ की पर्त प्रवंचना
चेहरे पर मक्खनी नरमाई
वह समय बीत गया, जब एक बात
कोई एक बात होती थी

शरद ऋतु की रजनी-प्रभात का मानवीकरण करके कितने सूक्ष्म एवं ललित अप्रस्तुतों की नियोजन की गयी है, यह देखते ही बनता है -

मैला तन चीर फाड़
स्वर्ण ज्योति मचल रही
डाह भरी रजनी के आभूषण कुचल रही
फेंक रही इधर-उधर
लत्ते-सा अंधकार

१५) बिम्ब-विधान

बिम्ब-विधान का जितना संबंध काव्य के विषय से है, उतना ही संबंध उसके रूप से भी है इसलिए काव्य में बिम्बों की महत्ता स्वयंसिद्ध है। जहाँ तक समकालीन काव्य का प्रश्न है तो स्पष्ट है कि इसमें बिम्बों की अत्यंत सुंदर एवं कलात्मक नियोजना हुई है। चाहे वह मुक्तिबोध हों या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नरेश मेहता हों या शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय हों या लीलाधार जगूड़ी सभी ने उच्च कोटि के सुंदर एवं कलात्मक बिम्बों को प्रस्तुत किया है।

नाव को केवट-वधू के रूप में चित्रित करने वाला यह सुन्दर बिम्ब यहाँ दर्शनीय है -

हवा से उभरा हुआ कुछ पाल
शीश पर आँचल लिया है डाल
दूर नदिया के किनारे गाँव
जा रही केवट वधू-सी

१६) प्रतीक विधान

अमूर्त भावों को मूर्तता प्रदान कर अभिव्यक्ति को सशक्त-प्रखर बनाने में प्रतीकों का बहुत बड़ा योगदान है। समसामयिक युगबोध को व्यंजित करने के लिए समकालीन रचनाकारों ने जहाँ पारंपरिक प्रतीकों को अभिनवता प्रदान की है, वहीं नए-नए प्रतीकों का भी निर्माण किया है।

वर्तमान जीवन में व्याप्त विसंगतियों को छोटे-मोटे आश्वासनों से नहीं अपितु समूची व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन लाने से ही सुधार लाया जा सकता है। अपनी इस दृढ़ मान्यता को मौसम के प्रतीक रूप में व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि -

क्या हुआ कभी कभार / छोटी मोटी बूँदियाँ गिर पडीं
उससे तो और बढ़ती है उमस
अब पछवा को पुरवा मान लेने
(लेते रहने) से / नहीं चलेगा
मौसम ही बदले तो बदले।

कहीं-कहीं यह प्रतीक शब्दों में है तथा कहीं-कहीं पूरी कविता ही प्रतिकात्मक है। धूमिल की 'वसंत', जगूड़ी की 'पाटा' तथा राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

१७) छंद-योजना

यद्यपि समकालीन रचनाकार अपनी रचनाओं को पारंपरिक छंद-बंध में बांधने के कायल नहीं थे, फिर भी कविता के अनिवार्य तत्त्व लय की उपेक्षा वे सहन नहीं कर पाये और जहाँ लयात्मकता हो, वहाँ तुकबंदी भी होगी। लय, तुक, छंद से अनुशासित कुछ पंक्तियाँ यहाँ देखी जा सकती हैं -

ये डरी-डरी हवाएँ
ये बुझी-बुझी बहारें
न हंसी की खनखनाहट
न तो रसभरी फुहारें
रुकी धड़कनें सभी की
सभी हो गए हैं पत्थर
कहीं थरथरी नहीं है।

समकालीन हिन्दी कविता की उपलब्धियाँ

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी कविता युगीन सच का साक्षात्कार करने वाली कविता है। परिवेश का जितना सच्चा और बेबाक चित्रण इस कविता में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। पहली बार आम आदमी को उसके सम्पूर्ण रूप के साथ कविता में स्थान दिया गया है। मुक्ति की

आकांक्षा मन में सँजोये समकालीन कविता उन लाखों-करोड़ों शोषितों-पीड़ितों के साथ है, जिनके मन में इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति विक्षोभ है। समाज को सही प्रगति के मार्ग पर लाना और सार्थक ढंग से लिखना ही इन रचनाकारों की मूल रचनाधर्मिता है। इन दीन-हीन, शोषित-पीड़ित व्यक्ति के प्रति इनके मन में करुणा है, सहानुभूति है, मात्र सहानुभूति दर्शाकर वह उन्हें पंगु नहीं बनाना चाहते, बल्कि वे उनके भीतर सोये हुए उस ज्वार को जगाना चाहते हैं जो समाज में नयी क्रांति ला सकता है। आम आदमी की संवेदना ही काव्य की संवेदना बनी है और यही कारण है कि इसकी भाषा भी आम बोलचाल की भाषा है। प्रतीक, बिम्ब भी सामान्य जीवन से ग्रहण किए गए हैं। मानवीय सरोकारों से जुड़ी यह कविता जीवनानुभूत कविता है, जमीन से जुड़ी हुई कविता है। साधारण व्यक्ति, साधारण घटनाओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने वाली यह कविता सचमुच, अपने-आप में अनन्य-असाधारण है।

५.६ सारांश

साठोत्तरी कविता तकनीकि के बढ़ते प्रभाव और औद्योगिकीकरण से एकागार हो चुकी थी और मानव जीवन के प्रगति में कदम से कदम मिलाकर चल रही थी इन कविताओं में शहरी जीवन का चित्र बहुत पास से देखा जा सकता है। वहीं समकालीन कविता सत्य की बिन्धास्त प्रदर्शित करने में कारगर सिद्ध् हुई । दीन-हीन, शोषित-पीड़ित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति, किसानों की परिस्थिति का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ मानवीय सरोकारों से यह कविता जुड़ी हैं ।

५.७ बोध प्रश्न

१. साठोत्तरी कविता की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

२. समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

३. समकालीन हिनदी कविता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसकी उपलब्धियों का विवरण दिजिए

५.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. साठोत्तरी कविता का आरम्भ काल है?

२. 'ओ चिथड़े अंगरखे के साथ । खून का नून और नून को पसीना बनाती है । रम्मा ठोकता जाता हूँ ।' उक्त पंक्तियां किस कवि की है?

३. मौलिक अधिकार, सामाजिक न्याय और आर्थिक आत्म निर्भरता का आश्वासन किन कविताओं में दिया गया है?

४. १९७० के बाद की कविता को किस काल की कविता माना गया है?

५. युगीन सच का साक्षात्कार करने वाली किस काल की कविताएँ कहलाती है?

❖❖❖❖

इकाई : ६

६

आधुनिक हिन्दी साहित्य के नवगीत

इकाई की रूपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ नवगीत परंपरा

६.२.१ नवगीत के प्रमुख कवि

६.२.२ नवगीत का वस्तु पक्ष

६.३नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियां

६.४ सारांश

६.५ बोध प्रश्न

६.६ लघुत्तरीय प्रश्न

६.७ संदर्भ ग्रंथ

६.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के नवगीत और समकालीन की चर्चा की गई है | इस इकाई के अंतर्गत नवगीत की परम्परा और उसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है | इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी नवगीत का प्रवृत्तिगत अध्ययन कर सकेंगे |

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों और उस काल के मुख्य कवियों की विचारधाराओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है | इनके अध्ययन से वे आधुनिक हिन्दी कविता के काल विभाजन के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा से भी परिचित हो सकेंगे | अतः इस इकाई का मूल उद्देश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी साहित्य में नवगीत की मूल प्रवृत्तियों से अवगत कराना है |

६.१ प्रस्तावना

२०वीं के मध्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये उमंगों की जो ज्योति जली थी वह एक – डेढ़ दशकों में ही निराशा में बदलने लगी | जिन नैतिक मूल्यों को भारतीय समाज में जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक माना जाता रहा वे सब यहाँ आते-आते व्यर्थ सिद्ध होने लगे | सत्ता का अहंकार सत्ताधारियों के सिर पर सवार होकर बोलने लगा था | परिणामस्वरूप सत्ता के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा होने लगा | बहुत जल्दी ही यह आन्दोलन भारत के जन-जन तक पहुँच गया | इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य

munotes.in

को भी विविध रूपों में प्रभावित किया | २० वीं शताब्दी में द्विवेदीयुग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद और फिर नई कविता उसके बाद साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता और उन्हीं के साथ नवगीत और समकालीन कवि का आगमन होता है |

इस इकाई के अंतर्गत नवगीत की परम्परा और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा |

६.२ नवगीत : परम्परा

गीत मानव की स्वाभाविक वृत्ति है। गीत के बिना उसका जीवन नीरस एवं शून्य बन जाता है। गीत प्रत्येक व्यक्ति गुनगुनाता है, अंतर केवल इतना है कि कोई व्यक्ति मंच पर गाता है, कोई स्नान करते हुए गाता है, कोई इधर-उधर जाते हुए या फिर अपना कार्य करते हुए गुनगुनाता है। गीत की रचना पूर्व योजना पर आधारित नहीं होती हैं, वरन ये भाव तो सीधे हृदय से निकलते हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार, "सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष कर गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। साधारण गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र और सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है हो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सकी।" वास्तव में गीत का संबंध व्यक्ति के अन्तर्मन से होता है। जो सुख-दुख से प्रेरित होकर तीव्रतम भावों की अभिव्यक्ति करता है। वे भाव संगीत के साथ लयबद्ध होकर 'गीत' कहलाते हैं।

आधुनिक काल में छायावाद में गीत को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। छायावाद के कवियों अर्थात जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने गीत विधा को अभूतपूर्व उत्कर्ष प्रदान किया है, परंतु छायावादी गीतों में व्यक्तिगत जीवन का सुख-दुख राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की आकांक्षा, भारतीय पुनर्जागरण, कल्पना शृंगार, प्रकृति आदि विषयों का स्वर साफ सुनाई पड़ता था। नवगीतों का विषय परंपरागत गीतों से भिन्न है, उसका कलेवर आधुनिकता से संबन्धित है। परंपरागत कलेवर से निकलकर गीत को जन-जीवन से जोड़ने में मुख्य भूमिका महाकवि निराला की रही है। उन्होंने आधुनिक गीत को नया भाव-बोध और विस्तृत फ़लक प्रदान कर उसमें आम व्यक्ति का संघर्ष ध्वनित किया है। जब हम नवगीत का प्रारम्भिक उद्भव देखने की कोशिश करते हैं, तब वह हमें निराला के अंतिम गीतों में दिखाई देती है। इस प्रकार छायावादी कविता की भूमि से ही नवगीत का बीज अंकुरित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार नवगीत परम्परा में निराला के गीत विशेष महत्त्व रखते हैं।

छायावाद के उपरांत प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद जैसी अनेक काव्यधाराओं का प्रचलन हुआ। प्रयोगवादी काव्यधारा गीत के क्षेत्र में भी नित नए प्रयोग करती रही। यह काव्यधारा भी परम्परा से चली आ रही गीत की प्रवृत्ति को नई दिशा, नई सोच, नया चिंतन, नया भावबोध एवं नया शिल्प प्रदान नहीं कर सकी। यह छायावादी प्रवृत्ति का पिछलग्गू बनकर ही जीवन जीता रहा। इसी क्रम में प्रगतिवाद में मार्क्स के प्रभाव से कविता लेखन में परम्परा से विच्छिन्न एक नए भाव-बोध का जन्म हुआ जिसमें शोषक-शोषित, साम्यवाद, विश्वबन्धुत्त्व, पूंजीवाद का विरोध, यथार्थवाद नवीन युग परिवर्तन, नारी स्वातंत्र्य की पुकार आदि अनेक विषयों का सूत्रपात हुआ। डॉ. गिरिराज सिंह ने लिखा है कि "प्रगतिवाद ने

गीतकारों के जीवन यथार्थ को परखने और चित्रित करने की एक दृष्टि प्रदान की है। मार्क्सवादी चिंतन के प्रभाव के फलस्वरूप गीत जीवन के बुनियादी और ठोस सरोकारों से जुडने लगा। छायावादोत्तर गीत निश्चय ही सुख-दुख के छोटे से आँगन में गूँजता था।" इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी गीत रचना के विरुद्ध व्यापक प्रतिक्रिया हुई, प्रगतिवाद के गीत में संगीत तत्त्व का अभाव रहा और प्रयोगवाद में केवल नित नयी खोज करने वाली दृष्टि के बावजूद भी हिन्दी की गीत धारा एकदम सूख नहीं पायी थी, वरन गीतधारा में छिटपुट प्रयोग होते रहे जिन्होंने गीत को जीवन दान दिया। इस समय के गीतकार इसी सोच के साथ चिंतन करते रहे कि गीत को किसी भी भाँति छायावादी गीत से बाहर निकाल कर उसे समष्टि के यथार्थ से, परम्परागत सौन्दर्य से निकालकर नए सौन्दर्य से मंडित किया जा सके। इस दिशा में हरिवंश राय 'बच्चन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपाल सिंह 'नेपाली', नरेंद्र शर्मा, कवि नीरज, और जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे गीतकारों ने गीत में ताजगी लाने के लिए नया कथ्य एवं नया शिल्प प्रदान किया। इन कवियों के प्रयास सकारात्मक रहे, परंतु दुखद विषय यह रहा कि जैसा गीत ये समाज को देना चाहते थे, जिस नयी सोच एवं विचारधारा को गीत के माध्यम से सम्प्रेषित करना चाहते थे, कि इस युग में गीत एवं गीतकार मंच के साथ जुड़ गया, वह मंच पर उपस्थित होकर वह गीत के शिल्प पक्ष पर ही ध्यान देता रहा। इस युग के कवि का ध्यान तो सस्ती लोकप्रियता पर केन्द्रित रहा।

गीत परम्परा में सन १९५० के आस पास एक नवीन चेतना दिखाई देती है। इस युग के गीतकारों ने इसे प्राचीन संदर्भों से निकालकर आधुनिक यथार्थ से जोड़ने की चेष्टा की। इस युग का कवि केवल कोरी कल्पना, दिखावा, बनावट, वैयक्तिकता, भावुकता आदि तत्त्वों से ऊपर उठकर अब यथार्थवाद, सामाजिकता एवं बुद्धि से चिन्तन-मनन करता हुआ दिखाई देता है। इसी के साथ-साथ वह सस्ती लोकप्रियता के झूठे आवरण से बाहर निकलकर सामाजिक भलाई की तरफ तत्पर दिखाई देता है। इस नवीन चेतना को गीत में देखकर सन १९५८ में श्री राजेंद्र सिंह जी ने मुजफ्फरपुर से प्रकाशित होने वाली 'गीतांगिनी' को 'नवगीत' नाम प्रदान किया। 'नवगीत' के प्रवर्तक के रूप में श्री राजेंद्र सिंह के नाम पर विद्वानों में वैमत्य रहा है, फिर भी उन्हें ही 'नवगीत' का प्रवर्तक स्वीकार किया गया है। रामनरेश पाठक के शब्दों में 'पुरोधा होते हुए राजेंद्र सिंह ने खुद को नवगीत की शिनाख्त का पहला गवाह भर कहा है |' यद्यपि नवगीत के नामकर्त्ता, तत्त्व, निरूपक और उसकी स्वीकृति के संघर्ष में सारथी और तत्पर व्याख्याता की भी हैसियत उन्हीं की है, साथ ही वे नवगीत के अग्रगामी रचयिताओं में भी अद्वितीय गत्वर और प्रासंगिक हैं।

६.२.१ नवगीत के प्रमुख कवि

नवगीत के बीज छायावादोत्तर गीत लेखन में अर्थात बच्चन, भगवतीचरण वर्मा और अंचल में खोजे जा सकते हैं। इसके बाद यह गीत धारा प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के गीतकारों के कंठों से बहती हुई अपना स्वरूप निश्चित करती दिखाई दी। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी गीतकारों में प्रमुख रूप से पन्त, निराला, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, अज्ञेय, शम्भूनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है।

नवगीत की भाव चेतना के आधार पर नवगीतकारों को चार रूपों में विभाजित किया जा सकता है।

१) **आधुनिकता बोध से सम्पन्न नवगीतकार -** आधुनिकता की प्रवृत्ति निम्न नवगीतकारों में दिखाई देती है। इनमें से मुख्य रूप से निम्न कवि उल्लेखनीय है - जैसे - ओम प्रभाकर, सोम ठाकुर, भगवान स्वरूप नईम, विनोद गौतम, विजय किशोर, डॉ. सुरेश, राजेंद्र गौतम, रामचंद्र भूषण, शम्भूनाथ सिंह, रामसेंगर, अमरनाथ, श्री कृष्ण तिवारी, कुमार रवीद्र, उमाशंकर तिवारी आदि।

२) **लोकबोध से सम्पन्न नवगीतकार** - इसमें ठाकुर प्रसाद सिंह, अनूप अशेष, गुलाब सिंह, अखिलेश कुमार सिंह, सुधांशु उपाध्याय, दिनेश सिंह आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।

३) **प्रकृतिबोध सम्पन्न नवगीतकार -** प्रकृतिबोध के रचनाकारों की श्रेणी में मुख्य रूप से देवेंद्र कुमार, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, ठाकुर प्रसाद सिंह, अनूप अशेष, गुलाब सिंह, दिनेश सिंह आदि का नाम लिया जा सकता है।

४) **जातीय बोध सम्पन्न नवगीतकार -** इन कवियों में उमाकांत मालवीय, देवेंद्र शर्मा 'इन्द्र', सोम ठाकुर, शम्भूनाथ सिंह, राधेश्याम शुक्ल आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

६.२.२ नवगीत का वस्तुपक्ष

'नवगीत' जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि यह गीत जो पारम्परिक गीत से भिन्न सर्वथा नवीन दृष्टि लिए हुए है, वही गीत नवगीत की संज्ञा से जाना जाता है। नवगीत नयी कहानी एवं नयी भावभूमि के साथ १९५८ ई. के आसपास उत्पन्न होने वाले गीत को कहा गया है।

यह परम्परागत गीत से सर्वथा भिन्न नए स्वरूप के साथ उदित होता है। अब इसकी भावभूमि में वैयक्तिक सुख-दुख की अनुभूति एवं कोरी कल्पना के स्थान पर समष्टिगत सुख-दुख यथार्थ जीवन का स्वर मुखरित होता हुआ दिखाई देता है। यह आज के कटु जीवन का यथार्थ चित्रण, सामाजिक दुख-सुख एवं उनकी नितांत नई-नई समस्याओं को उकेरता है। देवेंद्र शर्मा इन्द्र के अनुसार, "नवगीत सपनों के रंग-बिरंगे पंख लगाकर तितलियों की तरह मधु संचय करने के लिए कल्पना-कुसुमों पर नहीं मँडराता, वह तो सनातन विषपाई यायावर है। समृद्ध संस्कारों और परम्परा की चाँदनी की महक को अपने प्राणों में रचा-बसाकर भी उसने आधुनिकता के धुएँ, धूल और कुहासों के साथ आत्मीयता स्थापित की है। महानगरीय तनाव के भीतर जीते हुए भी भीड़-भाड़ के 'पथरीले शोर में' उसकी हर धड़कन में गंगा-जमुनी सोनार-बांसुरी अपनी पूरी लयात्मकता के साथ बजती रही है। ट्रामों, बसों, ट्रेनों और स्कूटर के घर्घर नाद को स्वायत्त करते हुए उसने अपने आपको नयी संगीतात्मक अस्मिता प्रदान की है।"

इस संदर्भ में सोम ठाकुर कहते हैं कि - नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है, परंतु वह उसे निरीह नग्न रूप में अकेला नहीं छोडता, वरन उसके शरीर पर उभरे हुए अनेक घावों की वैद्य बनकर मरहम-पट्टी भी करता हुआ दिखाई देता है। वह जब वैद्य बनकर रोगी की मरहम पट्टी करता है तब उसमें दिखावा, बनावटीपन एवं कृत्रिमता का लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता। उसने पूर्व के गीत में चली आ रही विसंगति पर खुलकर चोट की, उसके पारम्परिक ढाँचे को ध्वस्त किया, और नवीन जीवन दृष्टि लेकर जनसाधारण के बीच खड़ा होकर दैनिक समस्याओं का सामना किया है। उनके साथ संघर्ष किया है।' नवगीत के स्वरूप-चिन्तन के बाद इसकी प्रमुख प्रवित्तियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है :-

६.३ नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

१) **सामाजिक यथार्थ का निरूपण -** नवगीत परम्परागत गीत की भाँति कल्पना की रंगीन उड़ान नहीं उड़ता है, वरन वह सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। मनुष्य की विसंगतियों, उसके आधुनिक जीवन की कटुता, उसके दर्द को अपने गीत का आधार बनाता है। नवगीत अब नदी, नाले, पर्वत आदि विषयों को छोडकर बस, रेल, ट्राम, दफ्तर, परिवार आदि के साथ जुड़कर उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति करता है। अनूप अशेष की ये पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में देखी जा सकती हैं -

"द्वार पर
तहसील-सी धमकी हवा
नीलामियों के इश्तहार
पाँव से सिर तक
लपेटे हुक्म
दर ना छोड़ने के संस्कार
कुएं में हरा हुआ सूखा
पियासी गाय
बंधु
खुलकर नहीं कहते हैं।"

इस प्रकार नवगीत में यथार्थ का चित्रण हुआ है जो आधुनिक जीवन को सही वाणी प्रदान करता है। इस स्थिति को उमाकांत मालवीय इस प्रकार ध्वनित करते हैं -

केवल पुंसत्वहीन, क्रोध, और बेबसी, अपनी सीमाओं का बोध,
खोखली हंसी, झिड़क दिया बेवा माँ को, उफ बिला वजह।

२) **शहरी एवं महानगरीय परिवेश का चित्रण -** नवगीत का क्षेत्र परम्परागत गीत की भाँति सीमित नहीं है, वरन वह शहरी एवं महानगरीय परिवेश की सक्षम अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नवगीत युग सत्य के प्रति आँखें मूँद कर बैठा नहीं रहता, अपितु खुली आँखों से महानगरीय जीवन की विसंगति, कुरूपता, अंतर्द्वंद्व, अकेलापन, घुटन, त्रास, पीड़ा को अपनी वस्तु व्यंजना में शामिल करके उसे वाणी प्रदान करता है। महानगरों में आम आदमी का जीवन बड़ा कठिन हो गया है, वह सदैव दहशत के माहौल में जीवन व्यतीत कर रहा है। विनोद शर्मा के शब्दों में –

"साथ रहना / और ढोना अजनबीपन, अब नहीं बर्दाश्त होता /
टूटना / पर दिखना साबुत /
भयानक त्रासदी है / नाम पर संबंध के /
बस औपचारिकता निभाना / आदमी की बेबसी है।"

यह अजनबीपन और औपचारिकता केवल शहरों में ही नहीं रह गई है, अपितु इसने गाँव को भी लील लिया है। गाँव की प्रमुख इकाई परिवार भी इसके संहार से बच नहीं पाया है। डॉ. सत्येंद्र शर्मा के अनुसार, "नवगीत में महानगरीय विभिन्न वर्गों का जीवन-आचार, घुटन, पीड़ा और जिजीविषा तो व्यक्त हुई ही, मध्यवर्गीय मन की वह टूटन भी व्यक्त हुई जो नयी स्थितियों का, नए परिवेश का एकबारगी सामना न कर सकी। संयुक्त परिवारों के टूटने का मनः ताप जितना नवगीत में उभर कर आया उससे यह विधा अपने समय और समाज का दस्तावेज़ प्रमाणित हुई है।"

३) **व्यवस्था का विरोध -** आजादी से पूर्व भारतीय जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। वह संघर्ष इस आशय के साथ किया था कि उनके जीवन स्तर में सुधार होगा, उन्हें मान-सम्मानपूर्वक जीवन, सुख-सुविधाएँ प्राप्त होंगी । आशा के सुनहले स्वप्न सजाकर भारतीयों ने संघर्ष किया और उसका परिणाम आजादी के रूप में मिला। आजादी मिलने के बाद आम व्यक्ति की आकांक्षाएँ अपूर्ण रहीं और स्वप्न भंग हो गए। इसके फलस्वरूप एक देशव्यापी मोहभंग का अनुभव किया गया। जनता के प्रतिनिधि जनता की उपेक्षा करने लगे तो नवगीतकार भी जनतान्त्रिक व्यवस्था से निराश होकर जनहितकारी व्यवस्था के पक्ष में अपनी आवाज बुलंद करने लगे और साथ ही जनसाधारण को इनसे सावधान रहने के लिए सतर्क किया। अश्वघोष लिखते हैं –

"भेड़िये, जो दे रहे
भाषण अहिंसा के
हैं फरेबी
आदमी के खून के प्यासे
जुल्म, इनके जिस्म का विस्तार
बंधु रहना हर तरह तैयार।"

जनता के प्रतिनिधि ही जनता का शोषण कर रहे हैं। सत्ता से जुड़े हुए शोषक तत्त्वों को बेनकाब करते हुए रमेश रंजक कहते हैं -

इनके हाथ बड़े लम्बे हैं /
पाँव नहीं इनके खम्भे हैं /
गांधी का चरखा चबा गए /
भरे पेट पर देश खा गए /
फिर भी ये भूखे के भूखे /
माँग रहे अनुदान।

४) **बौद्धिकता की प्रधानता -** नवगीतकारों के नवगीतों में बौद्धिकता की प्रधानता है। उल्लेख्य है कि गीतकारों को व्यापक यांत्रिकीकरण और तकनीक ने काफी सीमा तक प्रभावित किया है। रूढ़िवाद और अंधविश्वास के सुरक्षित दुर्ग में बुद्धिवाद ने सेंध लगाई और व्यक्ति तार्किक हो गया।

अब वह आँख मूँद कर बिना किसी विषय पर चिन्तन किए, स्वीकार नहीं करता। डॉ. विनय के अनुसार - "आज के युग में बदलते हुए जीवन मूल्यों के प्रति भावनामूलक दृष्टिकोण से काम नहीं चल सकता, उसके लिए एक बौद्धिक सोच की आवश्यकता है।"

बुद्धि की प्रधानता का अर्थ तर्काश्रित यथार्थवादी दृष्टिकोण है। यथार्थ लोक का अन्वेषण संशय, जिज्ञासा, प्रश्नाकूलता और तर्क के आधार पर होता है। परंतु, बौद्धिकता के धरातल में भाव संवेदना का जल भरा हुआ होता है जो उस रचना को बौद्धिक होने के बाद भी काव्योचित बनाए रखता है। कविवर विनय कहते है -

"शीशों के दिल दिमाग वाली
महलों की महरिन-सी
झुग्गियाँ
बूटों बंदूकों को पाँव ढके
अनुशासन पर्वों की लुगियाँ
सपनों का एक स्वर्ग
सुलग रहा आँखों में"

५) **ग्रामीण एवं आंचलिकता का चित्रण -** नवगीतकार के लिए अपने गीतों में शहरों एवं महानगरों का चित्रण करना ही अभीष्ट नहीं था, वरन इसके साथ-साथ उसने ग्रामीण प्रकृति एवं अंचल विशेष को भी गीतों में स्थान दिया है। ग्रामीण प्रकृति की मनोहारी सुगंध और हरी भरी हरियाली की शोभा उसे अपनी और खींचती है। प्रकृति जब कुपित होती है तब फसलों एवं झोपड़ियों की दशा क्या होगी। रमेश रंजक ऐसे परिदृश्य को इस प्रकार उजागर करते हैं -

"उफ! / अधपकी फसल के ओल /
भरी सभा में फेके जालिम बादल ने हथगोल /
जौं की टूटी रीढ़ / हरे गेहूँ को चक्कर आय /
फूल चने का खेत रह गया / कौन किसे समझाए /
हवा पूस की / कुटी फूस की / कांपे हौले-हौले।"

नवगीतकार ने ग्रामीण प्रकृति के चित्रण के साथ-साथ आंचलिक परिवेश का चित्रण भी अपने गीतों में किया है। नवगीतकार जिस भौगोलिक क्षेत्र का है अक्सर उसी अंचल की प्रकृति उसकी रचनाओं में चित्रित हुई है। प्रकृति का आंचलिक वैभव व्यक्ति संवेदना को भेदकर उसे स्पंदित करता है। जैसे-जैसे वह उस सौंदर्य में डूबता चला जाता है, वैसे-वैसे ही वह सौंदर्य निखरता है। ठाकुर प्रसाद की ये पंक्तियाँ देखिए –

"पर्वत-पर्वत पर सरसों / घाटी-घाटी राई –
किसने सरसों बोयी / किसने बोयी राई /
मुंडाओं की सरसों / संथालों की राई।"

यहाँ पर संथालों एवं मुंडाओं की जनजाति के जीवन स्तर का संश्लिष्ट चित्र उभरा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नवगीतकारों ने ग्रामीण प्रकृति एवं अंचल विशेष का चित्रण किया है।

६) **प्रेम एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति -** प्रेम एवं श्रृंगार कोई आधुनिक विषय नहीं हैं, अपितु यह प्राचीनकाल से चला आ रहा है। प्रेम उदात्त मनोवृत्ति है, परंतु यह उदात्त और उच्छल स्वरूप छायावादोत्तर गीतों में स्थूल और मांसल हो गया। नयी कविता ने तो इसकी प्रकृति ही बदल कर रख दी है। इसने प्रेम को नारी के अंगो-उपांगो के चित्र खींचने, पिपासा की अभिव्यक्ति तथा यौन-कुंठा में ही समेट दिया है। नवगीतकार अपने गीतों में इसे नव्यता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने इसे व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनों रूपों में चित्रित किया है। उमाकांत मालवीय ने अपने नवगीतों में व्यक्तिगत प्रेम का चित्रण इस प्रकार किया है –

"ओठों के तट पर है / कांपती कथाएँ

सूख के अतिरेक / एक-एक की व्यथाएँ

तुम सचमुच तुम हो या हो मृगजल

या मेरे सपनों ने देह धारी माँसल।"

नवगीतकारों ने व्यक्तिगत प्रेम के अतिरिक्त समष्टिगत प्रेम को भी महत्त्व दिया है। उनका प्रेम अपने दाम्पत्य सम्बन्धों एवं पारिवारिक सम्बन्धों से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र एवं मानव प्रेम का चित्रण करता है। केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में –

"इतना सच है प्यार हमारा / जितना सच है /

महाकाल से बचा अमर ध्रुवतारा / इसी प्यार से /

हमने-तुमने / अपना जीवन सदा सँवारा /

इतना प्रिय है प्यार हमारा / जितना प्रिय है /

गिरे मनुज को देना प्राण सहारा / इसी प्यार से /

हमने-तुमने / पाया अपना कूल किनारा।"

इस प्रकार नवगीतकारों ने अपने गीतों के कथ्य में व्यक्तिगत और समष्टिगत प्रेम के साथ-साथ संयोग और वियोग के चित्र भी अंकित किए हैं।

७) **राष्ट्र चेतना का चित्रण -** आधुनिक युग में राष्ट्रीय चेतना को मुख्य स्वर मानकर सभी साहित्यिक विधाओं ने अपने-अपने स्तर पर इसको वाणी दी है। नवगीतकारों ने भी भारतीय अस्मिता को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीयता का भाव केंद्र में रखा है। ये राष्ट्र के प्रति औपचारिकता की हामी नहीं भरते, वरन सच्चे हृदय से राष्ट्र के प्रति आस्थावान हैं। इन्होंने राष्ट्रीय विकास एवं राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति सदैव अपनी दृष्टि को सजग रखा है। राष्ट्र के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए वीरेंद्र मिश्र कहते हैं -

"धुआँ, आग, चीत्कार, ध्वंस, है राज क्या /
देशों में होती है खींचतान क्यों / शीत-युद्ध से दुनिया हैरान क्यों /
तोप लगाई है किसने इंसान पर / क्या एटम गिरना है हिंदुस्तान पर /
नहीं-नहीं मैं इसे नहीं होने दूंगा / मैं अपने सब प्रश्नों के उत्तर लूँगा /
तो अब गाता हूँ / मेरी कंगाली पर अपना महल उठाए ना /
मेरा देश है ये।"

इसके साथ-साथ नवगीतकारों ने राष्ट्र में फैली बुराइयों की तरफ भी निःसंकोच रूप से संकेत किया है। बेरोजगारी, जाति व्यवस्था, शोषक-शोषित तत्त्व, शहरीकरण की दौड़, नगरीय समस्या, आदि राष्ट्र विरोधी समस्याओं को भी नवगीतकारों ने अपने गीतों के माध्यम से मुखरित किया है। जाति व्यवस्था का विरोध कर दलित वर्ग को ऊपर उठाने के लिए वीरेंद्र मिश्र की ये पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं -

"पूजनीयों को भले पूजक नया हूँ /
प्यार प्रतिमा का मुझे भी तो मिले /
वर्ण भेदों में नहीं सीमित रहा जो /
दान गरिमा का मुझे भी तो मिले /
कह रहा है द्वार का हर एक हरिजन।"

नवगीत का शिल्प पक्ष

नवगीत में जैसी भाव पक्ष की विशालता दिखाई देती है वैसा ही व्यापक इसका शिल्प पक्ष भी है। इन्होंने छायावादोत्तर और नयी कविता में प्रयुक्त शिल्प पक्ष का निषेध कर एक सर्वथा नवीन शिल्प प्रस्तुत किया है। इन्होंने नए प्रतीक, नए छंद, नयी भाषा तथा राजबोध एवं भावात्मक संतुलन के योग से काव्यात्मकता, लयात्मकता और प्रेषणीयता की रक्षा की है। डॉ. कुँवर बेचैन के अनुसार - "आकार-प्रकार में संक्षिप्त गेयता को सुरक्षित रखने वाली उस काव्य विधा को नवगीत कहेंगे, जिसमें सामाजिक यथार्थ की छाया में वैयक्तिक अनुभूतियों को ताजे टटके प्रतीकों , बिम्बों एवं ऐसी नयी शब्दावली में अभिव्यक्त किया जाता है, जिसमें समसामयिक बोध की दीप्ति बलवती है। अनुभूति की सच्चाई, रागात्मक की चमक, नवीन लाक्षणिक प्रतीकों की खोज, सामाजिक यथार्थ से व्यक्ति की समझ का टकराव, रचनात्मक स्तर पर जड़ परम्पराओं का विरोध, भाव और विचारों का समन्वय ऐसे तत्त्व हैं, जिनकी छाया में नवगीतों को पहचाना जा सकता है।"

नवगीतकारों ने अपने गीतों के लिए नयी भाव भूमि तैयार की है और उन भावों को संप्रेषणीयता के लिए नयी शब्द, ध्वनि तथा वाक्य योजना एवं लय और तुक का निर्माण किया है। देखने वाली बात यह है कि नवगीत की तुकें परम्परागत नहीं हैं। इस प्रकार इनमें खुरदरापन और नयापन स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए यहाँ बालस्वरूप राही की ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :

"मैंने कुछ तुकें इस तरह जोड़ी /
बड़ी नयी लगती हैं /
खुरदरी भले हों, पर मेरी कुछ कविताएं /
गीतिमय लगती हैं।"

नवगीत के बिम्ब विधान, प्रतीक योजना में मूर्तता और अमूर्तता दोनों का मिला-जुला रूप दिखाई देता है। इनके बिम्ब विधान अधिक गहनता लिए हुए हैं जिससे ये अनूठे एवं संप्रेषणीय दिखाई पड़ते हैं। इसके साथ-साथ नवगीतकारों ने छंदों का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है। ये छायावादकालीन छंदमुक्त परम्परा से हटकर चले हैं। इन्होंने कुछ अंशों में पाम्परिक छंद को तोड़ा है और कई स्थानों पर मुक्त छंद की दिशा में नए प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं।

६.४ सारांश

अंत में यह कहा जा सकता है कि नवगीत ने पारम्परिक गीतों से भिन्न अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है । इसके शब्द ग्रामीण अंचल एवं शहरी परिवेश से चुने गए हैं । ये छायावादी तत्सम युक्त शब्दावली से निरंतर दूर रहे हैं। उन्होंने रूढ एवं नीरस प्रतीकों का विरोध किया है । सब मिला कर नवगीत का शिल्पपक्ष भी वस्तुपक्ष की भाँति बड़ा विशिष्ट और व्यापक है।

६.५ बोध प्रश्न

१. नवगीत की प्रमुख विशेषताओं को नामांकित कीजिए

२. नवगीत विकास की परम्परा का वर्णन करते हुए इसके वस्तु पक्ष को दर्शाइए।

६.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१. नवगीत का आगमन किस काल में हुआ।

२. नवगीत के प्रमुख चार कवियों के नाम लिखिए।

३. नवगीत कारों को उनके काव्य के आधार पर कितने रूपों में विभाजित किया गया है?

४. नवगीत को कौनसे चार रूपों में विभााजित किया गया है नाम लिखिए।

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई : ७

७

उपन्यास विधा का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

७.३ प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास

७.४ हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा

 ७.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग

 ७.४.२ प्रेमचंद युग

 ७.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग

 ७.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

७.५ सारांश

७.६ बोध प्रश्न

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

७.८ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य

विद्यार्थी हिन्दी साहितय के गद्य साहित्य में उपन्यास विधा का विस्तृत अध्ययन करेंगे । प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकार और उनके उपन्यास का अध्ययन करेंगे।

७.१ प्रस्तावना

हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास अपेक्षाकृत नवीन साहित्यिक विधा मानी जाती है। अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास साहित्य लेखक एवं पाठक दोनों से अधिक समय की मांग करता है। अपने विस्तृत कलेवर एवं देशकाल के बावजूद यह पाठक वर्ग द्वारा सर्वाधिक पसंद की जाने वाली विधा है। उपन्यास में सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उभारने का प्रयास विशेष रूप से किया जाता है। इसमें सामान्य जीवन के द्वन्द्व, फैलाव और गति का समावेश अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में अधिक होता है। इस विधा का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु युग में ही ऐसी स्थिति

munotes.in

बनने लगी थी कि लेखकों को एक नई विधा की आवश्यकता महसूस की। दरअसल वे अपनी पूरी - पूरी बात खुलकर नहीं कह पा रहे थे। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन आदि साहित्य की अन्यान्य विधाएँ युगीन चेतना को पूरी तरह प्रस्तुत करने में असफल साबित हो रही थीं। ऐसी दशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान उपन्यास विधा की तरफ गया। वे बंगला उपन्यासों से परिचित थे और उसी तर्ज़ पर हिन्दी में भी उपन्यास लेखन चाहते थे। स्वतन्त्र उपन्यासों की रचना न होने की स्थिति में कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद के भी पक्षधर थे। उनके प्रयास से अनेक बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कुछ उपन्यास हिन्दी में भी लिखे गए। वे खुद भी उपन्यास लिखना चाहते थे, पर शुरुआती पृष्ठ ही लिख सके। उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा था– 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती।' अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा गुरु' (सन् १८८२) ही निकला। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा लिखित उपन्यास 'भाग्यवती' (सन् १८७७) की बजाय 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास माना है। वैसे बहुत से आलोचक 'भाग्यवती' को प्रथम हिन्दी उपन्यास का दर्जा देते हैं। वैसे निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा बंगला के प्रभाव से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी, पर उसे प्रेमचंद युग में सही रूपाकार और व्यापकता मिली। देवकीनंदन खत्री ने अपने जासूसी उपन्यासों से पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग तैयार कर दिया, जिसे जोड़े रखने एवं उनकी संख्या में गुणोत्तर वद्धि करने का कार्य प्रेमचंद जी ने किया। इसमें उन्हें अपने समकालीन उपन्यासकारों से भी पर्याप्त सहयोग मिला। प्रेमचंद के लेखन के सम्बन्ध में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार - विचार, भाषा - भाव, रहन - सहन, आशा - आकांक्षा दु:ख और सूझ - बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।" प्रेमचंद ने हिन्दी गद्य साहित्य की भूमि को अपनी रचनात्मकता से जो उर्वरा शक्ति प्रदान की, उससे गद्य साहित्य की फसल लहलहा उठी। प्रेमचंद जी के समकालीन रचनाकारों ने तो उपन्यास लिखे ही, उनके बाद में तो उपन्यास साहित्य हिन्दी गद्य साहित्य की पहचान बन गया।

७.२ हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

हिंदी उपन्यास-साहित्य के लेखन का प्रारम्भ **१९**वीं शताब्दी के सातवें दशक के उपरांत हुआ। यद्यपि भारत में कथा-साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध थी तथापि जिस रूप में हिंदी उपन्यास साहित्य का जन्म और विकास हुआ उसका इतिहास उतना पुराना नहीं है। हिंदी लेखकों या उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की प्रेरणा सीधे-सीधे पश्चिमी उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों से मिली। इस अर्थ में हिंदी उपन्यास साहित्य को 'आधुनिक युग की देन' कहना ज़्यादा उपयुक्त है। उपन्यास साहित्य के अस्तित्व में आ जाने के बाद उस पर संस्कृत साहित्य की आख्यायिका आदि का प्रभाव पड़ा हो पर यह वास्तविकता है कि उसके जन्म में इसका किंचित भी योगदान नहीं है। हिंदी में प्रथम कहानी की तरह हिंदी के प्रथम उपन्यास और उपन्यासकार का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद

दिखता है। हिंदी साहित्य में उपन्यास-लेखन का प्रारम्भ मौलिक सृजन की अपेक्षा विभिन्न भाषाओं में रचित उपन्यासों के अनुवादों के माध्यम से हुआ जान पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि "इस द्वितीय (गद्य) उत्थान में आलस्य का जैसा त्याग उपन्यासकारों में देखा गया, वैसा किसी अन्य वर्ग के लेखकों में नहीं।" और वस्तुतः उपन्यास लेखन के क्षेत्र में आलस्य-त्याग की यह चेतना सर्वप्रथम अनूदित उपन्यासों के रूप में प्रस्फुटित होते हुए दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा - साहित्य का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृहत्कथा' मिलता है और संस्कृत में भी पौराणिक आख्यान तथा अन्य उपन्यास - जातीय काव्य मिलते हैं किन्तु आधुनिक युग में उपन्यास एक विशेष शैली पर रचित कथा - गद्य है, जिसका मुख्य आधार वास्तविकता है। प्राचीन कथा - साहित्य में जीवन का कल्पनाजन्य विवेचन मिलता है। हिन्दी में 'उपन्यास' नामक गद्य विधा का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिक काल से ही माना जा सकता है। उपन्यास का प्रादुर्भाव पाश्चात्य प्रणाली पर ही हुआ है, भारतीय परम्परा में नहीं। हिन्दी में जब उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ हुआ तब तक पाश्चात्य साहित्य में इसका पूर्ण रूप से विकास हो चुका था और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से बंगला में भी धड़ाधड़ उपन्यास निकल रहे थे। हिन्दी में यह प्रवृत्ति वहीं से आयी। इस बात को अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास के सम्बन्ध में कहा है – "मैं उपन्यास को मानव - चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव - चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का तत्व है।" प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास का कालखण्ड सन् १८७७ से १९१८ माना जा सकता है। सन् १८७७ में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उपदेशात्मक है। यह अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास तो नहीं था, परन्तु इसमें विषय - वस्तु की नवीनता थी। इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास कहा गया है। हिन्दी उपन्यासों के प्रेरणास्रोत रहे बंगला उपन्यासों की भूमि बहुत उर्वर रही है। बंगला में सन् **१८७७** के पहले बहुत से उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। सन् **१८७३** ई. में सबसे पहले गदाधरसिंह ने बंगला के दो उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। भारतेन्दु युग में बंगला के बहुत - से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। गदाधरसिंह ने बंगविजेता और दुर्गेशनन्दिनी, राधाकृष्णदास ने स्वर्णलता, मरता क्या न करता, कार्तिकप्रसाद खत्री ने इला, प्रमोला, जया, मधुमालती इत्यादि राधाचरण गोस्वामी ने जावित्री, मृण्मयी, बिरजा इत्यादि बंगभाषा के उपन्यासों के अनुवाद किये। यह अनुवादों की परम्परा **२०**वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक अबाध रूप से चलती रही। तत्कालीन उपन्यासों में भवानीचरण बन्द्योपाध्याय का नवबाबू विलास (सन् **१८२५**) और टेकचन्द ठाकुर (पियारीचन्द्र मित्रा) का आलालेर घरेर दुलाल (सन् **१८५७**) बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के कई उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। हिन्दी उपन्यासों की भूमि बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा भी समृद्ध हुई है। बंगला के अलावा अंग्रेजी उपन्यासों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा है। 'परीक्षागुरु' पर तो अंग्रेजी का सीधा प्रभाव स्वीकार किया जाता है। 'परीक्षागुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास होने क दर्जा प्राप्त है।

munotes.in

७.३ प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास साहित्य विषय वैविध्य एवं पाठनीयता के लिए लोकप्रिय है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन कार्य कब शुरू हुआ इस विषय पर भी अन्य विधाओं की तरह पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान भारतेंदु को ही हिंदी के प्रथम उपन्यास-लेखक और प्रवर्तक का श्रेय देना चाहते हैं। उनकी कृति 'पूरन प्रकाश और 'चंद्रप्रभा' को हिंदी का प्रथम उपन्यास माना है। पर वास्तव में भारतेंदु जी की यह कृति उनकी मौलिक रचना न होकर मराठी से अनुदित है।

किंतु हिंदी में उपन्यास लेखन की परम्परा का सूत्रपात अनुवादों से मानते हुए आचार्य शुक्ल, रामकृष्ण वर्मा को उनके द्वारा अनुदित उपन्यासों के कारण, हिंदी का प्रथम उपन्यास लेखक होने का गौरव प्रदान करना चाहते हैं। इस परम्परा का प्रारम्भ सन **१९५१** से रामकृष्ण वर्मा के अंग्रेजी उपन्यासों के हिंदी अनुवादों के माध्यम से हुआ। तत्पश्चात् इस अनुवाद कार्य में कार्तिक प्रसाद खत्री सामने आए। हिंदी उपन्यास के इस ऐतिहासिक विकासक्रम को स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी हिंदी के प्रथम उपन्यासकार के रूप में भारतेंदु जी को स्वीकृति प्रदान करते नजर नहीं आते। परंतु वार्ष्णेय जी संकेत देते हैं कि "भारतेंदु ने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने स्वयं अनुवाद किया और दूसरों को इस ओर उत्साहित किया।" इससे स्पष्ट होता है कि वे भारतेंदु को हिंदी का प्रथम उपन्यास लेखक मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का तो ऐसा स्पष्ट मत है। 'हिंदी साहित्य कोश' (प्रथम भाग) में उल्लिखित है कि "इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मराठी से अनुदित 'पूरन प्रकाश और चंद्रप्रभा' नामक हिंदी का प्रथम सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किया।" लेकिन कतिपय इतिहास लेखकों का मत है कि भारतेंदु के समकालीन लेखक लाला श्रीनिवासदास हिंदी के प्रथम उपन्यास लेखक हैं और उनका उपन्यास 'परीक्षा गुरु' हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। शुक्ल जी अनुदित उपन्यासों की परम्परा का ख़्याल करते हुए रामकृष्ण वर्मा और कार्तिक प्रसाद खत्री को यह श्रेय देना चाहते हैं। परंतु डॉ. श्रीकृष्ण का विचार है कि "देवकीनन्दन खत्री के 'चंद्रकांता संतति' के पहले हिंदी में उपन्यास के साहित्य रूप की प्रतिष्ठा न हो सकी।" लेकिन लाला श्रीनिवास दास उनसे पहले के उपन्यासकार हैं और 'परीक्षा गुरु' एक बड़ी सीमा तक, औपन्यासिक तत्त्वों से समन्वित हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। अतः इस उपन्यास को हिंदी का प्रथम उपन्यास कहना बिलकुल उपयुक्त है।

इस युग के पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधकृष्ण दास, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती (सन् १८७७) लिखकर स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा दी थी। लाला श्रीनिवास दास ने परीक्षागुरु (सन् १८८२) में यह सन्देश दिया कि जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती, वह एक बार की परीक्षा से मन में बैठ जाती है। जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी ने सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। उन पर अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उन्होंने सन् १९०० में जासूस नामक मासिक पत्र निकाला। उन्होंने इस पत्र के लिए कई उपन्यास लिखे। अद्भुत

लाश (सन् १८९६), गुप्तचर (सन् १८९९), बेकसूर की फाँसी (सन् **१९००**), सरकटी लाश (सन् **१९००**) आदि उनके कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। उन्हें हिन्दी का 'आर्थर कानन डायल' कहा गया है। उनके अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, रामप्रसाद लाल आदि ने भी ऐसे कुछेक उपन्यास लिखे हैं।

७.४ हिन्दी उपन्यासों की विकास यात्रा

हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा को अलग-अलग विद्वानों ने अपनी मान्यता एवं शोध के आधार पर विभिन्न नाम देते हुए परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानों ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किये गया गद्य साहित्य के विभाजन को केन्द्र में रखते हुए उपन्यास साहित्य का विभाजन किया है। उन विद्वानों ने उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा को प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान, तृतीय उत्थान के रूप में प्रस्तुत किया है। यहां प्रथम एवं द्वितीय उत्थान से तात्पर्य प्रारंभिक उपन्यासों अर्थात प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों से है। हालांकि कुछ विद्वान प्रथम उत्थान को भारतेंदु युगीन उपन्यास तथा द्वितीय उत्थान को द्विवेदी युग भी कहते हैं। वहीं अधिकांश विद्वानों ने उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी को ही केन्द्र में रखते हुए विभाजन करना उचित समझा है। इस विचार धारा से प्रभावित विद्वानों ने उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा को निम्नलिखित ४ भागों में बांटा है-

१. प्रेमचंद पूर्व युग
२. प्रेमचंद युग
३. प्रेमचंदोत्तर युग
४. स्वातंत्र्योत्तर युग

७.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग:

हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रेमचंद पूर्व युग भारतेंदु जी के प्रभामंडल से आलोकित रहने वाला युग है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने हिंदी की विभिन्न विधाओं में महत्त्वपूर्व योगदान दिया परंतु उपन्यास के विकास में उनका योगदान अधिक नहीं है। उन्होंने कुछ उपन्यासों का अनुवाद अवश्य किया परंतु किसी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं की। उन्होंने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था परंतु वह पूर्ण नहीं हो पाया। यही कारण है कि अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस प्रारंभिक चरण को भारतेंदु युग कहने के बजाय प्रेमचंद पूर्व युग कहना कहीं ज्यादा श्रेयस्कर समझा। वहीं कुछ विद्वानों ने इसे प्रथम एवं द्वितीय उत्थान के रूप में प्रस्तुत किया है। विद्वानों ने इस युग की समयावधि १८७०-१९१६ तक मानी हैं, वहीं कुछ विद्वान इसका विस्तार १९१८ तक स्वीकारते हैं। इस युग में कुछ उपन्यासकारों ने तिलिस्मी व जासूसी उपन्यास लिखे। इस काल के उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी का नाम उल्लेखनीय है। देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता व चंद्रकांता संतति जैसे तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यास लिखे। ये उपन्यास इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि इन्हें पढ़ने के लिए लाखों लोगों ने हिंदी सिखी। गोपालराम गहमरी ने पाँच दर्जन से

अधिक जासूसी उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी ने तिलिस्मी उपन्यासों का ढेर सा लगा दिया। बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान, एक सुजान' उपन्यास लिखे। अयोध्या सिंह उपाध्याय भी एक लोकप्रिय उपन्यासकार हुए। उन्होंने 'ठेठ हिंदी का ठाठ'तथा 'अधखिला फूल' उपन्यासों की रचना की। भारतेंदु काल में जो अन्य लेखक उपन्यास-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए उनमें राधारमण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, बालमुकुंद शर्मा, गोकुल नाथ शर्मा आदि प्रमुख हैं। इन उपन्यास लेखकों ने सामाजिक ऐतिहासिक वृत्तों के आधार पर प्रेम, शौर्य, सतीत्व, जातीय गौरव और राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना से समन्वित उपन्यास लिखे। सामाजिक उपन्यासों की ही एक शाखा के रूप में नैतिक शिक्षाओं से पूर्ण उपन्यासों की परम्परा विकसित हुई। नैतिक शिक्षापरक अनेक परम्परा की सर्जना हुई। इसमें बालकृष्ण भट्ट, रत्नचंद प्लीडर आदि के उपन्यासों ने इस साहित्यिक विद्या का भंडार काफ़ी समृद्ध बनाया। इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'दीप निर्वाण', 'सरोजिनी', 'दुर्गेशनंदिनी', 'मधुमती', 'राधारानी', 'त्रिवेणी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'हृदयहारिणी', 'लवंगलता', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन चरित्र', 'सुख शर्वरी', 'स्वतंत्र रमन और परतंत्र लक्ष्मी', 'धूर्त रसिक लाल', 'बड़ा भाई', 'सास पतोहू' एवं 'दिनानाथ' आदि उल्लेख्य हैं। इन उपन्यासों में राष्ट्र प्रेम का प्रचार, प्रचलित सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के मूलोच्छेदन का उद्देश्य ही प्रमुख है। गुण-दोषों का ठीक-ठाक विवेचना करना इन उपन्यासों का अंतिम लक्ष्य है। भारतेंदु युग में ही "तिलस्मी अय्यारी और जासूसी उपन्यास लेखन की पुख़्ता नींव पड़ चुकी थी।" इस प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक किशोरी लाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में मिलती है। ऐसे उपन्यासों में चमत्कार प्रदर्शन, कौतूहल वृद्धि, जादू-टोना, घटना-वैचित्त्य, प्रेम-प्रसंग, मिलन की उत्सुकता, विश्व की व्याकुलता, कथानक की जटिलता, चरित्र-संघटन और सुखान्तता की प्रवृत्ति मिलती है। 'चंद्रकांत संतति' यद्यपि इसी तिलस्मी अय्यारी और जासूसी स्रोत से लिखा गया उपन्यास है तथापि 'पहले मौलिक उपन्यास लेखक, जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई' वे देवकी नंदन खत्री ही थे। उपन्यासकला की दृष्टि से यह उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' हिंदी का प्रथम मौलिक और साहित्यिक उपन्यास है। यद्यपि शुक्ल जी किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास को प्रथम बार साहित्यिक कोटि की रचनाएँ मानते हैं तथापि इस सहित्यिकता का प्रथम प्रस्फुटन 'चंद्रकांता संतति' में ही हुआ था।

भारतेंदु काल में जासूसी, अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों की ही प्रधानता रही और इन उपन्यासों ने जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया परंतु साहित्यिक समाज का मनोविनोद नहीं हो सका। इस काल में अनुवादों को छोड़कर कथासृष्टि की दृष्टि से मौलिक प्रौढ़ और उच्च कोटि के उपन्यास, नहीं के बराबर लिखे गए हैं। लेकिन इसके बावजूद कहना पड़ता है कि 'चंद्रकांता' में जिस शिल्प तथा लोकप्रचलित कथाओं के स्रोत को ग्रहण किया गया, उससे ऐसे उपन्यासों में इतना कलात्मक सौंदर्य आ गया है कि तिलस्मी उपन्यासों को ही कलापूर्ण उपन्यासों का प्रथम स्वरूप मानना पड़ेगा। भारतेंदु युग यानी प्रेमचंद पूर्व युग में बहुत - सी पत्रिकाएँ भी निकलने थीं। उस युग की प्रसिद्ध पत्रिका देवकीनन्दन खत्री द्वारा सम्पादित उपन्यास लहरी है, इस युग में तिलस्म की प्रवृत्ति फारसी से आई। फारसी से तिलस्म उर्दू में आया और देवकीनन्दन खत्री ने उर्दू से लेकर उसे हिन्दी में प्रयुक्त किया। **१९**वीं शताब्दी के प्रमुख उपन्यासकारों की बात करें तो देवकीनन्दन खत्री प्रथम हैं। चन्द्रकान्ता,

नरेन्द्रमोहिनी, वीरेन्द्रवीर, कुसुमकुमारी, काजर की कोठरी, चन्द्रकान्ता संतति, गुप्त गोदना और भूतनाथ (छ: भाग) इनके प्रमुख उपन्यास हैं। पं. किशोरी लाल गोस्वामी के प्रणयिनी परिणय, लवंगलता, जिन्दे की लाश, लीलावती, राजकुमारी, लखनऊ की कब्र, अंगूठी का नगीना, रंगमहल के हलाहल, तारा आदि हैं। तीसरे कथाकार गोपालराम गहमरी के चतुरचला, गुप्तचर, डबल जासूस, जमुना का खून, चक्करदार चोरी, बेकसूर फाँसी, पड़े में धाली, जासूस की बुद्धि, मेरी और मेरीना, खूनी की खोज आदि उपन्यास हैं। गहमरी ने मनुष्य की अपराध - वृत्ति को अपने उपन्यासों का मूल आधार बनाया है। उनके उपन्यासों के मूल विषय हैं - चोरी, डकैती, हत्या - विशेष रूप से हत्याएँ। लेखक ने ग्राम, नगर और महानगर सभी स्थानों से सनसनीपूर्ण घटनाएँ जुटाई हैं। द्विवेदी युग में हिन्दी उपन्यास में ऐप्यारी और तिलस्मी उपन्यासों का प्राधान्य हो गया। इस काल के उपन्यासकार हैं - अयोध्या सिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, ईश्वरी प्रसाद आदि। प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों को अध्ययन की सुविधा के लिए हम पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं—सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी तथा ऐय्यारी के उपन्यास, जासूसी उपन्यास, प्रेमाख्यात्मक और ऐतिहासिक उपन्यास।

सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' सामाजिक समस्या को लेकर लिखा हुआ प्रथम मौलिक उपन्यास था। इसकी रचना **१८७७** में हुई थी। यह अपने समय में बहुत लोकप्रिय रहा। श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' भी मौलिक सामाजिक उपन्यास है, परन्तु इसका वस्तु-विन्यास ऐसा है कि पाठक का हृदय ऊबने लगता है। स्थान-स्थान पर अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत के नीतिपूर्ण उद्धरणों के कारण पाठक का हृदय भरने लगता है। बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरी लाल गोस्वामी का 'हृदयहारिणी', लज्जा राम मेहता का 'परतन्त्र लक्ष्मी', कार्तिक प्रसाद का 'दीनानाथ', हनुमन्तसिंह का 'चन्द्रकला', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' अच्छे सामाजिक उपन्यास थे। कुछ और भी उपन्यास लिखे गये थे, जिनमें सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया था, परन्तु उनमें उपदेश वृत्ति इतनी अधिक है कि उपन्यास की रोचकता नष्ट हो जाती है।

तिलस्मी तथा ऐय्यारी उपन्यास :

हिन्दी में तिलस्मी और ऐय्यारी का भाव फारसी कहानियों के अनुकरण से आया। सन् **१८९१** में देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकांता संतति' नामक दो उपन्यास लिखे। ये ऐय्यारी की रचनायें इतनी लोकप्रिय हुई कि जो हिन्दी पढ़ना भी नहीं जानते थे उन्होंने केवल इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी पढ़ना सीखा। इससे प्रभावित होकर अन्य उपन्यासकारों ने भी तिलस्मी और ऐय्यारी का प्रयोग किया। किशोरीलाल गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध लेखक भी अपने स्वर्गीय 'कुसुम' और 'लवंगलता' नामक उपन्यासों में इस बीमारी से बच न सके। देवकीनन्दन खत्री के अतिरिक्त देवीप्रसाद शर्मा ने 'सुन्दर सरोजनी', हरे कृष्ण जौहर ने 'भयानक भ्रम', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'बसन्त मालती' आदि उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार के उपन्यासों का एक ढेर-सा लगा दिया।

munotes.in

जासूसी उपन्यास :

हिन्दी के उपन्यासकारों को जासूसी उपन्यासों की प्रेरणा, पश्चिम की पुलिस खोजों से भरे हुए उपन्यासों से प्राप्त हुई। इस शाखा के सबसे प्रमुख लेखक गोपालराम गहमरी थे। इनके कथानक स्वाभाविक होते थे। 'जासूस की चोरी', 'जासूसों पर जासूस', 'किले में खुन', 'खून का भेद', 'खुनी खोज' आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास थे। चन्द्रशेखर के 'अमीर अली ठग', 'शशिबाला' किशोरीलाल गोस्वामी का 'जिन्दे की लाश' आदि इस कोटि के उपन्यास हैं।

प्रेमाख्यात्मक उपन्यास :

सामाजिक उपन्यासों को छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों का विषय प्रेम ही होता था। तिलस्मी और ऐय्यारी के उपन्यासों में भी प्रेम के अतिरिक्त रूप के दर्शन होते हैं। इनके अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'लीलावती', 'चन्द्रावती', 'तरुण तपस्विनी' आदि उपन्यासों में भी प्रेम का ही आश्रय लिया है।

ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यास भी इस युग में लिखे गये, परन्तु उनमें ऐतिहासिक अनुसंधान के आधार पर राजनीतिक एवम् आर्थिक परिस्थितियों के चित्रण का अभाव है। मिश्र बन्धुओं का 'वीरमणि', किशोरीलाल गोस्वामी का राजकुमारी', 'तारा', 'चपला', 'लखनऊ की कब्र' इस प्रकार के उपन्यास हैं। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासों में औपन्यासिक तत्वों के समुचित सामंजस्य का अभाव था। अधिकांश उपन्यास घटना-प्रधान, मनोरंजन या कौतूहलवर्धक होते थे। फिर भी आगे के युग के लिये उपन्यास के पाठकों को तैयार करने का श्रेय इन्हीं उपन्यासों एवं उपन्यासकारों को है। देवकीनन्दन खत्री की व्यावहारिक भाषा को ही प्रेमचंद ने अपना आधार बनाया।

७.४.२ प्रेमचंद युग:

हिन्दी उपन्यास साहित्य का स्वर्ण काल कहे जाने वाले प्रेमचंद युग का समय १९१६-१९३६ माना गया है। हालांकि अधिकांश विद्वाना प्रेमचंद युग की शुरूआत १९१८ से मानते हैं। इस युग को हिन्दी उपन्यास साहित्य का 'तृतीय उत्थान' भी कहा गया है। इस युग में सम्राट प्रेमचंद का प्रादुर्भाव हुआ और उपन्यास साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ।

प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' कहलाते हैं। उन्हीं के उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण से एक नए युग का आरंभ हुआ। वस्तुतः वे हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार थे। उन्होंने उपन्यास विधा को नई पहचान दी। उनके उपन्यासों में निम्न वर्ग, मध्यमवर्ग, भारतीय किसान व समस्त शोषित वर्ग की विभिन्न समस्याओं का चित्रण मिलता है। प्रेमचंद युग में सामाजिक, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गए। प्रेमचंद के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं। सन **१९१८** में प्रेमचंद का उपन्यास 'सेवासदन'प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही उपन्यासों की स्वस्थ परंपरा चल निकली। प्रेमाश्रम (**१९२१** ई.), रंगभूमि (**१९२५** ई.), कायाकल्प (**१९२६** ई.), निर्मला (**१९२७** ई.), गबन

(१९३१ ई.), कर्मभूमि (१९३२ ई.), गोदान (१९३६ ई.) और मंगलसूत्र (१९३६ ई.- अधूरा) आदि प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज की यथार्थ झांकी मिलती है। उस समय के समाज में जितनी भी बुराइयां थी उनका वर्णन प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। गोदान तो प्रेमचंद की ही नहीं वरन हिंदी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। अब तक उपन्यास - निर्माण का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था, प्रेमचंद ने सर्वप्रथम यथार्थ को भूमिका पर चरित्र - चित्रण की ओर पूर्णरूप से ध्यान दिया और मानव जीवन और मुख्यतया कृषक वर्ग एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने उपन्यासों में बड़ी संवेदनशील शैली में प्रदर्शित किया। इसलिए उन्हें कुछ परिस्थिति - चित्रण भी करने पड़े, जो बड़े सजीव एवं यथार्थ हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता सरलता एवं अकृत्रिमता ही है। वस्तुतः हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी विचारधारा का उचित प्रकाशन प्रेमचंद से ही प्रारम्भ होता है। वैसे तो भारतेन्दु युग में भी यथार्थ की प्रवृत्ति थी, किन्तु इस समय इसका मूल राष्ट्रीय चेतना और जीवन की विविध परिस्थितियाँ थी। इसीलिए इस युग की यथार्थानुभूति में वंदना की विवृत्ति है।

प्रेमचंद ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया, अपनी कृतियों से अपने समकालीन अन्य साहित्यकारों को प्रेरणा दी। प्रेमचंद जी के लिखने के समय देश में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गये थे। आर्य समाज का सुधार आन्दोलन तेजी से चल रहा था। प्रेमचंद जी के उपन्यासों पर तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने उपन्यास को तिलस्मी और प्रेमाख्यान की दलदल से निकालकर मानव जीवन की दृढ़ नींव पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके उपन्यासों की कथावस्तु कल्पना-प्रसून न होकर मानव-जीवन की वास्तविकता से ओत-प्रोत है। चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में प्रेमचंद जी ने नवीन परिवर्तन उपस्थित किया। उसमें उन्होंने स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा की। उनकी सूक्ष्म दृष्टि महलों से लेकर झोपड़ियों तक, खेतों और खलिहानों से लेकर बड़ी-बड़ी मिलों तक समान रूप से पड़ी। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कोरा यथार्थवाद या कोरा आदर्शवाद जन-कल्याण नहीं कर सकता। अत: उनका साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी ही रहा। उन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि मनुष्य का चरित्र कोई स्थिर वस्तु नहीं है, संगति और सम्पर्क से उसमें परिवर्तन होता रहता है। भले आदमी बुरे बन सकते हैं और बुरे आदमी भले। जो लोग यह चिल्लाते हैं कि कला, कला के लिये है उनका उन्होंने खूब विरोध किया। उनका विचार था कि कला वह है, जिससे हमारी सुरुचि जाग्रत हो, हमें आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति प्राप्त हो, हममें शक्ति और गति आये। यही कारण है कि उन्होंने सभी समस्याओं के विषय में चाहे वह राजनीतिक हों या सामाजिक, आर्थिक हों या धार्मिक, अपना पृथक् दृष्टिकोण प्रस्तुत किये। यह निश्चित है कि कहीं-कहीं वे साहित्यकार न रहकर एक उपदेशक का रूप ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु समाज में फैली कुरीतियों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराने में वे पूर्ण सफल हुए हैं। 'सेवा सदन' में उस भयंकर सामाजिक दोष का चित्रण किया गया है, जिससे विवश होकर हमारी कुल कन्यायें और कुल वधुएँ वेश्या बन जाती हैं। 'प्रेमाश्रम' में एक ओर भारतीय किसान की निर्धनता और विवशता तथा दूसरी ओर विधवाओं की समस्या दिखाई गई है। 'निर्मला' वृद्ध विवाह और दहेज-प्रथा के दुष्परिणामों का भंडाफोड़ करता है। 'गबन' में यह दिखाया गया है कि स्त्रियों का आभूषण-प्रेम, हरी-भरी गृहस्थी को किस प्रकार ध्वस्त कर देता है।

'गोदान' में किसान की विवशता तथा 'कर्मभूमि' में जमींदार-किसान सम्बन्ध, अछूतोद्धार, मन्दिर प्रवेश, म्युनिसिपल कमेटी आदि सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इस उत्थान के दूसरे महत्वपूर्ण लेखक जयशंकर प्रसाद हैं जो अपने 'कंकाल' में समाज के वर्तमान नर - कंकाल का चित्र उतारने में सफल हुए हैं। इस उपन्यास में प्रसाद जी ने भाव प्रधान एवं कल्पनाप्रवण शैली का प्रयोग करके नई सम्भावनाओं को जन्म दिया। इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को हल करने की चेष्टा की गयी है। जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यासों में सुधार का मूल मन्त्र निहित है। 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' (अपूर्ण) में 'कंकाल' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। उपन्यासकार प्रसाद की भाषा न दुरूह है और न दार्शनिकता से युक्त। वह स्वाभाविक है, फिर भी प्रेमचन्द्र जैसी नहीं है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी तीन उपन्यास लिखे अप्सरा, अलका तथा निरुपमा लेकिन उन्हें उपन्यास विधा में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी काव्य के क्षेत्र में। विशम्भरनाथ कौशिक उपन्यास लेखन में प्रेमचंद जी के अनुयायी थे, ऐसा कहा जाये तो गलत नहीं होगा। उनके वर्णन, कथोपकथन, पात्रों का चरित्र-चित्रण सभी कुछ प्रेमचंद के समान है। परन्तु मन को आन्दोलित करने की जितनी क्षमता कौशिक जी में है, उतनी प्रेमचंद में नहीं। 'माँ' और 'भिखारिणी' इनके प्रमुख उपन्यास हैं। बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन तथा चतुरसेन शास्त्री आदि उपन्यासकार प्रेमचंद युग के ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने केवल यथार्थ के नग्न चित्रण पर ही अपनी दृष्टि डाली। इनकी दृष्टि केवल वैश्यालय और मदिरालयों के चारों ओर चक्कर लगाकर ही लौट जाती है। इस युग में हिन्दी उपन्यास के एक विशेष अभाव की पूर्ति वृन्दावन लाल वर्मा ने की। प्रेमचंद के पहले और बहुत से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये थे, परन्तु उनमें न लेखकों का ऐतिहासिक ज्ञान प्रकट होता था और न ही तत्कालीन समाज का चित्रण देखने को मिलता। इतिहास के आवरण में लिपटी ये केवल प्रेम कथाएँ होती थीं। वृन्दावन लाल वर्मा ने 'गढ़ कुण्डार' और 'विराट की पद्मनी' उपन्यास लिखकर इस दिशा को एक नया मोड़ दिया। भगवती चरण वर्मा का 'चित्रलेखा' इस युग का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें पाप क्या वस्तु है इसका व्यक्तिगत ढंग से बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है। 'चित्रलेखा' के पात्र प्रेम की एक नवीन परिभाषा गढ़ते हैं। इस युग में प्रेमचंद की भारतीय में कुछ अन्य सामाजिक उपन्यासकार हुये बाबू प्रताप नारायण श्रीवास्तव (बिंदा विकास विजय और विसर्जन के लेखक) श्री जैनेन्द्रकुमार (तपोभूमि, सुनीता, परक, कल्याणी रसखस) प्रति प्रमुख है इन उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के पिता मिला। वृंदावनलाल वर्मा अपनी ऐतिहासिकता के साथ उपन्यास क्षेत्र में सम्भावनाओं को लेकर प्रस्ट हर वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में नई उद्भावनाओं के साथ प्राचीन बंटर का मेल करके नये ढंग- इतिहास और साहित्य का समन्वय प्रस्तुत किया है। इनसे बहुत में उपन्यास है जिसमें 'शानी को रानी', 'गद कुन्दार', 'मृगनयनी गढ़कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'रानी लक्ष्मीबाई' प्रमुख है। इन सभी उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतया समाज मुखापेक्षा रहता है। प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में शिवपूजन सहाय का एक मात्र उपन्यास देहाती दुनिया (**१९२६** ई.) प्रसिद्ध है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' के उपन्यासों में भावपूर्ण आदर्शवादी शैली में मनुष्य की सद्वृत्तियों की महिमा अंकित की गई है। प्रेमचंद की तरह ही राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह (**१८९०** ई.- **१९७१** ई.) और सियारामशरण गुप्त ने भी गांधीवादी दर्शन से

प्रभावित होकर उपन्यासों की रचना की है। प्रेमचंद पहले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने भारतीय जन - जीवन की समस्याओं को गहराई से समझा। उनके उपन्यास आम आदमी के दुख - दर्द की दास्तान हैं।

७.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग :

हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा के चतुर्थ चरण को विद्वानों ने प्रेमचंदोत्तर युग का नाम दिया है। इसका समय काल सन १९३६ से १९६० माना गया है। वहीं कुछ विद्वान स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास का अलग करने के बजाय उसे भी प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य के अंतर्गत ही मानकर चलते हैं। हालांकि हम यहां दोनों युगों को अलग-अलग रखकर बात करेंगे। सन् १९३६ के उपरान्त प्रेमचंद के उत्तर युग में उपन्यास क्षेत्र में व्यक्ति के मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी। एक पात्र को विभिन्न परिस्थितियों में डालकर उसके हृदयगत भावों, प्रेरणाओं, रहस्यों का उद्घाटन और विश्लेषण करना ही उपन्यासकारों का उद्देश्य हो गया। सामाजिक समस्यायें अब भी उपन्यास में होती थी, परन्तु लक्ष्य व्यक्ति ही होता है, समाज नहीं, समाज को गौण स्थान दिया जाने लगा। इस नवीन धारा के प्रवर्तक श्री जैनेन्द्र ने 'परख', 'तपोभूमि', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्याग-पत्र' आदि उपन्यास लिखे हैं। इलाचन्द्र जोशी ने कथा-क्षेत्र में फ्राइड और एडरर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। 'संन्यासी' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। 'शेखर' एक जीवनी अज्ञेय जी का उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग है। कथावस्तु की दृष्टि से न उसमें कोई कथा है और न घटनाओं की तारतम्यता। इसलिये इसमें कोई मनोरंजन की सामग्री भी नहीं है, केवल व्यक्ति विशेष द्वारा अतीत की घटनाओं का विश्लेषण मात्र है।

यशपाल के उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार है। 'दादा कामरेड', 'देश विद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में लेखक ने कांग्रेस कार्यक्रम की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम को अधिक उपयोगी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वैसे यशपाल व्यक्तिगत रूप से भी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित थे, उनकी गिनती प्रमुख क्रांतिकारियों के रूप में भी की जाती है। रामेश्वर शुक्ल अंचल ने 'चढ़ती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और 'मरु प्रदीप' आदि उपन्यास लिखे हैं। सामाजिक जीवन में परिवर्तन और क्रान्ति के लिए उनके उपन्यासों में विशेष प्रेरणा है। यात्रा साहित्य के कुलश्रेष्ठ तथा अन्यान्य भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन ने 'जय-यौधेय' और 'सिंह सेनापति' उपन्यासों में भारत के बहुत पुराने गणतन्त्रों की पृष्ठभूमि बनाकर तथा कल्पित पात्रों का आश्रय लेकर ऐतिहासिक उपन्यासधारा को एक विशेष दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है। वृन्दावन लाल वर्मा ने तो इस युग में कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'झाँसी की रानी' तथा 'मृगनयनी' सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हैं। यशपाल की 'दिव्या' भी ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक वातावरण की दृष्टि में लेखक पर्याप्त सफल हुआ है। चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगर वधू' सर्वोत्तम ऐतिहासिक कृति है। गोविन्दबल्लभ पन्त के 'अमिताभ' नामक उपन्यास में गौतम बुद्ध की जीवन गाथा वर्णित है। यह उपन्यास और जीवन-चरित्र के बीच की रचना है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में दो पीढ़ियाँ उपन्यास लेखन में सक्रिय रही हैं। एक पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है, जिनका मानस संस्कार प्रेमचंद युग में बना लेकिन उन्होंने बाद में अपनी नई राह बना ली। दूसरी पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में आई। उन उपन्यासकारों ने उपन्यास लेखन में नई सम्भावनाओं की ओर संकेत किया। वर्गीकरण की बात की जाए तो सामान्यत: इन उपन्यासों को सामाजिक, मानवतावादी, स्वच्छन्दतावादी, प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक वर्गों में रखा जा सकता है। वैसे इस वर्गीकरण के बावजूद कई ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें कई वर्गों की प्रवृत्तियाँ घुल - मिल गई हैं। इस वर्गीकरण के अलावा कई उपन्यासों में आधुनिकता और जनवाद को केन्द्र में रखा गया है। इस युग में अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में विविध विषयों को सफलतापूर्वक कथानक का रूप दिया। बूँद और समुद्र में नागर की औपन्यासिक शक्ति पूरी तरह उभर कर सामने आई है। बूँद और समुद्र के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज की बात की है। उन्होंने 'शतरंज' और 'खिलाड़ी' जैसा ऐतिहासिक उपन्यास लिखा तो 'सुहाग के नुपूर', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' और 'अग्निगर्भा' जैसे सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित उपन्यास भी लिखे। इस युग में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का भी भरपूर लेखन हुआ। दार्शनिक तथ्यों के विवेचन से पूर्ण और जीवन संबंधी गहन विचारों का बड़ा ही सुलझा हुआ रूप प्रस्तुत करने वालों में अज्ञेय जी प्रमुख हैं। इन्होंने हिन्दी उपन्यासों को एक नया मोद 'दिया। इनका शेखर : एक जीवनी' (दो खण्ड) हिन्दी उपन्यास संसार में टाइप बन गया है। इसमें मनावैज्ञानिक विश्लेषण में दार्शनिकता का पुट देकर अज्ञेय जी ने एक नूतनता ला दी है। इस उपन्यास का चित्रपट अत्यन्त विशाल है और स्पष्ट भी। शेखर की अतीत को स्मृतियों के आधार पर किसी स्वतंत्र निर्णय पर पहुँचना कठिन है क्योंकि उसके अतीत को जो सामग्री मिलती है वह शेखर के रंग में रंगी हुई है। इस उपन्यास की टेकनीक अतीत को स्मृतियों के विश्लेषण द्वारा वर्तमान की व्याख्या प्रस्तुत करना है। इस प्रकार सह - स्मृतियों के आधार पर आत्म - विश्लेषण द्वारा चरित्र का क्रमिक विकास दिखाना इस उपन्यास का प्रधान लक्ष्य है। यही आधुनिक उपन्यास की मूल समस्या है। इसके बाद 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय जो प्राकृतवादी अधिक हो गए हैं। इसमें सेक्स की भावना अधिक उभर आयी है। इस उपन्यास में और लॉरिस के 'लेडीचैटलीज लवर' में आश्चर्यजनक समानता मिलती है। अज्ञेय जी का 'अपने - अपने अजनबी' उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' के समान मृत्यु का साक्षात्कार है। आजकल मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास - लेखकों ने सेक्स को प्रधानता देना शुरू कर दिया है। द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'धेरे के बारह' यौन वर्जनाओं को अभिव्यक्ति में ही मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद को इति मानता है। डॉ. देवराज के चारों उपन्यास पथ की खोज, बाहर - भीतर, 'रूई और पत्थर' तथा अजय की डायरी। इनमें मध्यवर्ग के शिक्षित बुद्धिजीवी समाज के जीवन की करुण यथार्थता एवं विडम्बना का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है।

भगवतीचरण वर्मा का कृतित्व बड़ा उत्कृष्ट है। उनका सुप्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। इसके आधार पर एक फिल्म भी बनी, इसके रेडियो रूपान्तर भी हुए। सुप्रसिद्ध आलोचक पद्मभूषण आचार्य डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के चार ऐतिहासिक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। पहला

बाणभट्ट की आत्मकथा, दूसरा चारुचन्द्रलेख और तीसरा पुनर्नवा तथा चौथा अनामदास का पोथा। चारों ही उपन्यासों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण बहुत सुन्दर है। ये उपन्यास बाणभट्ट की शैली का अनुकरण करते हुए से प्रतीत होते हैं। अत: इन्हें गद्य - महाकाव्य कह सकते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ इसको आत्मकथा मानते हैं, दूसरे उपन्यास, और इनसे भी आगे कुछ इसे हर्षकालीन संस्कृति, साहित्य और कला का इतिहास। इतना तो निश्चित है कि इसमें उपन्यास, आत्मकथा और संस्कृति के इतिहास - तीनों के ही तत्व मिल जाते हैं।

रोमानी प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाले अश्क जी भी उल्लेखनीय हैं। इसी कोटि के अन्य लेखकों में उग्र जी, रामचन्द्र तिवारी, विष्णु प्रभाकर, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (निरूपमा तथा प्रभावती) प्रमृति हैं। भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में स्वयं को तटस्थ रखकर समस्याओं का विवेचन किया है। 'चित्रलेखा' में पाप - पुण्य की समस्या है तो 'टेढ़े - मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में लेखक ने आधुनिक काल के प्रश्नों का बौद्धिक विश्लेषण किया है। 'रेखा' और 'सीधी सच्चो बातें' शीर्षक दो नवीन उपन्यासों में वर्मा जी ने प्रगतिशील दृष्टि अपनाई है। इसके अतिरिक्त तीन वर्ष, आखिरी दाँव, थके पाँव, पतन, वह फिर नहीं आई, अपने खिलौने, सामर्थ्य और सोमा, सबहि नचावत राम गुसाई आपके अन्य रोचक उपन्यास हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क इस क्षेत्र में अधिक प्रगतिशील है। 'गिरती दीवारें' में अश्क जी ने मध्यवर्गीय काम और अर्थ को समस्याएं प्रस्तुत को हैं। 'गर्म राख' में अश्क जी प्रकृतिवादिता को लेकर चले हैं। 'शहर में घूमता आईना' (१९३६) में अश्क जी ने अपने 'गिरती दीवारें 'के नायक चेतन को जालंधर शहर में घुमाया है और इस प्रकार जालंधर के जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। अमृतलाल नागर इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ है। वे पूंजीवादी सभ्यता के दोषों और समाजवादी व्यवस्था के गुणों से परिचित होते हुए भी किसी एक विचारधारा में बंधे नहीं है। 'अमृत और विष' उनका प्रसिद्ध सामाजिक नाटक है।

आधुनिक उपन्यासकारों का एक वर्ग विदेशी साम्यवादी धारा को लेकर चला। इस दिशा में सर्वप्रथम सफल प्रयत्न करने वालों में यशपाल प्रमुख हैं। इस धारा के अन्य लेखकों में डॉ. रागेय राय, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकार है। इन सभी कलाकारों ने सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं वर्ग - संघर्ष के भाव मनोविश्लेषणवाद को धारा से समन्वित करके प्रस्तुत किये हैं। इस धारा के अन्य लेखकों में डॉ. गंगेय राधव, नागार्जुन, भगवतीप्रसाद वाजपेयो . गरवप्रसाद मिश्र इत्यादि मुख्य हैं। इन सभी कलाकारों में सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं वर्ग - संपर्य के भाव मनोविश्लेषणवाद की धारा से समन्वित होकर व्यक्त हुए हैं। इन्होंने समाज के नवोन स्टार - भेदों का सविस्तार वर्णन किया है और उसके बीच सामाजिक जीवन के छोटे से छोटे सम्बन्धी तिक परिस्थितियों के अनुरूप निराकरण प्रस्तुत किया है। डा गेय राघव ने अपने घरी नायक उपन्यास के अन्तर्जातीय प्रणय को वास्तविक परिणय के रूप में सामाजिक मान्यता दिला ही है। इस सामाजिक उपन्यासों में मानवता की पुकार का स्वर नवीन परिस्थितियों के अनुरुल बन्याने की चेष्य की गई है। इसमें आर्त व्यक्ति के करुण - कन्दन को सुना गया है और उसे आश्वासन देने देने के उपयोग का चित्रण किया है साथ ही

प्रेम पाप पुण्य विवाह इत्यादि सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रतीक नवीन दृष्टिकोण से अपनाने की चेष्टा की है।

प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों का विषयगत विभाजन :

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृतियां दिखाई देती हैं। कला की दृष्टि से यह युग निश्चित ही प्रेमचंद युग से श्रेष्ठ है लेकिन भावों की दृष्टि से प्रेमचंद-साहित्य से उच्च नहीं है। इस काल के उपन्यासों को उनकी विषय वस्तु के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:

सामाजिक उपन्यास : सामाजिक उपन्यास प्रेमचंद युग में भी बड़ी संख्या में लिखे गए थे। प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिक उपन्यासों की परंपरा और सुदृढ़ हुई। इस युग के सामाजिक उपन्यासकार थे-भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, यशपाल, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती आदि।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते व 'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'अमृत और विष' व 'नाच्यो बहुत गोपाल' अमृतलाल नागर के उपन्यास हैं। 'झूठा सच यशपाल का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। 'अंधेरे बंद कमरे' व 'अंतराल' मोहन राकेश के उपन्यास है।

'सारा आकाश' उपन्यास की रचना राजेंद्र यादव ने की। कमलेश्वर का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास 'काली आंधी' है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज', 'आपका बंटी' आदि उपन्यासों की रचना की। कृष्णा सोबती का प्रमुख उपन्यास 'जिंदगीनामा' है।

साम्यवादी उपन्यास : यशपाल के उपन्यास साम्यवादी विचारधारा के उपन्यास हैं। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' साम्यवादी विचारधारा के पोषक उपन्यास हैं। राजेंद्र यादव का उपन्यास 'सारा आकाश' भी साम्यवादी उपन्यास की श्रेणी में आता है। नागार्जुन, डॉ. रांगेय राघव व अमृतराय भी साम्यवादी उपन्यासकार हैं। इन उपन्यासों में समाज के खोखलेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये उपन्यास कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रेरित होकर लिखे गए।

ऐतिहासिक उपन्यास: प्रेमचंदोत्तर युग में ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए लेकिन इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, निराला व हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है। वृंदावन लाल वर्मा के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं- गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी व रानी लक्ष्मीबाई। हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। यशपाल साम्यवादी उपन्यासकार हैं परन्तु 'दिव्या' व 'अमिता' उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास : जैनेन्द्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं– सुनीता, कल्याणी,परख, सुखदा, विवर्त आदि। जैनेन्द्र के बाद अज्ञेय ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। अज्ञेय ने 'शेखर:एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास

munotes.in

लिखे। इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषण पर बल दिया। उन्होंने 'सन्यासी', 'निर्वासित' और 'जहाज का पंछी'जैसे उपन्यासों की रचना की।

आंचलिक उपन्यास : आंचलिक उपन्यास में किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति का चित्रण किया जाता है। इस दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आंचल' विशेष उल्लेखनीय है। मैला आंचल को हिंदी-उपन्यास साहित्य का सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है। शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' भी प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। 'बाबा बटेसरनाथ' नागार्जुन का प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है। डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', शैलेश मटियानी का 'होल्दार' तथा राही मासूम रजा का 'आधा गांव' भी आंचलिक उपन्यास हैं। रामदरश मिश्र का प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर' है।

प्रयोगशील उपन्यास : उपन्यास के क्षेत्र में कुछ अनूठे प्रयोग भी किए गए हैं ; जैसे डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यास 'सूरज का सातवा घोडा' में अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग कहानियों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है।

गिरधर गोपाल ने 'चांदनी के खंडहर' में केवल २४ घंटों की कथा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। 'ग्यारह सपनों का देश' एक ऐसा उपन्यास है जो अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया। ठीक ऐसे ही 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास राजेंद्र यादव व मन्नू भंडारी के द्वारा मिलकर लिखा गया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के उपन्यास 'सोया हुआ जल' में एक सराय में ठहरे हुए यात्रियों की एक रात की जिंदगी का वर्णन है। आधुनिक युग बोध के उपन्यास: आज का उपन्यास आधुनिक युगबोध का उपन्यास है। यह उपन्यास औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकता, बौद्धिकता व पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित है। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता, भीष्म साहनी आदि उपन्यासकारों के उपन्यास में यह युगबोध सरलता से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मरी हुई मछली' समलैंगिक यौन सुख में लिप्त महिलाओं की कहानी है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' उपन्यास आधुनिक जीवन पर सुंदर व्यंग्य है।

७.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग :

स्वतंत्रता के पश्चात साहित्य जगत में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात ऐसी अनेक घटनायें हुई, जिसने देश के विकास में बाधा पहुंचाई। इतना ही नहीं देश के विभाजन एवं दंगों ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। इनका प्रभाव साहित्य जगत पर भी पड़ा। हिंदू-मुस्लिम दंगे, शरणार्थी समस्या जैसी स्थितियों का उपन्यास साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक जैसे अनेक स्तरों पर रचनायें सामने आई।

भारतीय स्वतंत्रता के इतिवृत्त को मन्मथनाथ गुप्त ने अपने कथानक में स्थान दिया। 'बहता पानी' (१९५५) और 'रंगमंच' (१९६५) इनके प्रमुख उपन्यास हैं। अनन्त गोपाल शेवडे ने सन १९४२ को आधार बनाकर उपन्यास 'ज्वालामुखी' (१९६५) की रचना की। सम्राट अशोक के कलिंग विजय पर आधारित यशपाला का 'अमिता' (१९५६), देश विभाजन की पीड़ा को व्यक्त करता 'झूठा सच'

(१९५८), सांप्रदायिक विडंबनाओं को प्रस्तुत करता राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (१९६६) कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। सामाजिक दृष्टि से लिखे गये उपन्यासों में नागार्जुन का 'बलचनामा' (१९५९), भैरव प्रसद गुप्त का 'गंगा मैया' (१९५३), मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१), उषा प्रियंवदा का रूकोगी नहीं राधिका' (१९६७), उदयशंकर भट्ट का नये मोड़' (१९५४), तथा सागर लहरे और मनुष्य' (१९५५), रामदरश मिश्र का पानी का प्राचीर' (१९६१) और जल टूटता हुआ' (१९६९) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में जीवन संघर्षों के साथ-साथ मानवता की प्रतिष्ठा हुई है। वहीं नागार्जुन के उपन्यास बाबा बटेसर नाथ' (१९५४), तथा रामदरश मिश्र के उपन्यास जल टूटता हुआ' (१९६९), में हमें भारत के ग्रामीण जीवन एवं वहां की समस्याओं का दिग्गदर्शन होता है।

साठोत्तरी उपन्यासों में हमें उपनरीय नारकीय जीवन एवं मानव के यथार्थ की जीवंत प्रस्तुति देखने को मिलती है। वहीं सातवें दशक के उपन्यासों में स्तरहीन राजनीति का प्रस्तुतिकरण है। साथ ही छूआछूतख् जांत-पात, कट्टर धार्मिकता एवं मजदूरों के शोषण आदि ने कथानक के रूप में जगह बनायी है। सन् १९९० के आस - पास भारतीय समाज में नवीन हलचलें प्रारम्भ हुई। सन् १९९२ में मन्दिर - मस्जिद का विवाद उठा और बाबरी मस्जिद तोड़ी गई। समाज में एक तरफ साम्प्रदायिक शक्तियाँ सक्रिय थीं, तो दूसरी तरफ लोग जातियों में भी लामबंद होने लगे थे। मण्डल - कमण्डल और मन्दिर - मस्जिद विवाद ने ऐसी सामाजिक हलचल को जन्म दिया जहाँ से उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की नई खुराक मिली। दूधनाथ सिंह (आखिरी कलाम), संजीव (त्रिशूल), अब्दुल बिस्मिल्लाह (मुखड़ा क्या देखे), असग़र वजाहत (सात आसमान, कैसी आगि लगाई), मैत्रेयी पुष्पा (अल्मा कबूतरी), चित्रा मुद्गल (आंवा), मृदुला गर्ग (इदन्नम), गीतांजलि श्री (माई), नासिरा शर्मा (जिन्दा मुहावरे), गोविन्द मिश्र आदि इस काल खण्ड के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

समकालीन समय में काशीनाथ सिंह, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विनोदकुमार शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, संजीव, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जया जादवानी, मधु कांकरिया आदि उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य आदिवासी विमर्श को भी अपने केन्द्र में रखता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों का जंगल - जमीन से जुड़ाव, उन्हें जंगल - जमीन से दूर करने के सरकारी पैतरों और उनकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाए गए हैं। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में कथ्य एवं शिल्प दोनों ही धरातल पर सफल प्रयोग किए गए। कथानक कल्पनालोक से निकल कर यथार्थ के धरातल पर खड़े नजर आते हैं। ये उपन्यास पाठका को सिर्फ बांधकर ही नहीं रखते बल्कि उसे झकझोड़ते भी हैं। उसे कल्पना लोक की यात्रा कराने के बजाय यथार्थ का सामना कराने में ज्यादा यकीन रखते हैं।

७.५ सारांश

हिन्दी उपन्यास का प्रारंभिक हेतु मनोरंजन या समय के साथ रोचकता और सामाजिक समस्या के उल्लेख से उपन्यास में समाज सुधार की भावना पनपने लगी और जैसे-जैसे यह विधा विकसित हुई वैसे-वैसे कलात्मकता बढ़ती गई और भाषा शैली, संवाद, विषय कथा की दृष्टि से उपन्यास को ध्यान में रखकर इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी उपन्यास विधा से अवगत होंगे ।

७.६ बोध प्रश्न

१. हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास का उल्लेख कीजिए।

२. प्रेमचंद युग के प्रमुख उपन्यासकार और उनके उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

३. हिन्दी उपन्यास के विकास के सभी चरणों का विवरणात्मक उल्लेख कीजिए।

४. प्रेमचंदोत्तर काल के उपन्यास की विशेषताएँ समझाते हुए प्रमुख उपन्यासकारों का वर्णन कीजिए।

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. हिन्दी का प्रथम उपन्यास कौनसा है व उसके लेखक कौन है?
उत्तर - 'परिक्षा गुरू' - लेखक - लाला श्रीनिवास दास

२. हिन्दी उन्यास के विकास चरण का विभाजन कितने भागों में किया है?
उत्तर - चार भागों में

३. प्रेमचंद युग का समय कब से कब तक माना जाता है?
उत्तर - सन १९१६ से सन १९३६ तक

४. तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यास किस काल में लिखे गए?
उत्तर - प्रेमचंद पूर्व युग

५. 'जिन्दे की लाश' उपन्यास के लेखक है?
उत्तर - किशोरी लाल गोस्वामी

७.८ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य - वाद, प्रवृत्तियाँ एवं विमर्श

❖❖❖❖

हिन्दी कहनी का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य
८.१ प्रस्तावना
८.२ कहानी शब्द की व्याख्या
८.३ हिन्दी की प्रथम कहानी
८.४ हिन्दी कहानी की विकास यात्रा
 ८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग
 ८.४.२ प्रेमचंद युग
 ८.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग
 ८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग
८.५ सारांश
८.६ बोध प्रश्न
८.७ लघुत्तरीय प्रश्न
८.८ संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कहानी का आरम्भ और विकास क्रम को समझ सकेंगे साथ ही कहानी के प्रकार प्रमुख कहानी कार उनकी कहानियों का अध्ययन कर सकेंगे। युग विभााजन की दृष्टि से कहानी विधाा से अवगत होंगे।

८.१ प्रस्तावना

कहानी एक ऐसी विधा है, जिसे समय के दायरे में बांधा नहीं जा सकता। कहानी का अस्तित्व मानव के सभ्य होने की परंपरा से रहा है; यदि ऐसा कहा जाये तो गलत नहीं होगा। क्योंकि मानव समाज में आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रवृत्ति चली आ रही है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, पालि जातक, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। प्राचीनकाल में सदियों तक वीरों तथा राजाओं के शौर्य,

munotes.in

प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्र, दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की प्रचलित कथाएँ, जिनकी कहानियाँ घटनाओं पर आधारित हुआ करती थीं, ये भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्" जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं। जहाँ तक हिन्दी में कहानी लेखन के विकास की बात है…हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। ये गद्य लेखन की ही एक विधा है जिसका विकास उन्नीसवीं सदी में बड़ी तेज़ी से हुआ। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। हिन्दी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले 'प्रेमचंद' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की हैः 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।" हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं– "कहानी एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

८.२ कहानी शब्द की व्याख्या

'कहानी' आज बहुश्रुत विधा है। इसे अलग-अलग जगहों एवं अलग-अलग भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है। हालांकि इसका प्रभाव सभी जगहों पर समान रूप से देखने को मिलता है। 'कहानी' का प्राचीन नाम संस्कृत में 'गल्प' या 'आख्यायिका' मिलता है। 'कहानी' शब्द संस्कृत कथानिका प्राकृत कहाणिआ, सिंहली-मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक या लिखित कल्पित या वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना

होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है। पाश्चात्य साहित्य में कहानी-कला का उद्भव सर्वप्रथम अमेरिका में एडलर एलन पो (१८०९-४९ ई.) द्वारा हुआ । उन्होंने कहानी की परिभाषा देते हुए कहा है कि "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो।" मुंशी प्रेमचन्द कहानी पर विचार करते हुए कहते हैं कि "कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोविज्ञान को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते है।" वहीं कहानी का शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं। दोनों के अर्थों में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं। यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया। प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

८.३ हिन्दी की प्रथम कहानी:

हिन्दी उपन्यास साहित्य की तरह हिन्दी कहानी साहित्य में भी प्रथम रचना को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अलग-अलग विद्वान अपने अध्ययन एवं तर्कों के आधार पर अलग-अलग कहानियों को हिन्दी की प्रथम कहानी का दर्जा देते हैं। कुछ विद्वान सन् १८०३ ई. में लिखी गई, हिन्दी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली इंशा अल्ला खां द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी (१८०३ ई.) को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत है कि यह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् १८८७ ई.) को हिन्दी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् १९०० ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात निष्कों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निष्क या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण

प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भाव प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है। अमेरीकी पादरी रेवरेंड जे. न्यूटन द्वारा रचित 'एक जमींदार का दृष्टान्त' (१८७१ ई.), तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् १८७१ ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी प्रथम कहानी नहीं क्यों धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'राजा भोज का सपना' (राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद), एक अद्भूत अपूर्व स्वप्न (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)', 'ग्यारह वर्ष का समय (१९०३ ई.)' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल), 'इंदुमती (१९०० ई.)' (किशोरी लाल गोस्वामी) आदि कहानियों पर भी हिन्दी की प्रथम कहानी को लेकर चर्चा हुई। अधिकांश विद्वान जहाँ किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं वहीं आधुनिक शोध के अनुसार माधव प्रसाद मिश्र के द्वारा रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी (१९०१ ई.)' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना जाता है।

डॉ. सुरेख सिन्हा गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी दृष्टिकोण से।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। किशोरी लाल गोस्वामी कृत इंदुमती (१९०० ई.), किशोरी लाल गोस्वामी कृत गुलबहार (१९०२ ई.), मास्टर भगवान दास कृत प्लेग की चुडैल (१९०२ ई.), राम चन्द्र शुक्ल कृत ग्यारह वर्ष का समय (१९०३ ई.), पंडित और पंडितानी - गिरजादत्त बाजपेयी (१९०३ ई.), दुलाई वाली - बंग महिला (१९०७ ई.) 'सरस्वती' में प्रकाशित प्रमुख कहानियां हैं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरी लाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्राय: प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया।

रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।" सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् १९०३) हिन्दी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् १९०१) को हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। 'दुलाईवाली' (सन् १९०७ ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु वंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है। प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (१९११ ई.) को हिन्दी की पहली कहानी

का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है। शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिन्दी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचंद से माना जाना चाहिए। राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' (१९१६) को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिन्दी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए अब तक 'दुलाई वाली' को ही प्रथम कहानी माना जाता है। 'दुलाईवाली' या 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय मिलना श्रेयस्कर है।

८.४ हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

हिन्दी कहानी के विकास की यात्र 'सरस्वती'तथा 'इंदु' पत्रिकाओं के प्रकाशन से आरंभ हुई। हिन्दी की आरंभिक कहानियां इन्ही पत्रिकाओं में छपी। सन १९०७ में बंग महिला (राजेंद्र बाला घोष) की कहानी 'दुलाईवाली' (१९०७ ई.) प्रकाशित हुई। सन १९१०-११ में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' (१९११ई.) प्रकाशित हुई। प्रेमचंद-युग में चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम भी प्रमुख है। उनके द्वारा लिखित कहानी 'उसने कहा था' (१९१५ ई.) अत्यंत लोकप्रिय हुई। यह कहानी उदात्त प्रेम की कहानी है। कला की दृष्टि से यह कहानी उत्कृष्ट मानी जाती है। प्रेमचंद-पूर्व युग में प्रेमचंद, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, पांडेय बेचैन शर्मा उग्र, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि कहानीकार आते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' तथा विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की कहानी 'रक्षाबंधन' (१९१३ ई.) प्रेमचंद-पूर्व युग की कहानियां कही जा सकती है। इस युग में चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान व ऐतिहासिक कहानियां लिखी गई। कहानी का वास्तविक स्वरूप प्रेमचंद युग में निखर कर सामने आया। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य की दिशा कुछ हद तक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की ओर मुड़ गई और 'प्रसाद' के आगमन से 'रोमांटिक यथार्थवाद' की ओर। सन १९२२ में 'उग्र' का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो 'प्रसाद' की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल 'यथार्थवादी' थे– प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। १९२७ से १९२८ आ आसपास जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नए युग आरम्भ हुआ। १९३६ तक 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। 'यशपाल' राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अतः वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। 'अज्ञेय' प्रयोगवादी कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसका श्रेय अज्ञेय को ही जाता है। 'अश्क' प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन १९५० के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। जिसमें आधुनिक विचारधारा की छाप नज़र आती है। आज़ के परिदृश्य की बात की जाए तो अब कहानियों में आधुनिकता का समावेश हो गया है जिसमें विज्ञान कथा, सामाजिक संदेश, धर्म, राजनीति, भविष्य, रोमांच, रहस्य, शौर्य, बलिदान, त्याग आदि चीज़े शामिल हो गई हैं।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है :

८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग

८.४.२ प्रेमचंद युग

८.४.३ प्रेमचंदोत्तर युग

८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग

८.४.१ प्रेमचंद पूर्व युग :

१९वीं शताब्दी के आरंभ से ही हिन्दी साहित्य जगत कहानी लेखन का प्रादुर्भाव पूर्ण रूप से देखने का मिलता है। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने प्रथम कहानी अथवा सन १८७० -१९१५ ई. तक स्वीकारा है। हालांकि कहानी का वास्तविक रूप सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के बाद ही सामने आता है, लेकिन इससे पूर्व भी कुछ कहानियों का उल्लेख मिलता है। इन रचनाओं में इंशाअल्ला खाँ द्वारा सन १८०३ में लिखी 'रानी केतकी की कहानी' प्रमुख है। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों और 'रानी केतकी की कहानी' में मात्र इतना अंतर है कि सूफी काव्य पद्य में लिखा गया है और इसकी रचना गद्य में हुई है। सूफी मसनवियों की शैली में इसमें भी आरंभ में ईश्वर वंदना की गई है और रचना का कारण बताया गया है। इसी प्रकार इसके प्रत्येक परिच्छेद का लंबा शीर्षक दिया गया है। सूफी प्रेम कहानियों के समान 'रानी केतकी की कहानी' अस्वाभाविक, अलौकिक, ईरानी कथारुढ़ियों और अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तातों से भरपूर एक प्रेमकथा है। इसमें नायिका के नखशिख, सौंदर्य और वैवाहिक तैयारियों का अतिशयोक्तिपूर्ण और वस्तु परिगणनात्मक वर्णन मिलता है। भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, देवी-देवता जैसे अलौकिक वर्णनों से यह कथा भरी पड़ी है। इसलिए मौलिक गद्य कथा होने के बावजूद 'रानी केतकी की कहानी' को आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। 'रानी केतकी की कहानी' मध्यकाल में प्रचलित प्रेमाख्यानकों का आधुनिक गद्य रूप है। इसके अतिरिक्त इस शताब्दी के प्रथम सात दशकों में संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी में उपलब्ध कथाओं के हिंदी रूपांतरण प्रस्तुत किए गए। पं. गौरीदत्त ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) लिखी जो अपनी प्रकृति में उपन्यास और कहानी दोनों का मूल रूप है। आधुनिक कहानी यथार्थ के आधार पर खड़ी होती है और 'देवरानी जेठानी की कहानी' यथार्थ की जमीन से दृढ़तापूर्वक जुड़ी हुई है। पर 'देवरानी जेठानी की कहानी' से - यद्यपि इसके शीर्षक में कहानी शब्द जुड़ा हुआ है - हम हिंदी कहानी का आरंभ नहीं मान सकते। विधा के रूप में कहानी का जन्म उसके बीस वर्ष बाद १९०१ ई. में प्रकाशित माघवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में 'बैताल पचीसी', 'प्रेमसागर', 'राजनीति' और 'चंद्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद किया गया। इसके अलावा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में 'माधोनल', 'माधव विलास', 'नीति-कथा', 'गोरा बादल की बात', 'सुखसागर', 'उपदेश कथा' नामक कथा पुस्तकें अनूदित की गई। 'गोरा बादल की बात' को छोड़कर सभी पुस्तकों की रचना पाठ्यपुस्तकों के रूप में की गई थी। इस समय 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा चहादरवेश', 'सूरजपुर की कहानी', 'कथासागर', 'वीरसिंह का वृत्तांत', 'वामामनरंजन', 'लड़कों

की कहानी', 'रॉबिन्सन क्रूसो का इतिहास', 'यात्रा स्वप्नोदय', 'गुलबकावली' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। ये सभी रचनाएँ अनूदित हैं। १८८६ ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 'राजा भोज का सपना' लिखा। इन कहानियों में कहीं भी यथार्थ का आग्रह नहीं है। इनमें 'आधुनिक कहानी' का कोई गुण नहीं है। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में प्राचीन और मध्यकालीन कथाओं की परंपरा चलती रही। मौलिक लेखन का अभाव रहा और ज्यादातर अनूदित रचनाएँ ही सामने आयीं।

बाद में माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' का पता चला जो १९०४ ई. में लिखी गई थी। यह कहानी आधुनिक ढंग की कहानी है। कुछ विद्वान 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। परंतु यह मौलिक कहानी नहीं है। इसकी कथावस्तु शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' पर आधारित है। अंतर केवल यह है कि इसमें वातावरण भारतीय है। यह कहानी भी परंपरागत किस्से की शैली से मुक्त नहीं हो सकी है। इससे भी पहले १८८७ ई. में 'प्रणयिणी परिणय' नाम से किशोरीलाल गोस्वामी की एक कहानी प्रकाशित हो चुकी थी। परंतु इसे किसी भी कोण से आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। इसका कथ्य, शिल्प, भाषा सब कुछ पारंपरिक गद्य कथाओं का अनुकरण है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही वृंदावनलाल वर्मा की कहानी 'राखीबंद भाई' (१९०९ ई.) प्रकाशित हुई। उनकी दूसरी कहानी 'ततार और वीर राजपूत' (१९१०) थी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आधुनिक ढंग की कहानियों की धूम मच गई। पत्र-पत्रिकाओं में आधुनिक ढंग की कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। 'इंदु' पत्रिका में जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' १९११ ई. में प्रकाशित हुई। १९११ ई. में ही 'भारत मित्र' में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' छपी। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह प्रेमचंद युग के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। हालांकि इनकी पहली कहानी 'कानों में कंगना' १९१३ ई. में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी सामंती पारिवारिक संरचना की विडंबनापूर्ण स्थिति को सामने लाती है। इस कहानी में पत्नी तथा वेश्या के प्रति प्रेम और इससे उत्पन्न टकराहट भरी स्थिति को चित्रित किया गया है। 'सुरबाला' 'मरीचिका', 'बिजली' आदि इनकी अन्य कहानियाँ हैं। कहानियाँ तो इस दशक में खूब लिखी गई पर चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' ने सबको पीछे छोड़ दिया। यह कहानी १९१५ ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। गौरतलब है कि प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' भी इसी वर्ष 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हुई थी। परंतु अपने कथ्य, शिल्प, भाषा और पूरी बनावट में 'उसने कहा था' समय से काफी आगे की कहानी है। 'उसने कहा था' युद्ध विरोधी कहानी है। इसका कलेवर प्रेमकथा का है, जिसमें एक प्रेमी अपनी बचपन की प्रेमिका के पति और बेटे के लिए अपने आपको न्यौछावर कर देता है। परंतु यह कहानी का ऊपरी आवरण है। मूलचेतना युद्ध विरोधी है। कथ्य ही नहीं शिल्प की दृष्टि से भी यह कहानी बेजोड़, अनुपम और अपूर्व है। पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक) का इस्तेमाल पहली बार इसी कहानी में किया गया। पूरी कहानी संकेतों और प्रतीकों के सहारे ही आगे बढ़ती है। कथा में कालक्रम की रूढ़ि को तोड़ने का पहला प्रयास इसी कहानी में किया गया है। वस्तुत: सन १९०० ई. से १९१५ ई. तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) १९०७ ई. गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) १९०२ ई., पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) १९०३ ई., ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल)

१९०३ ई., दुलाईवाली (बगमहिला) १९०७ ई., विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) १९०९ ई., राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) १९०९ ई., ग्राम (जयशंकर 'प्रसाद') १९११ ई., सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) १९११ ई., रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) १९१२ ई., परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) १९१२ ई., कानों में कंगना (राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह)१९१३ ई., रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') १९१३ ई., उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) १९१५ ई., आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिह्न मिल जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी का कहानी का जन्म एवं शुरुआत दोनों प्रेमचंद से पहले का है। हां यह जरूर है कि प्रेमचंदजी ने हिन्दी कहानी को एक नई ऊंचाई प्रदान की। साथ ही उनके समकालीन कहानीकारों ने भी अपने महत्वपूर्ण योगदानों उनके काम को और आसान कर दिया।

८.४.२ प्रेमचंद युग:

हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेमचंद युग को स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने सन १९१६-१९३५ ई. तक माना है। प्रेमचंद युग से अभिप्राय उस युग से है जिसमें प्रेमचंद ने प्रौढ़ कहानियों की रचना की। इस युग में हिन्दी कहानी के स्वरूप का विकास हुआ। इस युग में हिन्दी कहानी में कलात्मकता का विकास हुआ। इस युग में हिन्दी के संस्कृत, परिष्कृत व कलात्मक रूप का प्रयोग कहानी में हुआ। कहानी के सभी आवश्यक तत्व यथा कथानक, संवाद व कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल व वातावरण, भाषा, उदेश्य आदि सभी में निखार आया। किसी युग में कहानी में भावनाओं व मानसिक द्वंद्व का समावेश हुआ। इस युग के सबसे बड़े कहानीकार प्रेमचंद जी हैं। उन्होंने ३०० से अधिक कहानियां लिखीं, जो मानसरोवर के आठ भागों में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ', तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सोजे वतन' सन् १९०७ ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्रय भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सन् १९१९ ई. में उनकी हिंदी रचित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंघा', 'वज्रपात', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचंद की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं - उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है। प्रेमचंद ने अपनी कहानी-यात्र आदर्शवाद से आरंभ की परंतु धीरे-धीरे वे यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों की विभिन्न समस्याओं व बुराइयों का वर्णन किया। उन्होंने हिन्दी कहानी को नया आयाम प्रदान किया इसीलिए उन्हें 'कहानी-सम्राट' भी कहा जाता है। प्रेमचंद-युग के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद जी हैं। आकाशदीप, पुरस्कार, गुंडा

munotes.in

आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियां हैं। उन्होंने मुख्यतः ऐतिहासिक कहानियां लिखी। इनके अलावा विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियां 'ताई', 'रक्षाबंधन', 'पगली', 'काकी' हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। सुदर्शन की कहानियां आदर्शवादी हैं। उनकी कहानी 'हार की जीत' हिन्दी साहित्य जगत में बहुत अधिक लोकप्रिय हुई। प्रेमचंद युग के दो अन्य प्रसिद्ध साहित्यकार हैं- पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' व यशपाल। उग्र की कहानियाँ कटु यथार्थवादी हैं। उन्होंने समाज के विभत्स चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किये। उनकी प्रतिनिधि कहानियों में प्रमुख हैं- 'उसकी माँ'व 'सनकी अमीर'। वहीं यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे समाज व परम्पराओं की आलोचना की जो गरीबों का शोषण करते हैं। तर्क का तूफ़ान, फूलों का कुर्ता, अभिशाप आदि उनकी प्रमुख कहानियां हैं। उपेंद्रनाथ अश्क़, भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि भी प्रेमचंद-युग के कहानीकार हैं।

प्रेमचंद युग में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है-

१. प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

२. द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है 'हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि-सत्य की संवेदना है, समष्टि - विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेम चन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचंद के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा, प्रेमचंद की कथा दृष्टि का समर्थन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। प्रेमचंद और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्र के अंतिम चरण में प्रेमचंद ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वाला दत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे।

प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकारों एवं उनकी रचनाओं को केन्द्र में रखकर काफी कुछ लिखा जा सकता है, लेकिन यहां हम कुछ चुनिंदा कहानीकारों एवं उनकी रचनाओं का ही उल्लेख कर रहे हैं-

१. प्रेमचंद एवं उनकी कहानियां:- प्रेमचंद द्वारा रचित 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है। वहीं सन् १९२०-३० ई. के मध्य लिखी गई कहानियां गांधी वादी विवाद धारा सतह पर है। जबकि 'मैकू', 'शेख नाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचन कुमार सिंह के अनुसार, 'चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा',

'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेम चन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते-आते प्रेम चन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी दृष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचंद द्वारा संकेतित दिशा में ही हुआ है। प्रेमचंद की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्रण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों में प्रेम चंद ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवत: पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्र के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष आदि की दृष्टि से प्रेमचंद स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचंद की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

२. **जयशंकर प्रसाद -** जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् १९११ ई. में 'इंदु' में प्रकाशित हुई और जीवनपर्यंत उन्होंने कुछ ६९ कहानियां लिखीं। 'प्रसाद जी' पहले कहानीकार हैं जिन्होंने हिंदी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों सें मुक्त कर, उसके स्वरूप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की।" इसी आधार पर कुछ आलोचक प्रसाद को प्रथम कहानीकार तथा उनकी कहानी 'ग्राम' को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रसाद की कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अंतर्द्वन्द्व उद्घाटन, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी के मार्मिक अंत में निहित है, यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी कहानी में प्रमुख हो उठता है और उसकी संरचना में गड़बड़ी पैदा करता है। प्रसाद की कहानियों में वस्तुगत वैविध्य बिलकुल न हो, ऐसा नहीं है। 'पुरस्कार', 'दासी' तथा 'गुंडा' आदि में इतिहास का प्रयोग किया गया है जबकि 'मछुआ बड़ा' और 'छोटा जादूगर' में सामाजिक विषमता को उभारा गया है। अधिकतर कहानियों में कथा सूत्र की क्षीणता दृष्टिगोचर होती है। लेकिन 'दासी' एवं 'सालवती' आदि कहानियों में अनावश्यक अंश भी कम नहीं है। भावुकता की स्फीति कहानी को प्रतिघातित करती है। इन दोषों के होते हुए भी प्रसाद की कथन भंगिमा और चारित्रिक सृष्टि कहानियों को अविस्मरणीय बना देती है। प्रसाद का शिल्प प्राय: 'ग्राम' कहानी से लेकर 'सालवटी' तक एक समान रहा है और इसका अनुकरण नहीं हो पाया है।

प्रसाद की शैली में लिखी गई हृदयेश और विनोद शंकर व्यास की अनेक कहानियां असफल रही हैं। उनके शिल्प के संबंध में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, "हिन्दी कहानी साहित्य में प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है। शिल्प की अनुवर्तिनी नहीं।"

३. **विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' -** विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' (सन् १८९१ - १९४६ ई.) उर्दू से हिंदी में आने वाले प्रेमचंद युगीन कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् १९१३

ई. में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दृष्टि से कौशिक प्रेमचंद की परंपरा में आते हैं। उन्होंने समाज सुधार को कहानी का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं रोचक है।

उनकी हास्य एवं विनोद से भरी हुई कहानियां 'चांद' में 'दुबे जी की चिट्ठियां' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग ३०० कहानियां लिखीं। जो 'कल्पमंदिर', 'चित्रशाला' आदि में संग्रहीत हैं।

४. **आचार्य चतुर सेन शास्त्री -** आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के संग्रह 'रजकण' और 'अक्षत' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रमुख कहानियां में 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' तथा 'ककड़ी की कीमत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

५. **चन्द्रधर शर्मा गुलेरी -** प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में मात्र तीन कहानी लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। हिंदी कहानी साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। उनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ में प्रकाशित हुई थी जो अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग, और बलिदान से ओत-प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकप्रद होते हुए भी इसमें हास्य एवं व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती है। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएं एक से बढ़कर एक हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक वह पूरी कहानी को पढ़ नहीं लेता है उसे छोड़ती नहीं है तथा जिसने एक बार कहानी पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता है। भाव, विचार, शिल्प तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से यह कहानी एक अमर कहानी है। गुलेरी की दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी पर्याप्त रोचक एवं भावोत्तेजक है। इसमें एक अविवाहित युवक के द्वारा विवाहित जीवन पर लिखी गई पुस्तक को लेकर अच्छा विवाद खड़ा किया गया है। जिसकी परिणति एक अत्यंत रोचक प्रसंग में हो जाती है। 'बुद्धू का कांटा' भी अच्छी कहानी है।

६. **पं. बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन' -** सुदर्शन का जन्म सन् १८९६ ई. में हुआ था। कहानी कला में इनका महत्व कौशिक के समान स्वीकारा गया है। इनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्र', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'चार कहानियां', तथा 'पनघट' आदि। उन्होंने अपनी कहानियों में भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का चित्रण अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है।

७. **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' -** उग्र का हिंदी कहानी जगत में प्रवेश सन् १९२२ ई. में हुआ। उग्र की उग्रता को परिलक्षित आलोचकों ने उन्हें 'उल्कापात', 'धूमकेतु', 'तूफान' तथा 'बवंडर' आदि नामों से विभूषित किया। इसी से आपकी विद्रोही प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है जिसको ऐसी ऐसी उपमाएं या उपाधियां मिली हों उसकी कहानी कला कैसी होगी? सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कहानियों 'वीभत्स' एवं 'कुरूपता' को भी स्थान मिल गया है किन्तु उग्र का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का प्रचार करना नहीं था अपितु कुरूपता का समूल अंत करना था।

उनके कहानी संग्रह 'दोजख की आग', 'चिंगारियां', 'बलात्कार' तथा 'सनकी अमीर' आदि प्रकाशित है।

८. **ज्वालादत्त शर्मा -** ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत कम कहानियां लिखी हैं किन्तु हिन्दी जगत ने उनका अच्छा स्वागत किया है। उनकी कहानियों में 'भाग्य चक्र' तथा 'अनाथ बालिका' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों के अतिरिक्त द्वितीय चरण के अन्य कहानीकार रामकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

८.४.३ . प्रेमचंदोत्तर युग:

प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी लेखन में अनेक परिवर्तन हुए। इस युग में एक तरफ मनोवैज्ञानिक कहानियां लिखी गई तो दूसरी तरफ सामाजिक कहानियां लिखी गई। प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख कहानीकारों में यशपाल, अमृतराय, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर व चंद्रगुप्त विद्यालंकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रेमचंदोत्तर युग के अधिकांश कहानीकार मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। विशेषत: यशपाल ने मार्क्सवाद को अपनी कहानियों का आधार बनाया। इन्हें हम यथार्थवादी कहानीकार भी कह सकते हैं। तर्क का तूफ़ान, फूलों का कुर्ता, अभिशाप आदि इनकी प्रमुख कहानियां हैं। प्रेमचंदोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कहानियां भी लिखी गई। मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय का नाम प्रमुख है। जैनेंद्र कुमार की प्रमुख कहानियां है- नीलम देश की राजकन्या, एक दिन, पाजेब, वातायन आदि। परंपरा, विपथगा, शरणार्थी आदि अज्ञेय की प्रमुख कहानियां हैं। आंचलिक कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु तथा मारकंडेय का नाम उल्लेखनीय है। रेणु की प्रमुख कहानियां हैं- लाल पान की बेगम तथा तीसरी कसम। मारकंडेय ने हंसा जाई अकेला तथा गुलरा के बाबा जैसी आंचलिक कहानियां लिखी। इस युग का कालखंड कुछ विद्वानों ने सन १९३६-१९५५ ई. तक माना है। इस युग की कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

१. **मनोवैज्ञानिक धारणाओं वाली कहानियां -** जिनका प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी और पहाड़ी आदि कहानीकार करते हैं।

२. **समाज सापेक्ष कहानियां-** इस वर्ग की कहानियों का समाज सापेक्ष प्रश्नों से संबंध है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और अमृत राय हैं।

३. **व्यक्ति सत्य-समष्टि सत्य कहानियां-** इस वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो व्यक्ति सत्य तथा समष्टि सत्य दोनों को सुविधानुसार अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। अश्क और भगवती चरण वर्मा आदि इसी वर्ग में आते हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख रचनाकार एवं उनकी रचनाएं निन्मलिखित हैं-

१. **जैनेन्द्र कुमार -** जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं को कहानी का विषय न बनाकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विषयों को कहानी का विषय बनाया। उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अंतर्दृष्टि, संवेदनशीलता एवं दार्शनिक गहनता प्रदान की। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र-चित्रण तथा शैली को अधिक महत्व दिया है। इनकी कहानियों के संग्रह 'वातायन', 'स्पर्धा', 'पाजेंब', 'फांसी', 'एक रात', 'जयसंधि' तथा 'दो चिड़िया' आदि हैं।

२. **जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' -** जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने अपनी कहानियों में करुण रस की अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है। उनके कहानी संग्रह 'किसलय', 'मृदुल' तथा 'मधुमयी' आदि प्रकाशित हुए हैं।

३. **चंडीप्रसाद 'हृदयेश' -** चंडी प्रसाद हृदयेश का दृष्टिकोण आदर्शवादी था। उनकी कहानियों में सेवा, त्याग, बलिदान तथा आत्म शुद्धि आदि की उच्च भावनाओं का चित्रण किया गया है। उनमें भावुकता की प्रधानता है। उनकी कहानी के संग्रह 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं।

४. **गोविंद वल्लभ पंत -** गोविंद वल्लभ पंत की कहानियों में यथार्थ की कटुता तथा कल्पना की रंगीनी का दिव्य समन्वय मिलता है। उनमें प्रणय-भावनाओं का चित्रण अति मधुर रूप में किया गया है।

५. **सियाराम शरण गुप्त -** सियाराम शरण गुप्त ने कविता की तरह कहानी क्षेत्र में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'झूठ-सच' है जिसमें आधुनिक युगीन यथार्थ वादी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है। कहानी कला की दृष्टि से भी यह कहानी अद्वितीय है। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानुषी' है।

६. **वृंदावन लाल वर्मा -** वृंदावन लाल वर्मा ने कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी कहानियों में भी कल्पना एवं इतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी कहानियों का संग्रह 'कलाकार का दंड' है। वर्मा की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता होती है।

७. **सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' -** अज्ञेय की कहानियां अभिजात्य बौद्धिकता द्वारा लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। कथ्यगत विविधता के होते हुए भी इन कहानियों का अनुभव सांसारिक, व्यक्तिगत तथा अत्यधिक सीमित है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का स्मरण और सचेत रूप से केन्द्रित करने का आग्रह भी 'कड़ियां', 'पुलिस की सीटी', 'लेटर बॉक्स', 'हीलोबीन बतखें' आदि कुछ कहानियों में अत्यधिक मुखर हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र का

munotes.in

कथन है, 'अज्ञेय का गरिष्ठ व्यक्तित्व उनकी कहानियों को एक निजता प्रदान करता है। इस निजता की बनावट बड़ी जटिल है। इसीलिए इनकी कहानियों में लेखक की वैचारिकता, अनुभव, अध्ययन, तटस्थता, मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बड़ा ही जटिल सहअस्तित्व दिखाई पड़ता है। इस जटिल सहअस्तित्व का परिणाम शुभ-अशुभ दोनों है। एक ओर वे इसके चलते 'रोज' जैसी अच्छी कहानी लिखने में समर्थ एवं सफल सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर घोर बौद्धिकता से परिपूर्ण रचनाएं भी उन्होंने की हैं। 'रोज' में एक रस और यांत्रिक ढंग से जीवन जीने का संदर्भ अति सहजता किंतु तीखेपन के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु कहानी लिख रहे हैं।

८. **यशपाल -** यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के माध्यम से देखते हैं क्योंकि वे मार्क्सवादी कामरेड था। साम्यवाद को प्रधानता देते थे। सन् १९३६ ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया तथा प्रगतिशील रचनाएं सामने आने लगीं। यशपाल इन प्रतिबद्ध रचनाकारों में अग्रगण्य थे। यशपाल का अनुभव संसार अति व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति, असहायता और यातना को व्यक्त करने वाली 'परदा', 'फूलों का कुरता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियां है। दूसरी ओर श्रमशील विश्व के संघर्ष और शोषण तंत्र की विरोधी कहानियां हैं, जिनमें 'राग', 'कर्मफल', 'वर्दी' तथा 'आदमी का बच्चा' महत्वपूर्ण कहानियां हैं। पुरातन मूल्यों, अप्रासंगिक रूढ़ियों और नैतिक निषेधों को तिरस्कृत करने का उनका ढंग वैयक्तिक है। धारदार व्यंग्य उनकी अभिव्यंजना का सर्वाधिक सबल अस्त्रा है। यशपाल में जहां कथ्यगत समृद्धि है वहीं शिल्पगत प्रभाव भी है। कुछ प्रगतिवादी कहानीकारों की तरह उनकी कहानियों में शिल्प का अवमूल्यन नहीं दिखलाई पड़ता है।

९. **रांगेय राघव -** राघव की कहानियां मार्क्सवादी बोध से सम्पन्न होकर भी कहीं-कहीं उससे बाहर जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। अनुभव की वास्तविकता उनकी प्रथम विशेषता है। रांगेय राघव की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'गदल' है।

१०. **बेचन शर्मा उग्र -** बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में गिना जाता है। वे घोषित मार्क्सवादी न थे लेकिन सामाजिक विसंगतियों को उधेड़ने में वे प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। 'कला का पुरस्कार', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'उसकी मां' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं।

११. **उपेन्द्र नाथ 'अश्क' -** अश्क को न तो प्रगतिवादी कहानीकार कहा जा सकता है न व्यक्तिवादी। डॉ. रामदरश मिश्र ने अश्क के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लेकर कहानी लिखने वालों को प्रगतिशील कोटि में रखा है। वस्तुत: अपनी संवेदना के दृष्टिकोण से वे प्रगतिशील कथा चेतना से स्पष्ट अलगाव रखते हैं। उनके भाषा शिल्प पर प्रेमचन्द का गहन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। एक ओर अश्क ने 'डाची' और 'कांड़ा का तेली' जैसी अति चुस्त प्रभावशाली कहानियां लिखी

हैं वहीं दूसरी ओर 'एंबेसडर' तथा 'बेबसी' जैसी यौन समस्याओं वाली कहानियों में उनको सफलता नहीं मिली है।

उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए हृषिकेश ने लिखा है – "वह इतनी सपाट और आत्मीय हैं कि पढ़कर चिंता नहीं होती, न खेद होता है, न आश्चर्य न जिज्ञासा और न ही व्यामोह, केवल तरल अनुभूति देने वाली अश्क की कहानियां अन्वेषण तो करती हैं अन्वेषक नहीं बनाती और पाठक के समक्ष आत्म निर्णय का संचार नहीं करती।" अश्क की बहुत सी कहानियों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

१२. **भगवती चरण वर्मा -** भगवती बाबू अपनी व्यंग्यात्मक कहानियों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। उनको प्रतिष्ठित करने में 'प्रायश्चित', 'दो बांके', और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि कहानियों का विशेष योगदान रहा है। किन्तु 'मोर्चा बंदी' संग्रह की कहानियां उनको चुकाने में सहयोगी सिद्ध हुई है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा पहाड़ी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त तथा अमृत राय का भी कहानी साहित्य को प्रमुख योगदान है।

८.४.४ स्वातंत्र्योत्तर युग:

चतुर्थ चरण हिन्दी कहानी के चतुर्थ चरण में जैनेंद्र द्वारा प्रवर्तित मनो-विश्लेषण की परंपरा का विकास हुआ। भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा राम प्रसाद आदि का योगदान मिला। चतुर्थ चरण को स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी युग भी कहा जाता है। इस अवधि में तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं-

१. यशपाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा जैसे पुरानी पीढ़ी के कहानीकार सक्रिय रहे।

२. आजादी मिलने के समय वयस्क हो रही पीढ़ी के कहानीकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रेणु, मोहन राकेश आदि ने खूब कहानियां लिखीं।

३. सन् १९६० ई. के अत में युवा पीढ़ी ने लिखना प्रारंभ किया जिसने स्वतंत्र भारत में आंखे खोली थीं। इस पीढ़ी के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, कामता नाथ, इब्राहिम शरीफ, हिमांशु जोशी तथा महीपाल सिंह आदि प्रमुख हैं। स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी का इतिहास आंदोलन का इतिहास है। चार-पांच साल की अवधि बीतते-बीतते एक आंदोलन उठ खड़ा होता रहा जिसे लेकर खूब ढोल पिटे तथा नारे लगे। इसके परिणामस्वरूप कहानी एक गंभीर एवं केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सन् १९५० ई. के बाद कहानी में एक नवीन मोड़ आया जिससे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी सहज और समानांतर कहानी के अलग अलग झंडे लहराने लगे। इस ढाई-तीन दशक की अवधि में ढेरों अच्छी बुरी कहानियां लिखी गईं नई कहानी के नई होने की घोषणा कम, स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के पुरानी हो जाने की घोषणा अधिक थी। सन् १९५० ई. तक आते आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैनेन्द्र की

चौंकाने वाली दार्शनिक कथा, मुद्रा, अज्ञेय की सतही प्रगतिशील कहानियां तथा कथा एवं शिल्प के द्वंद्व में फंसी हुई यशपाल की कहानियों की प्रासंगिकता समाप्त प्राय है। ऐसा प्रतीत होता था कि या तो वे कहानीकार बुझ चुके हैं अथवा कहानी लेखन का आत्म विश्वास उन्हें अनाथ बनाकर चला गया है। ऐसी स्थिति में एकाएक कहानी के नएपन के आग्रह का उभर कर आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेना आकस्मिक घटना नहीं अपितु पुराने के प्रति नए का विद्रोह तथा नवीन कहानी लेखक की तड़प तथा छपास है।

इस युग के प्रमुख रचनाकार एवं उनकी रचनायें इस प्रकार से हैं-

१. **भगवती प्रसाद वाजपेयी :** वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्घाटित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'हिलोर', 'पुष्करिणी' तथा 'खाली बोतल' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में 'मिठाई वाला', 'झांकी', 'त्याग', तथा 'वंशीवादन' आदि श्रेष्ठ कहानियां मानी जाती हैं। भगवती चरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। उनमें विश्लेषण की गरिमा तथा गंभीरता है। मार्मिकता एवं रोचकता का गुण भी विद्यमान है। उनके कहानी-संग्रह 'खिलते-फूल', 'इंस्टालमेंट' तथा 'दो बांके' आदि उल्लेखनीय हैं।

२. **सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय:** चतुर्थ चरण के मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भी अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मनोविश्लेषण परंपरा को और आगे बढ़ाया है। 'विपयाग', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

३. **इला चन्द्र जोशी:** इनके कहानी संग्रह 'रोमांटिक छाया', 'आहूति' तथा 'दीवाली और होली' आदि हैं। जोगी ने मनोविज्ञान के सत्यों का उद्घाटन किया जिससे अन्य लेखकों की अपेक्षा इनका अधिक मर्मस्पर्शी रूप सामने आया।

४. **उपेंद्र नाथ 'अश्क':** सामाजिक विषयों को अपनाने वाले लेखकों में उपेंद्रनाथ 'अश्क' का नाम चतुर्थ चरण में भी प्रमुख है। उनकी कहानियों में 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'दूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी' तथा 'चित्रकार की मौत' आदि प्रमुख हैं। इनको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अश्क की विषय वस्तु, शैली एवं रोचकता की दृष्टि से प्रेम चंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कहानीकार हैं।

५. **यशपाल:** यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर करारा व्यंग्य किया हैं उनकी कहानियों में पराया सुख, 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञान दान', 'कुछ न समझ सका', 'जबरदस्ती' तथा 'बदनाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

६. **चन्द्रगुप्त विद्यालंकार:** विद्यालंकार का कहानी क्षेत्र में विशेष नाम है। आपकी कहानियों के द्वारा कहानी-कला का विकास हुआ है। विद्यालंकार के कहानी संग्रह 'चन्द्रकला' तथा 'अमावस' है।

७. **राम प्रसाद पहाड़ी:** पहाड़ी का हिन्दी कहानी को विशेष योगदान है। पहाड़ी के कहानी संग्रह 'सड़क पर', 'मौली' तथा 'बरगद की जड़े', आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात की कहानियों में कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग हुए लंबी यात्र के पश्चात हिन्दी कहानी 'नई कहानी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों को निम्नलिखित उप शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है :

नई कहानी: भारत की स्वतंत्रता के पश्चात नई चेतना का विकास हुआ स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आम आदमी ने जिन आशाओं और सपनों को संजोया था वे अब टूटने लगे थे। राजनीतिक स्तर पर जहाँ भ्रष्टाचार बढ़ने लगा था वहीं सामाजिक स्तर पर जातिवाद और अधिक भयानक रूप धारण करने लगा था। ऐसे वातावरण में लेखकों ने इन समस्याओं पर जो कहानियां लिखी वह 'नई कहानी' के नाम से विख्यात हुई। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, अमरकांत, शेखर जोशी, भीष्म साहनी आदि कहानीकारों की कहानियां 'नई कहानी' के अंतर्गत आती हैं। कमलेश्वर का कथन है कि जितेंद्र एवं ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने कहानी को नवीन रूप देने का प्रयास किया। कहानी के नवीन रूपों को 'नई कहानी' नाम देने का श्रेय दुष्यंत कुमार को है। डॉ. बच्चन सिंह ने सन् १९५० ई. में शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रकाशित 'दादी मां' में नयी कहानी के तत्वों का अवलोकन किया। उनके विचार से सन् १९५६-५७ में नई कविता के साम्य पर इसका नाम 'नई कहानी' रख दिया गया। सूर्य प्रकाश दीक्षित नई कहानी के शुभारंभ का श्रेय कमलेश्वर मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव को संवेत रूप में देते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को किसी आंदोलन का श्रेय देना उचित प्रतीत नहीं होता है। सार्थक आंदोलन परिवेश की मांग तथा पूरी पीढ़ी के प्रयास की उपज होता है। हिन्दी कहानी साहित्य में नएपन का प्रारंभ 'पूस की रात', 'नशा' तथा 'कथन' जैसी कहानियों से हो चुका था। सन् १९५० ई. तक आते आते कहानी के कथा शिल्प में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। नएपन की यह प्रवृत्ति सन् १९५६-५७ ई. में आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुकी थी। डॉ. नामवर सिंह उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने नई कहानी के प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। कहानी के नववर्षांक सन् १९५६-५८ में प्रकाशित उन लेखों से इस आंदोलन को अति बल मिला। नई कहानी उस समय लिखी गई जब कहानीकारों में देश की स्वतंत्रता को लेकर संशय की भावना का उदय हो रहा था। मोह भंग की पृष्ठ भूमि का निर्माण हो रहा था। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के विभाजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मूल्य संक्रमण तथा मूल्य-विघटन का परिवेश तैयार हो गया था। राजनीतिक पृष्ठभूमि में भी सेवा, त्याग, करुणा, सत्य, पे्रम आदि गांधीवादी मूल्य कड़ी आजमाइश में पड़ गए थे। डॉ. भगवान दास वर्मा का कथन है, 'परंपरावादी जीवन-दर्शन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और भ्रम भंग की अवस्था, जीवनादर्शों की अनिश्चितता, व्यक्ति जीवन, अकेलेपन एवं अजनबीपन एहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भों के परिपाश्र्व पर नई कहानी विकसित हो रही है।

सहज कहानी : सहज कहानी की बात अमृतराय ने उठायी। 'सहज' शब्द की व्याख्या करते हुए अमृतराय ने कहा– 'सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रा-दोष नहीं है।"

उनके अनुसार 'सहज कहानी' वह है जो सहज कथा-रस से युक्त हो। सहज कहानी के संबंध में उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि सहज कहानी न तो कोई नारा है और न ही कोई आंदोलन। वास्तव में 'सहज कहानी' अकेले कंठ की पुकार बनकर रह गई। उनकी इस वैचारिकता को अन्य कहानीकारों का समर्थन नहीं मिला।

सचेतन कहानी : सचेतन कहानी डॉ. महीप सिंह की देन मानी जाती है। 'सचेतन कहानी' व्यक्तिवाद का विरोध करती है और मनुष्य को उसके समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है।

'अकहानी' में सेक्स का जबरदस्त आतंक था लेकिन 'सचेतन कहानी' इस आतंक से मुक्त है। 'सचेतन कहानी' में विविधता और गहराई दोनों मिलती हैं।

समांतर कहानी : समांतर कहानी की अवधारणा कमलेश्वर ने प्रस्तुत की। अक्टूबर, १९७४ के 'सारिका'पत्रिका के अंक से 'समांतर कहानी' का दौर शुरू हुआ।

कमलेश्वर, कामतानाथ, जितेंद्र भाटिया, मिथिलेश्वर आदि कहानीकारों ने इसका समर्थन किया।

परंतु 'समांतर कहानी' के अधिकांश पक्षधर इसे आंदोलन नहीं मानते थे। मिथिलेश्वर ने इसे आंदोलन मानने से इनकार किया है परंतु इसकी खूबियों की प्रशंसा की है। अनेक आलोचकों ने इसकी आलोचना भी की है। शैलेश मटियानी एक प्रमुख कहानीकार हैं जो इसकी आलोचना करते हैं। उनके अनुसार समांतर कहानी समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद तथा हानिकारक आंदोलन है।

सक्रिय कहानी और जनवादी कहानी : 'सक्रिय कहानी' की अवधारणा राकेश वत्स ने प्रस्तुत की। राकेश वत्स के अनुसार 'सक्रिय कहानी' का अर्थ है- 'आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी।"

सक्रिय कहानी और जनवादी कहानी एक बिंदु पर बहुत निकट हैं और वह है– व्यवस्था विरोध। दोनों आधुनिक आंदोलनों के कहानीकार आर्थिक- सामाजिक शोषण के विरुद्ध हैं और इसके लिए मौजूद व्यवस्था को जिम्मेदार मानते हैं।

बहुत से कहानीकारों ने इन आंदोलनों से दूर रहते हुए भी सार्थक सृजन किया। इन आंदोलनों से जुड़े कहानीकार भी इन आंदोलनों से हटकर कहानियां लिखते रहे। कहानी आज भी निरंतर विकास की ओर अग्रसर है। भाषा, भाव व शिल्प की दृष्टि से कहानी में आज भी निरंतर नवीन प्रयोग हो रहे हैं। परंतु इन्हें आंदोलन का नाम नहीं दिया जा रहा। आज की कहानी को हम '२१वीं सदी की कहानी' नाम दे सकते हैं।

हास्य रस की कहानियां :

हिन्दी में हास्य रस की कहानियां लिखने वालों में जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण प्रसाद गौड़, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद, मिर्जा अजीम बेग, चुगताई तथा जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जी.पी. श्रीवास्तव की कहानियों में अत्यधिक वैविध्य उपलब्ध है। इनकी कहानियों में 'पिकनिक', 'भड़ाम सिंह शर्मा', 'गुदगुदी' तथा 'लतखोरी लाल' आदि महत्वपूर्ण हैं। उनका हास्य साधारण स्तर का है। 'बेढब बनारसी' और 'अन्नपूर्णानंद' की कहानियों में अधिक परिष्कृत हास्य मिलता है। अन्नपूर्णानंद की कहानियों में 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि

उल्लेखनीय हैं। मिर्जा ने ‘गीदड़ को शिकार’, ‘लेफ्टिनेंट’, ‘कोलतार’ आदि कहानियां लिखीं। नलिन के कहानी संग्रह में ‘नवाबी सनक’, ‘शतरंज के मोहरे’, ‘जवानी का नशा’, ‘टीलों की चमक’, आदि उल्लेखनीय हैं।

८.५ सारांश

हिन्दी कहानी का साहित्यिक विधा के रूप में कहानी विकास आधुनिक युग में माना जाता है लेकिन प्राचीन भारतीय परम्परा में पंचतंत्र, जातक कथा हितोपदेश आदि कहानियों से मनोरंजन समाज सुधार की भावना, बालवृद्धि का विकास व प्रामाणिक आचरण संबंधी कहानी के स्रोत हमें मिलते है। लेकिन कहानी का विस्तृत स्वरूप कालान्तर पश्चात आधुनिक युग में हमें मिलता है जहाँ कहानी के अनेक रूप हैं जिसमें - आत्मकथात्मक शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक और संवाद एवं भाषा शैली गत दृष्टि से कहानी लिखी जाती है।

८.६ बोध प्रश्न

१. हिन्दी कहानी के विकास क्रम को समझाइये।

२. कहानी विधा में मुंशी प्रेमचंद के योगदान को उल्लेखित कीजिए।

३. हिन्दी कहानी में स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों की विशेषताओं को समझाइए।

८.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. कहानी को प्राचीनकाल में किस नाम से पुकारा जाता था ?

उत्तर - गल्प या आख्यायिका

२. हिन्दी की प्रथम कहानी कौनसी है ?

उत्तर - 'रानी केतकी की कहानी'

३. देवरानी जेठानी की कहानी के लेखक है ?

उत्तर - पं. गौरीदत्त

४. चंद्रधर शर्मा गुलेरी किस युग के कहानीकार है ?

उत्तर - प्रेमचंद युग

५. कहानीकार यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को किस माध्यम से देखते है ?

उत्तर - मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के माध्यम से।

८.८ संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य - वाद, प्रवृत्तियाँ एवं विमर्श

❖❖❖❖

munotes.in

९

नाटक विधा का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य
९.१ प्रस्तावना
९.२ हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास
९.३ प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
 ९.३.१ भारतेन्दु युगीन नाटक
 ९.३.२ द्विवेदी युगीन नाटक
९.४ प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक
९.५ प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी नाटक
९.६ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक
९.७ सारांश
९.८ बोध प्रश्न
९.९ लघुत्तरीय प्रश्न
९.१० संदर्भ ग्रंथ

९.० इकाई का उद्देश्य

विद्यार्थी हिन्दी नाटक का आरम्भ व विकास यात्रा को समझ सकेंगे। नाटक की विशेषताओं के साथ प्रमुख नाटककार और उनके द्वारा लिखित नाटकों का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे ।

९.१ प्रस्तावना

हिंदी नाट्य साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। हिंदी से पहले संस्कृत और प्राकृत भाषा में समृद्ध नाट्य - परंपरा थी लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग से ही संभव हो सका । मध्यकाल में रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि का उदय होने से जन नाटकों का प्रचलन बढ़ा यह नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। हिंदी में नाटक के उद्भव एवं विकास को १९वीं सदी से स्वीकार किया जाता है लेकिन दशरथ ओझा ने नाटक का विकास १३वीं सदी से स्वीकार करते हुए 'गाय कुमार रास' को हिंदी का पहला नाटक माना है। उन्होंने मैथिली नाटकों, रासलीला तथा अन्य पद्यबद्ध नाटकों की चर्चा करते हुए मिथिला के नाटकों को हिंदी का प्राचीनतम नाटक माना है लेकिन अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि इन रचनाओं में नाटक के अनिवार्य तत्त्वों का अभाव है। १७वीं १८वीं

शताब्दी के लगभग कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गए जो ब्रजभाषा में थे जैसे प्राणचंद चौहान का 'रामायण महानाटक' व विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन' है। कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'आनंद रघुनंदन' को हिंदी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना है। इस दौर के सभी नाटक पर संस्कृत नाट्य साहित्य की छाप नजर आती है। इसकी विषय वस्तु धार्मिक व पौराणिक है। इसके संवाद पद्यात्मक है। श्रृंगार इसकी मूल प्रवृत्ति है।

९.२ हिंदी नाट्य साहित्य का विकास

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पारसी थिएटर कंपनियां अस्तित्व में आ चुकी थी। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। इनके नाटकों के कथानक कभी रामायण– महाभारत से कभी पारसी प्रेम कथाओं से, और कभी अंग्रेजी नाटक 'हैमलेट', 'रोमियो जूलियट' आदि से लिए जाते थे। इसमें बचकाने नृत्य, स्थान– स्थान पर गीत, शेरो- शायरी, ग़ज़ल आदि का समावेश रहता था। ऐसा ही नाटक अमानत द्वारा लिखी 'इंद्रसभा' है। 'ओपेरा' के समान इस नाटक का अधिकांश भाग गीतों से भरा है। बीच– बीच में संवाद है। ऐसे नाटकों द्वारा उत्पन्न कलाहीन, और असंस्कृति वातावरण से क्षुब्ध होकर भारतेंदु ने हिंदी नाटक को साहित्य कलात्मक रूप देने का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित इस परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने नया स्वरूप व नई दिशा प्रदान की। आगे चलकर मोहन राकेश जैसे नाटककारों ने इस परंपरा को आधुनिक यथार्थ से गहराई से जोडा। अन्य गद्य विधाओं की भांति वास्तव में नाटक साहित्य का विकास भी भारतेंदु युग में ही हुआ। संस्कृत नाटकों की परंपरा के ह्रास के बाद नाटक के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा अभाव सामने आया। हिंदी के आदिकाल और मध्यकाल में नाटक को विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला। यह ठीक है कि लोक-जीवन में पारंपरिक नाट्य प्रचलित रहा और भाषा नाटक भी लिखे गए हैं। भारतेंदु से पूर्व ब्रज भाषा में नाटक लिखे गए थे। जैसे प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' तथा बनारसी दास जैन कृत 'समय सार नाटक', विश्वनाथ सिंह रचित 'आनंद रघुनंदन' आदि। इस प्रकार १६१० ईसवी से लेकर १८५० ईसवी की अवधि में लगभग १४ नाटक प्राप्त हुए हैं। परन्तु इन्हें भी विद्वान् हिंदी के वास्तविक नाटक मानने के पक्ष में नहीं हैं।

'कालचक्र' नाम की अपनी एक पुस्तक में भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने लिखा है 'हिंदी नई चाल में ढली, सन १८७३ ईस्वी में'। इसी पुस्तक में (कालचक्र) में उन्होंने 'नहुष' (बाबू गोपाल चंद्र गिरिधरदास द्वारा रचित) को हिंदी का पहला नाटक, राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा रचित शकुंतला को हिंदी का द्वितीय नाटक तथा विद्यासुंदर (भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा रचित) को हिंदी का तृतीय नाटक माना है। 'नहुष' ब्रज भाषा में रचित नाटक है। वस्तुतः हिंदी नाटक का विकास भारतेंदु युग से हुआ। हिंदी नाटक के विकास को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :

साहित्य जगत में नाटक का एक अपना अलग स्थान है। क्योंकि नाटक जुड़ाव पाठक के साथ-साथ दर्शक से भी होता है। इस बात में किंचित संदेह नहीं है कि जिस तरह हिंदी कहानी व उपन्यास में

munotes.in

प्रेमचंद का स्थान केंद्रीय महत्व का है। ठीक उसी तरह हिंदी नाटकों में जयशंकर का है। प्रसाद जी ने नाट्य लेखन को एक उत्कृष्ट स्थान प्रदान करने में अग्रणी भूमिका निभाई। भारतेंदु जी द्वारा लगाये पौधे को प्रसाद जी अपनी सर्जना क्षमता के बलबूते वट वृक्ष बना दिया। यही कारण है कि प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के न केवल केन्द्र बिन्दु अपितु आधार स्तंभ बनकर भी सामने आते हैं। प्रसाद जी हिन्दी नाट्य साहित्य की वो धुरी हैं, जिन्हें केन्द्र में रखकर हिंदी नाट्य साहित्य की विकास यात्रा को आसानी से समझा जा सकता है। हिन्दी नाटकों की विकास यात्रा को हम विभिन्न युगों में बांट सकते हैं।

(१) प्रसाद पूर्व हिंदी नाटक

(२) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

(३) प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिंदी नाटक

(४) स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

९.३ प्रसाद पूर्व हिंदी नाटक

munotes.in

इस काल के साहित्य को दो उप- खंडों में विभाजित किया जा सकता है।

- भारतेंदु युगीन नाटक
- द्विवेदी युगीन नाटक

९.३.१ भारतेन्दु युग (१८५०– १९००ई.):

हिन्दी नाटकों का व्यवस्थित रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल से ही दृष्टिगोचर होता है। पारसी थियेटरों और नाटक कम्पनियों के असाहित्यिक एवं अव्यवस्थित नाटकों की प्रतिक्रिया के पलस्वरूप भारतेन्दु जी ने नाटक लिखना आरम्भ किया। भारतेन्दु ने जिस नाट्य-पद्धति का श्रीगणेश किया वह अपने अतीत से भिन्न थी। उन्होंने पद्य के स्थान पर गद्य, राम और कृष्ण के स्थान पर सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों को ग्रहण किया। भारतेन्दु जी ने स्वयं भी संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी नाटकों का अच्छा अध्ययन किया था। इनमें से इन्होंने कुछ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया था। खड़ी बोली में प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेंदु जी को ही है। भारतेंदु का युग नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, परिवर्तनों का दौर था। एक वर्ग पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन कर रहा था, तो दूसरा विरोध। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ रहा था। ऐसे में नई मान्यताएं, दृष्टिकोण और सृजनात्मक दिशा देने की आवश्यकता थी। भारतेंदु ने यही किया है। भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उसमें आत्मविश्वास जगाना था। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखने, तथा पश्चिम के गलत प्रभाव से समाज को बचाए रखने का प्रयास इन नाटकों में हुआ है। भारतेन्दु युग के नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही प्रमुख नाटककार थे। उन्होंने लगभग १३ मौलिक तथा

अनूदित नाटकों की रचना की। भारतेंदु जी ने संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी के कई नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया। 'विद्या सुंदर', 'पाखंड विखंडन', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्राराक्षस', 'रत्नावली' और 'दुर्लभ बंधु' भारतेंदु जी के अनुदित नाटक हैं। भारतेंदु जी के द्वारा रचित मौलिक नाटकों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चंद्रावली', 'विषस्य विषम औषधम', 'भारत दुर्दशा', 'नील देवी', 'अंधेर नगरी' आदि का नाम प्रमुख है। उनके द्वारा रचित मौलिक नाटकों में से कुछ नाटक अन्य भाषाओं के नाटकों का रूपांतरित रूप प्रकट होते हैं। 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत से अनुवाद किया हुआ नाटक है। 'विद्या सुन्दर तथा भारत जननी' नाटकों का बंगला से अनुवाद किया। भारतेन्दु के नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' सबसे अधिक प्रसिद्ध नाटक है। इसने राजा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा तथा उनके चारित्रिक बल की पौराणिक कथा को एक कलात्मक नाटकीय स्वरूप प्रदान किया है। भारतेन्दु जी की नाट्यकला पर संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला तीनों भाषाओं के नाटकों का प्रभाव है। भारतेन्दु ने इन भाषाओं के नाटकों के अनुकरण को एक कलात्मक नाटकीय स्वरूप प्रदान किया है। भारतेन्दु जी की नाट्यकला पर संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला तीनों भाषाओं के नाटकों का प्रभाव है। भारतेन्दु ने इन भाषाओं के नाटकों का अनुकरण नहीं किया, अपितु संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी की नाट्यकला में समन्वय स्थापित किया। इन्होंने रंगमंच के लिए उपयुक्त नाटकों की रचना की। उन्हें रंगमंच का विशेष ज्ञान तथा अनुभव था। वे स्वयं नाटकों के अभिनय में भाग लेते थे। यही उनकी सफलता का रहस्य था। भारतेंदु जी से प्रेरणा प्राप्त करके अनेक लेखक नाटक लेखन के क्षेत्र की ओर प्रवृत्त हुए। इनमें अंबिकादत्त व्यास, देवकीनंदन त्रिपाठी, श्री नंदन सहाय, राधा कृष्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, दुर्गादत्त, गोपालराम गहमरी, प्रताप नारायण मिश्र, किशोरी लाल गोस्वामी, श्रीनिवास दास बालकृष्ण भट्ट आदि का नाम प्रमुख है। भारतेंदु युग में देशभक्ति की भावना, राष्ट्रीय जागरण, समाज सुधार, सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति नाटकों के माध्यम से की गई। पौराणिक नाट्य धारा के अंतर्गत राम, कृष्ण, सीता, सुदामा, रुक्मणी आदि के पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर कई नाटक लिखे गए। ऐतिहासिकता के आधार पर महाराणा प्रताप, संयोगिता स्वयंवर, मीराबाई, हमीर आदि को लेकर नाट्य-रचनाएं लिखी गई। राष्ट्रीय धारा के अंतर्गत वे नाटक आते हैं जो देश की दुर्दशा का चित्रण करते हैं तथा इसके लिए उत्तरदायी तत्वों पर प्रकाश डालते हैं। सामाजिक नाटकों के अंतर्गत वे नाटक उल्लेखनीय हैं जिनमें रूढ़ियों, अंधविश्वासों व गलत परम्पराओं पर चोट की गई है। नारी जीवन को लेकर अनेक नाटक लिखे गए। इनमें मयंक मंजरी (किशोरी लाल गोस्वामी) और रणधीर प्रेम मोहिनी (श्री निवासदास) महत्वपूर्ण है।

भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में लाला श्रीनिवास दास ने 'रणधीर', 'प्रेम मोहनी', 'प्रह्लाद चरित्र', 'सप्तसंवरण' तथा 'संयोगिता स्वयंवर', ये चार नाटक लिखे। रायकृष्ण दास ने 'दुखिनी बाला', 'पद्मावती', 'धर्मपाल' तथा 'महाराणा प्रताप' नाटकों की रचना की। बालकृष्ण भट्ट के प्रकाश में आए हुए 'दमयन्ती स्वयंवर', 'वेणी संहार' और 'जैसा काम वैसा परिणाम तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन ने भारत सौभाग्य', वीरांगना रहस्य' और 'वृद्ध विलाप' नाटक लिखे। प्रताप नारायण मिश्र ने 'गो संकट', 'कलि कौतुक', 'हठी हमीर' आदि नाटकों की रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयंक मंजरी' और 'नाट्य सम्भव' आदि नाटकों की रचना की। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन

लेखकों द्वारा लिखे गये नाटकों में सामाजिक कुरीतियों के प्रति तीखा व्यंग्य होता था। उस समय के लिखे गये प्रहसनों में सामाजिक समस्याओं पर खुलकर प्रहार किया गया। इस दौर के प्रसिद्ध नाटकों में हास्य– व्यंग्य शैली में तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक कुरीतियों, कुप्रथाओं, एवं अंधविश्वासों का मजाक उड़ाया गया है। भारतेंदु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति 'तथा राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुंह मुहासे 'इसी शैली के नाटक है। भारतेंदु युगीन नाटकों में प्राचीन– नवीन शैलियों का सामंजस्य दिखाई देता है। जो नाटक संस्कृत शैली में लिखे गए, उनके पात्र आदर्श आधारित हैं। जबकि नवीन शैली में नाटकों के पात्र सच्चे जीवन के प्रतिनिधि नजर आते हैं। शिल्प की दृष्टि से यह नाटक ना तो पूर्णता प्राचीन– नाट्य शास्त्र से जुड़े हैं और ना ही इनमें अंग्रेजी परंपरा की नकल उतारी गई है। भारतेंदु ने ही पाश्चात्य ट्रेजडी पद्धति पर दुखांत नाटक लिखे हैं। उनका 'नीलदेवी 'नाटक दुखांत के नजदीक है।

९.३.२ द्विवेदी युगीन नाटक (१९०० -१९१८ ई.)

भारतेन्दु के अनन्तर साहित्य का जो दूसरा उत्थान हुआ, उसके प्रमुख प्रेरणा-केन्द्र महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। हिन्दी नाटकों के ऐतिहासिक विकास-क्रम में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान भारतेन्दु की तुलना में इतना नगण्य है कि नाटक के क्षेत्र में द्विवेदी-युग को अलग से स्वीकार करना और महत्त्व प्रदान करना औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता है। भारतेन्दु के अवसान के साथ नाटक के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। द्विवेदी युग में भारतेंदु जैसी कोई प्रतिभा नहीं थी। भारतेंदु द्वारा स्थापित रंगमंच आगे न बन सका। परिणामस्वरुप जनता व्यवसायिक रंगमंचीय नाटकों में अधिक रुचि लेने लगी। द्विवेदी युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, एवम रोमांचकारी नाटक लिखे गए कुछ प्रहसन भी लिखे गए। इन नाटकों में नाट्य कला का विकास नहीं मिलता और अभिनय तत्व भी नहीं के बराबर है। अपने युग की समस्याओं को नाट्यरूप प्रदान करने का जो अदम्य साहस भारतेन्दु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके दर्शन द्विवेदी-युग में नहीं होते। इसके कई कारण थे। प्रथम तो हिन्दी के नाटककारों में नाटक के सूक्ष्म नियमों एवं विधियों की योजना की क्षमता न थी। दूसरे, नाटकों के इस उदयकाल की सामाजिक स्थिति विक्षोभ पैदा करने वाली थी। इस प्रवृति ने कुछ कर बैठने की प्रेरणा तो दी किन्तु भावों और विचारों को घटनाओं के साथ कलात्मक ढंग से नियोजित करने के लिए मानसिक सन्तुलन नहीं प्रदान किया। तीसरे, आर्य समाज के आन्दोलन के लेखकों पर सुधारवादी जीवन दृष्टि और शास्त्रार्थ शैली का प्रभाव पड़ा जो निश्चय ही नाटकों के कलात्मक विकास में बाधक हुआ। चौथे, पाश्चात्य 'कॉमेडी' के अंधानुकरण के कारण भारतेन्दु के उपरान्त हिन्दी साहित्य में प्रहसनों की प्रवृत्ति भी पनप उठी। प्रहसनों की वृद्धि ने साहित्यिक एवं कलात्मक अभिनयपूर्ण नाटकों की रचना में व्याघात उपस्थित किया। पांचवें, द्विवेदी-युग नैतिकता और सुधार का युग था। नैतिकता और आदर्श के प्रतिस्थापन में उनकी दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भांति उदारवादी था अतएव भारतेन्दु-युग की नवीनता परवर्ती युग के स्वभाव के अनुकूल न थी। अतः कठोर नीतिवादी अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद के फलस्वरूप द्विवेदी-युग, भारतेन्दु-युग की परम्परा को अग्रसर नहीं कर सका। यद्यपि इस बीच भी कई नाटकों की रचना हुई, परन्तु बद्रीनाथ भट्ट के अतिरिक्त कोई विशेष

प्रतिभाशाली नाटककार का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। इसके कई कारण थे, सर्वप्रथम हमारे यहाँ रंगमंच का अभाव था तथा अभिनय कला का प्रचार कम था।

इस युग के नाटककारों को एक तो परंपरागत रंगमंच उपलब्ध नहीं हो पाया और दूसरे इनका मध्य-वर्ग से संबंध टूट गया। द्विवेदी-युग के नाटकों में सुधारवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस युग के अधिकांश नाटक सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण उपदेशात्मक डॉक्यूमेंट्री बन कर रह गये। पारसी रंगमंच हिंदी क्षेत्र पर छा गया और हिंदी रंगमंच अपना अस्तित्व खोने लगा। सभ्य समाज में अभिनय को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इस युग में हिन्दी नाटक संस्कृत के प्रभाव से मुक्त होकर पाश्चात्य नाटकीय शिल्प का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु ने जिस हिन्दी रंगमंच की स्थापना की थी वह भी पारसी थियेटर कम्पनियों की तड़क-भड़क, जनता की भद्दी रुचि, गद्य-पद्य मिश्रित चलती हुई भाषा तथा उर्दू लेखकों के चुलबुलेपन के कारण स्थिर न रह सकी। इन्हीं कम्पनियों की प्रेरणा से रंगमंचीय नाटक लिखे गये जिनमें नारायण प्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा आदि नाटककार प्रमुख थे।

द्विवेदी युग में मौलिक नाटकों की संख्या अत्यल्प है अनुवाद-कार्य पर अधिक बल रहा है। मौलिक नाटकों में साहित्य की दो धाराएं प्रमुख हैं: (१) साहित्यिक नाटक और (२) मनोरंजन प्रधान नाटक।

साहित्यिक नाट्य धारा को विकसित करने के उद्देश्य से अनेक नाटक मंडलियों की स्थापना की गई जेसे प्रयाग की 'हिन्दी नाटक मण्डली', कलकत्ते की नागरी नाटक मंडल' मुजफ्फरनगर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिन्दी नाट्य-समिति' सबसे अधिक पुरानी थी। सन् १८९३ ई. में यह 'रामलीला नाटक मंडली' के रूप में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापकों में प्रमुख थे : पंडित माधव शुक्ल जो स्वयं अच्छे अभिनेता और रंगकर्मी थे और जिन्होंने राष्ट्रीयता चेतना प्रचार-प्रसार के लिए नाटकों को सशक्त माध्यम बनाया था। किन्तु हिन्दी रंगमंच समुचित साधन और संरक्षण के अभाव में तथा जनता की सस्ती रुचि के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया। फलतः नाटक का साहित्यिक रूप ही सामने आया। संख्या की दृष्टि में आलोच्यकाल में लिखे गये नाटक कम नहीं हैं किन्तु मौलिक नाटकों के नाम पर ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों को ही नाटकों में या कथोपकथन में परिवर्तित कर दिया गया। अध्ययन की सुविधा के लिए आलोच्य युग के नाटकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक उपादानों पर रचित नाटक, रोमांचकारी नाटक, प्रहसन और अनूदित नाटक।

हृदय की वृत्तियों की सत्त्व की ओर उन्मुख करने का प्रयास भारतेन्दु-युग के नाटकों में बहुत पहले से होता आ रहा था। द्विवेदी-युग से इन वृत्तियों के उत्कर्ष के लिए पौराणिक आख्यानों का निःसंकोच ग्रहण किया गया। आलोच्य युग में पौराणिक नाटकों के तीन वर्ग देखने को मिलते हैं : कृष्णचरित-सम्बन्धी, रामचरित सम्बन्धी तथा अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं से सम्बन्धित। कृष्ण चरित सम्बन्धी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (१९०४), ब्रज नन्दन सहाय-कृत 'उद्धव' (१९०९), नारायण मिश्र-कृत 'कंसवध' (१९१०), शिव नन्दन सहाय-कृत 'सुदामा।' (१९०७) और बनवारी लाल-कृत 'कृष्ण तथा कंसवध' (१९१०) को विशेष ख्याति प्राप्त है। रामचरित-सम्बन्धी

नाटकों में रामनारायण मिश्र-कृत 'जनक बड़ा' (१९०६) गिरधर लाल-कृत 'रामवन यात्रा' (१९१०) और गंगाप्रसाद-कृत 'रामाभिषेक' (१९१०), नारायण सहाय-कृत 'रामलीला' (१९११), और राम गुलाम लाल-कृत 'धनुषयज्ञ लीला (१९१२), उल्लेखनीय हैं। अन्य पौराणिक घटनाओं से सम्बन्धित नाटकों में महावीर सिंह का 'नल दमयन्ती' (१९०५), सुदर्शनाचार्य का 'अनार्थ नल चरित' (१९०६), बांके बिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका' (१९०८), बालकृष्ण भट्ट का 'बेणुसंहार' (१९०९), लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (१९०७) और हनुमंतसिंह का 'सती चरित' (१९१०), शिवनन्दन मिश्र का 'शकुन्तला' (१९११), जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय (१९१२) बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (१९१५), माधव शुक्ल का 'महाभारत-पूर्वाद्धर्' (१९१६), हरिदास माणिक का 'पाण्डव-प्रताप' (१९१७) तथा माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध (१९१८) महत्वपूर्ण हैं।

इन नाटकों का विषय पौराणिक होते हुए भी पारसी रंगमंच के अनुरूप मनोरंजन करने के लिए हास-परिहास, शोखी और छेड़छाड़ के वातावरण का ही आधार ग्रहण किया गया है। द्विवेदी युग में पौराणिक नाटकों के साथ ही कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए जिनमें गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जय माल' (१९०३), शालिग्राम कृत 'पुरु विक्रम' (१९०५), वृन्दावन लाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (१९०९), कृष्ण प्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (१९१५), बद्रीनाथ भट्ट कृत 'चन्द्रगुप्त' (१९१५), हरिदास माणिक-कृत 'संयोगिता हरण' (१९१५), जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री' (१९१५) और परमेश्वरदास जैन का 'वीर चूड़ावत सरदार' (१९१८) महत्त्वपूर्ण हैं। इन नाटकों में प्रसाद के 'राज्यश्री' नाटक को छोड़कर और किसी भी नाटक में इतिहास-तत्त्व की रक्षा नहीं हो सकी। द्विवेदी-युग में भारतेन्दु-युग की सामाजिक-राजनीतिक और समस्यापरक नाटकों की प्रवृत्ति का अनुसरण भी होता रहा है। इस धारा के नाटकों में प्रताप नारायण मिश्र-कृत 'भारत दुर्दशा' (१९०३) भगवती प्रसाद-कृत 'वृद्ध विवाह' (१९०५), जीवानन्द शर्मा-कृत 'भारत विजय' (१९०६), रुद्रदत शर्मा-कृत 'कंठी जनेऊ का विवाह' (१९०६), कृष्णानन्द जोशी-कृत 'उन्नति कहां से होगी' (१९१५), मिश्र बन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन' (१९१५) आदि कई नाटक गिनाए जा सकते हैं। नाट्यकला की दृष्टि से विशेष महत्व न रखते हुए भी ये नाटक, समाज सुधार और नैतिकवादी जीवन दृष्टि से युक्त हैं।

इस युग में पारसी रंगमंच सक्रिय रहा जिसके लिए निरन्तर रोमांचकारी, रोमानी और धार्मिक नाटक लिखे जाते रहे। पारसी नाटक कम्पनियों के रूप में व्यवसायी रंगमंच का प्रसार भारतेन्दु-युग में ही हो चुका था। इस काल में 'ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी', 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी', 'एल्प्रफेड थियेट्रिकल कम्पनी', 'शेक्सपीयर थिटेट्रिकल कम्पनी', 'जुबिली कम्पनी' आदि कई कम्पनियां 'गुलबकावली', 'कनकतारा', 'इन्दर सभा', 'दिलफरोश', 'गुल फरोश', 'यहूदी की लड़की', जैसे रोमांचकारी नाटक खेलती थीं। रोमांचकारी रंगमंचीय नाटककारों में मोहम्मद मियाँ रादक', हुसैन मियाँ 'जर्राफ', मुन्शी विनायक प्रसाद 'तालिब', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद बेताब', आगा मोहम्मद हश्र' और राधेश्याम 'कथावाचक' उल्लेखनीय हैं। इनमें राधेश्याम कथावाचक और 'बेताब' ने सुरुचिपूर्ण धार्मिक-सामाजिक नाटक भी लिखे, किन्तु पारसी रंगमंच का सारा वातावरण दूषित ही रहा, जिसने द्विवेदी-युग में नाट्य लेखन की धारा को कुंठित कर दिया।

इस काल में अनेकानेक स्वतंत्र प्रहसन भी लिखे गये। अधिकांश प्रहसन लेखकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है, इसलिए वे अमर्यादित एवं उच्छ्रंखल हैं। प्रहसनकारों में बदरीनाथ भट्ट एवं जी. पी. श्रीवास्तव के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के 'मिस अमेरिका', 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'विवाह विज्ञापन' आदि शिष्ट-हास्यपूर्ण प्रहसन हैं। जी.पी. श्रीवास्तव ने छोटे-बड़े अनेक प्रहसन लिखे हैं। इन प्रहसनों में सौष्ठव और मर्यादा का अभाव है। मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी-युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। सामाजिक तथा राजनीतिक अशान्ति के इस वातावरण में लेखकों को हिन्दी नाटक-साहित्य की हीनता स्पष्ट दिखाई देती थी। अतः कुछ थोड़े उदात्तवादी परम्परा के लोगों का ध्यान संस्कृत नाटकों की ओर गया, परन्तु अधिकांश का अध्ययन बंगला तथा पाश्चात्य नाटकों की ओर ही अधिक था।

संस्कृत से लाला सीताराम ने 'नागानन्द', 'मृच्छकटिक', 'महावीरचरित', 'उत्तररामचरित', मालती माधव' और 'मालविकाग्निमित्र' और सत्यनारायण कविरत्न ने 'उत्तररामचरित' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटकों 'हेमलेट', 'रिचर्ड' द्वितीय', 'मैकवेथ' आदि का हिन्दी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। प्रफांस के प्रसिद्ध नाटककार ओलिवर' के नाटकों को लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगाप्रसाद श्रीवास्तव ने अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित किया। बंगला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करने वालों में गोपालराम गहमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने 'बनवीर' 'बभ्रुवाहन', 'देश दशा', 'विद्याविनोद', 'चित्रागंदा' आदि बंगला नाटकों के अनुवाद किये। बंगला नाटकों के अन्य समर्थ अनुवादक रामचन्द्र वर्मा तथा रूप नारायण पांडेय हैं। उन्होंने गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर तथा क्षीरोद प्रसाद के नाटकों का अनुवाद किया। पांडेय जी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल नाटकों की आत्मा को अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रकार भारतेन्दु-युग तथा प्रसाद-युग को जोड़ने वाले बीच के लगभग २५-३० वर्षों में कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं मिलता। भले ही प्रसाद-युगीन नाटककारों की आरम्भिक नाट्य कृतियाँ द्विवेदी-युग की सीमा में आती हैं परन्तु आगे चलकर उनकी नाट्य कृतियों में जो वैशिष्ट्य आता है, वह उन्हें द्विवेदी-युग के लेखकों से पृथक्क् कर देता है। द्विवेदी-युग में हिन्दी रंगमंच विशेष सक्रिय नहीं रहा। इस युग में बद्रीनाथ भट्ट ही अपवादस्वरूप एक ऐसे नाटककार थे, जिन्होंने नाटकीय क्षमता का परिचय दिया है किन्तु इनके नाटक भी पारसी कम्पनियों के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक तत्त्व का अभाव है।

९.४ प्रसाद युगीन नाटक

जयशंकर प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। उन्होंने कवि होने के साथ-साथ कहानी, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। वस्तुत: कवि के बाद प्रसाद नाटककार के रूप में ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। जयशंकर प्रसाद के आगमन से नाटक के विकास को

नई दिशा मिली। इस समय देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन दौर चल रहा था। व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना की लहर ने इस समय साहित्य को प्रभावित किया इसलिए भारत के अतीत की खोज एवं वर्तमान समस्याओं व दुर्बलताओं से लड़ने का साहस प्रसादजी के नाटकों की प्रेरणा बने। प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग-विधायक व्यक्ति के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्त्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया। डॉ. गुलाबराय का कहना है, 'प्रसाद जी स्वयं एक युग थे।' उन्होंने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रांति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग जितेन्द्र लाल के नाटकों को भूल गये। वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उन्हें स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया। उन्होंने अतीत के इतिवृत्त में भावना का मधु और दार्शनिकता का रसायन घोलकर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो ह्रास की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नई सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके। उनके नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय की सी ऐतिहासिकता और रवि बाबू की-सी दार्शनिकतापूर्ण भावुकता के दर्शन होते हैं। प्रसाद जी ने हिन्दी नाटक की प्रवहमान् धारा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा किया। वे एक सक्षम साहित्यकार थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध ममता थी। उन्हें विश्वास था कि भारतीय संस्कृति ही मानवता का पथ प्रशस्त कर सकती है। इसी कारण अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झांकी दिखाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ अपने देश के अधुनातन निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था, प्रसाद ने नाटकों में उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की। पर यह समझना भी भूल होगी कि उन्होंने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के लिए ही नाटकों की रचना की। वस्तुतः उनका नाट्य साहित्य ऐतिहासिक होते हुए भी सम-सामयिक जीवन के प्रति उदासीन नहीं है, वह प्रत्यक्ष को लेकर मुखर है और उनमें लोक-संग्रह का प्रयत्न है, राष्ट्र के उद्बोधन की आकांक्षा है।

प्रसाद से पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था। जिस समय भारतेन्दु ने नाटक-रचना की शुरुआत की, उनके सामने पहले से निश्चित, प्रतिष्ठित हिन्दी का कोई रंगमंच न था, अतः उन्होंने संस्कृत, लोकनाटक एवं पारसी रंगमंच शैली की विभिन्न रंगपरम्पराओं को सुधारवादी यथार्थ कथ्य के अनुरूप मोड़ देने का स्तुत्य प्रयास किया। ध्यातव्य है कि इसी काल में पारसी थियेटर अपने चरम विकास पर था तथा अत्यंत लोक प्रचलित भी था। इसलिए इस काल की नाट्य प्रवृतियों पर इसका प्रभाव भी अत्यंत व्यापक रूप में नजर आता है। प्रसाद के युग तक नाटकों में पारसी रंगशिल्प का स्वरूप निर्धारित हो चुका था, अतः पारसी रंगमंच की अतिरंजना, चमत्कार, फूहड़ता, शोखभाषा, चुलबुले संवाद, शेरोशायरी के घटियापन की प्रतिक्रिया में प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय नाटकों की रचना की। दार्शनिकता, सांस्कृतिक बोध, उदात्त कल्पना, काव्यमय अलंकृति, दुरूह भाषा का विन्यास उनकी उपलब्धि था। फिर भी साहित्यिक और कलात्मक वैशिष्ट्य होते हुए भी प्रसाद में नाट्य शिल्प के अनेक दोष दिखाई देते हैं। एक तथ्य यह है कि प्रकारान्तर से उन्होंने अतिरंजना की रूढ़ि को किंचित परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। यह परिवर्तन प्रमुखतः शेक्सपीयर के जीवन-बोध, एवं रंगविधान

के प्रभावस्वरूप ही आया था। शेक्सपीयर का रोमानी बोध एवं नियतिवाद संभवतः भारतीय युगीन परिवेश के कारण भी स्वतः उद्भूत होकर प्रसाद की चेतना पर छा गया था। इन्हीं कारणों से प्रसाद मूलतः कवि, दार्शनिक तथा संस्कृति के जागरूक समर्थक थे। जीवन दृष्टि के अनुरूप उन्होंने अपने नाटकों की रचना स्वच्छन्दतावादी नाट्य-प्रणालियों को आधार बनाकर कल्पना, भावुकता, सौन्दर्य-प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छन्दता आदि को ग्रहण किया। किन्तु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमंच हिन्दी में नहीं था इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके। इधर हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं जिससे आज के रंगकर्मी, प्रसाद के नाटकों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। उनके नाटकों को इसीलिए सर्वथा अभिनेय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें से कुछ छुटपुट रूप से उनके जीवन काल में ही खेले गये थे। पिफर भी आकार की विपुलता, दृश्यों की भरमार, चरित्र-बाहुल्य और विलक्षण दृश्य-योजना उनके नाटकों को रंगमंच के लिए अति कठिन बना देती है।

प्रसाद ने आरंभ में कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित आदि रूपक लिखे किंतु उनके प्रतिभा का उदय 'राज्यश्री' से हुआ। उसके बाद विशाखदत्त, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूंट, कामना, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटक लिखकर उन्होंने हिंदी नाटक को विशेष आयाम प्रदान किए। उनके नाटकों का मुख्य स्वर राष्ट्रीय-चेतना, सांस्कृतिक चेतना व देशभक्ति होते हुए भी उनके नाटकों में मानवीय करुणा और विश्व बंधुत्व की भावना का एक विशेष स्वर सुनाई देता है। प्रसाद के समकालीन नाटककार उनके समक्ष कोई विशेष पहचान नहीं बना पाए। फिर भी वियोगी हरि द्वारा रचित 'छदम योगिनी' और मैथिलीशरण गुप्त कृत 'तिलोत्तमा 'विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक कृत 'भीम' आदि कुछ ऐसे नाटक है जिन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई।

प्रसाद युग के प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक :

जयशंकर प्रसाद – 'कल्याणी', 'करुणालय', 'राजश्री', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाख', ।

आगा हश्र – 'सूरदास', 'श्रवणकुमार',' सीता', 'वनवास', ।

नारायण प्रसाद 'बेताब' – 'महाभारत', 'रामायण', 'कृष्ण सुदामा', ।

सुदर्शन – 'सिकंदर', 'धूपछांह'

इस काल के नाटक साहित्य में मुख्यतः पांच प्रकार के नाटक दिखाई पड़ते हैं।

(१) ऐतिहासिक नाटक:

ऐतिहासिक कथानक इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। प्रसाद युग में इतिहास का आधारलेकर अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की गई। इस समय के नाटककारों की दृष्टि इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्त्तव्य समझा।

प्रसाद ने 'राज्यश्री' (१९१८), 'विशाख'(१९२१), 'अजातशत्रु'(१९२२), 'स्कंदगुप्त'(१९२८), 'चंद्रगुप्त'(१९३१) और ध्रुवस्वामिनी (१९३३)आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे। बद्रीनाथ भट्ट ने 'दुर्गावती' नाटक लिखा। इस युग के नाटककारों ने इतिहास संबंधी तथ्यों को कल्पना के मिश्रण से आकर्षित और प्रभावशाली बनाकर नाटकों में प्रस्तुत किया। इतिहास के बीच ही उन्होंने नाटकों में प्रेम और सौंदर्य के मधुर चित्र खींचे इस क्षेत्र में उनकी दृष्टि रोमांटिक होते हुए भी संयमित रही। इस तरह के नाटकों में 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख थे।

इन में राष्ट्रीय चेतना व सांस्कृतिक वातावरण की उपस्थिति सर्वत्र देखी जा सकती है। इनके नाटकों में काव्य तत्व की प्रकृति ज्यादा है। इस काल की गौण ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इन्द्र-कृत 'महाराणा संग्रामसिंह' (१९११), भंवरलाल सोनी-कृत 'वीर कुमार छत्रसाल' (१९२३), चन्द्रराज भण्डारी-कृत 'सम्राट' अशोक (१९२३) ज्ञानचन्द्र शास्त्री-कृत 'जयश्री' (१९२४) प्रेमचन्द-कृत 'कर्बला' (१९२८), जिनेश्वर प्रसाद भायल-कृत 'भारत गौरव' अर्थात् 'सम्राट चन्द्रगुप्त' (१९२८) दशरथ ओझा-कृत 'चित्तौड़ की देवी' (१९२८) और प्रियदर्शी सम्राट अशोक (१९३५), जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द-कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' (१९२९), चतुरसेन शास्त्री-कृत 'उपसर्ग' (१९२९) और 'अमर राठौर' (१९३३) उदयशंकर भट्ट-कृत 'विक्रमादित्य' (१९२९) और 'दाहर अथवा सिंधपतन' (१९४३), द्वारिका प्रसाद मौर्य : कृत 'हैदर अली या मैसूर-पतन' (१९३४), धनीराम प्रेम-कृत 'वीरांगना पन्ना' (१९३३) जगदीश शास्त्री-कृत 'तक्षशिला' (१९३७) उमाशंकर शर्मा-कृत 'महाराणा प्रताप' आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

(२) रोमांचकारी नाटक:

रौनक बनारसी का 'इंसाफे महमूद' हुसैन मियां जरीफ का 'लैला मजनू', 'अलीबाबा' आदिकाल के प्रमुख रोमांचकारी नाटक है इनके नाटकों में श्रृंगार पूर्ण वातावरण उत्तेजक घटना विधान, वेश विन्यास की तड़क-भड़क व छिछले किस्म के संवाद से जनता का मनोरंजन करना प्रमुख उद्देश्य था। नाटक कला की दृष्टि से इन्हें साहित्य नाटक नहीं माना जा सकता।

(३) पौराणिक नाटक:

पौराणिक नाटक एक और तो नैतिक उपदेशों से भरे होते थे किंतु दूसरी ओर उनमें रोमांचकारी प्रभाव उत्पन्न करने का भी प्रयास रहता था। प्रसाद जी का जनमेजय का नागयज्ञ (१९२६), अम्बिकादत्त त्रिपाठी कृत 'सीय-स्वयंवर' (१९१८), रामचरित उपाध्याय-कृत 'देवी द्रौपदी' (१९२१), राम नरेश त्रिपाठीकृत 'सुभद्रा' (१९२४) तथा 'जयन्त' (१९३४), गंगाप्रसाद अरोड़ा-कृत 'सावित्री सत्यवान' गौरीशंकर प्रसाद-कृत- 'अजामिल चरित्र नाटक' (१९२६), पूरिपूर्णानन्द वर्मा-कृत 'वीर अभिमन्यु नाटक' (१९२७), वियोगी हरि-कृत (१९२५), 'छद्मयोगिनी' (१९२९) और 'प्रबुद्ध यामुन' अथवा 'यामुनाचार्य चरित्र' (१९२९), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी-कृत 'तुलसीदास' (१९३४) लक्ष्मीनारायण गर्ग-कृत' श्री कृष्णावतार', किशोरी

दास वायपेयी-कृत 'सुदामा' (१९३४), हरिऔध-कृत 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' (१९३९), सेठ गोविन्ददास-कृत 'कर्त्तव्य' (१९३६) आदि। राष्ट्रीय चेतना की प्रधानता होने के कारण धार्मिक नाटकों में भी राष्ट्रीयता का चित्रण हुआ। नाटकों में अति-नाटकीय और अति-मानवता का बहिष्कार किया गया है। प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं को पूर्ण रूप से हटाने की चेष्टा की गयी है।

(४) समसामयिक नाटक:

इन नाटकों में समसामयिक समस्याओं को उठाया गया है परंतु उनमें गंभीर विश्लेषण का अभाव है। इनमें हास्य का प्रयोग किया गया है परंतु अति नाटकीयता वह सस्ते किस्म के हास्य ने नाटकों के उद्देश्य को क्षति पहुंचाई है। इस प्रकार के नाटकों में बेचैन शर्मा उग्र का 'चार बेचारे', 'उजबक', जी. पी. श्रीवास्तव का 'उलटफेर', 'विवाह विज्ञापन' एवं राधेश्याम कथावाचक का 'काउंसिल की मेम्बरी' प्रमुख है।

(५) यथार्थवादी अथवा सामाजिक नाटक:

इस युग में यथार्थवादी नाटकों की भी नींव पड़ी जिसमें मानव जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण गंभीरता पूर्वक किया गया। इनमें प्रेमचंद का 'संग्राम' नाटक उल्लेखनीय है। सामाजिक नाटकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' (१९२१) और 'हिन्द विधवा नाटक' (१९३५), 'प्रेमचन्द-कृत 'संग्राम' (१९२२) ईश्वरी प्रसाद शर्मा-कृत दुर्दशा (१९२२), सुदर्शन-कृत 'अंजना' (१९२३), 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' (१९२९), और 'भयानक' (१९३७), गोविन्दवल्लभ पन्त-कृत 'कंजूस की खोपड़ी' (१९२३) और 'अंगूर की बेटी' (१९२९), बैजनाथ चावला-कृत 'भारत का आधुनिक समाज' (१९२९), नर्मदेश्वरी प्रसाद 'राम'-कृत 'अछूतोद्धार' (१९२६), छविनाथ पांडेय-कृत 'समाज' (१९२९), केदारनाथ बजाज-कृत 'बिलखती 'विधवा' (१९३०), जमनादास मेहरा-कृत 'हिन्दू कन्या' (१९३२), महादेव प्रसाद शर्मा-कृत 'समय का फेर', बलदेव प्रसाद मिश्र-कृत 'विचित्र विवाह' (१९३२) और 'समाज सेवक' (१९३३) रघुनाथ चौधरी-कृत 'अछूत की लड़की या समाज की चिनगारी' (१९३४), महावीर बेनुवंश-कृत 'परदा' (१९३६), बेचन शर्मा 'उग्र'-कृत 'चुम्बन' (१९३७) और डिक्टेटर' (१९३७), रघुवीर स्वरूप भटनागर-कृत 'समाज की पुकार' (१९३७), अमर विशारद-कृत 'त्यागी युवक' (१९३७) चन्द्रिका प्रसाद सिंह-कृत 'कन्या विक्रय या लोभी पिता' (१९३७) आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों : बाल विवाह, विधवा-विवाह का विरोध, नारी स्वतंत्रता आदि का चित्रण करते हुए उनके उन्मूलन का प्रयास दृष्टिगोचर होता है।

प्रसाद युग के नाटकों के संवाद पात्रों के चरित्र के उद्घाटन और कथानक को गतिशील बनाने में सहायक हैं। लेकिन संवाद योजना में अनेक स्थलों पर लंबे– लंबे कथोपकथन आए हैं जिन्होंने प्रवाह को बाधित किया है। प्रसाद युगीन नाटकों की भाषा सशक्त है किंतु कहीं-कहीं नाटकीय तनाव धारण नहीं कर पाती है। विशेषकर प्रसाद ने भाषा का प्रयोग भाव के अनुसार किया,

पात्रों के अनुसार नहीं। उनके यहां कलात्मकता, अलंकारीकता, लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं उनकी भाषा बोझिल हो गई है प्रसाद युग के नाट्य शैली ना तो दुखान्त थे ना ही सुखान्त, उसमें दोनों शैलियों का सुंदर समन्वय किया गया है।

९.५ प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिंदी नाटक

प्रसाद जी का प्रभाव उनके बाद के भी नाटककारों पर बराबर रहा। हालांकि इस युग तक आते-आते भारत के सामाजिक– राजनीतिक जीवन में कई सारे परिवर्तन आए। अब जीवन में भावना तथा आदर्श का स्थान यथार्थ ने ले लिया राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में मजदूर– किसान भी शामिल हो गए थे। यही कारण है कि प्रसादोत्तर-युगीन नाटक अधिकाधिक यथार्थ की ओर उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। परन्तु भारत के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य था राष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति और विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना, फलस्वरूप व्यापक स्तर पर पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण की लहर फैल गई। इस समूचे काल में पुनर्जागरण की शक्तियों का प्रभाव होने के कारण चेतना के स्तर पर भावुक, आवेशात्मक, आदर्शवादी, प्रवृत्तियों से आक्रांत होना नाटककारों के लिए स्वाभाविक था। यही कारण है कि प्रसादोत्तर काल तक किंचित परिवर्तनों के साथ सभी रचनाकारों की दृष्टि मूलतः आस्था, मर्यादा एवं गौरव के उच्चादर्शों से मंडित रही। भारतेन्दु ने अपनी अद्भुत व्यंग्यशक्ति एवं समाज-विश्लेषण की पैनी दृष्टि से सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया परन्तु उनकी मूल चेतना सुधारवादी आग्रहों का परिणाम होने के कारण आस्थामूलक थी। द्विवेदी युग में भी दो दशकों के अनवरत साहित्यिक अनुशासन आदर्शवादी मर्यादा एवं नैतिकता के कठोर बन्धन के कारण यथार्थ के स्वर मिद्धम पड़ गए। प्रसाद युगीन नाटकों की मूलधारा भी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आदर्श चेतना से सम्बन्धित थी परन्तु खल पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा सद् पात्रों की जीवन चरित्र-सृष्टि में यथार्थ चेतना को नकारा नहीं जा सकता। १९वीं शताब्दी में पश्चिमी नाट्य साहित्य में इब्सन् एवं शॉ द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी नाट्यान्दोलन ने भारतीय नाट्य साहित्य की गतिविधियों को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने समस्या नाटकों का सूत्रपात करके बुद्धवादी यथार्थ को प्रतिष्ठित करने का दावा किया है। परन्तु सिद्धांत एवं प्रयोग में पर्याप्त अन्तर पाते हुए हम देखते हैं कि एक ओर वैचारिक धरातल पर प्रकृतवाद सुलभ जीवन के क्रांतिव्यंजक सम्बन्ध उभरते हैं, वहीं दूसरी ओर समाधान खोजते हुए परम्परा के प्रति भावुकता-सिक्त दृष्टि भी पाई जाती है। 'भावात्मकता और बौद्धकता' का घपला होने के कारण उनके नाटकों का मूल स्वर यथार्थ से बिखर जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अन्य युगीन सामाजिक समस्याओं के साथ राष्ट्र की मुक्ति का प्रश्न सभी नाटककारों की चेतना पर छाया हुआ था। स्वाधीन भारत से उन्हें अनेक प्रकार की मीठी अपेक्षाएं थीं, परन्तु विडम्बना यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन समस्याओं से आक्रांत, बोझिल और जटिल हो उठा। परिवेश के दबाव से ही यथार्थ बोध की शुरुआत हुई। वहीं पारसी रंगमंच की लोकप्रियता कम हो रही थी और सिनेमा का प्रभाव धीरे-धीरे सतत रूप से बढ़ रहा था। इस काल में बहुत विविध विषयों पर बहुत सारे नाटक लिखे गये, लेकिन इनका समग्र विवेचन करें, तो इन नाटकों को अध्ययन की दृष्टि से हम प्रमुखतः दो श्रेणियों में बांट सकते हैं।

(१) राष्ट्रीय चेतना पर आधारित नाटक एवं (२) यथार्थपरक समस्या प्रधान नाटक

(१) राष्ट्रीय चेतना पर आधारित नाटक:

राष्ट्रीय चेतना पर नाटक लिखने वालों में थे 'हरिकृष्ण प्रेमी', 'सेठ गोविंद दास 'तथा 'उदयशंकर भट्ट '। इन्होंने सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना से युक्त अपने नाटकों में समन्वयवादी दृष्टि वह नैतिक मूल्यों पर बल दिया। इस कोटि के नाटकों में हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षाबंधन',' आहुति', गोविंद बल्लभ पंत का 'राजमुकुट', सेठ गोविंददास का 'कर्तव्य' प्रमुख है।

(२) यथार्थपरक समस्या प्रधान नाटक:

समस्या प्रधान नाटकों में व्यक्ति मन के द्वंद्व, स्वच्छंद प्रेम, विवाह समस्या, मूल्यों के विघटन, आदि विषय प्रमुख रहे। प्रसादोत्तर नाटक के पहले चरण में यथार्थवादी प्रवृत्ति से अनुप्राणित हुआ और उसके साथ ही समस्यामूलक नाटक का आविर्भाव हुआ। किन्तु स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ और समस्या के प्रति जागरूकता के साथ-साथ नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के कई नए आयाम उभरे। इसके अतिरिक्त स्थूल यथार्थ के प्रति नाटककार के दृष्टिकोण में भी अन्तर आया। यह पहली बार हुआ कि व्यक्ति पर नाटक लिखे गए इस कोटि में उपेंद्रनाथ अश्क का 'अंजोदीदी', बेचन शर्मा उग्र का 'आवारा', 'डिटेक्टर', हरि कृष्ण प्रेमी का 'छाया', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'सन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' प्रमुख है। समस्या प्रधान नाटकों में पात्र कम होते हैं एवं इनका कार्य व्यापार सीमित होता है। इसलिए इनमे जीवन के विभिन्न विषयों की प्रस्तुति नहीं हो सकती है लक्ष्मी नारायण मिश्र समस्या नाटकों के प्रतिनिधि नाटककार हैं। वहीं गोबिन्द वल्लभ पंत ने आलोच्य युग में 'अन्तःपुर का छिद्र (१९४०), 'सिन्दूर बिन्दी' (१९४६) और 'ययाति' (१९५१) नाटकों की रचना की। पन्त जी ने 'कला के लिए कला' की भावना से प्रेरित होकर नाटकों की रचना अवश्य की है, किन्तु उनके नाटक उद्देश्य से रहित नहीं हैं। उन्होंने जीवन की गहरी उलझनों एवं समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। पंत ने यद्यपि प्रसाद-युग की परम्परा का निर्वाह किया है, किन्तु उनके परवर्ती नाटकों में सामाजिक चेतना अधिकाधिक मुखर होती गई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'गरुड़ध्वज' (१९४५), 'नारद की वीणा', 'वत्सराज' (१९५०) 'दशाश्वमेघ (१९५०), 'वितस्ता की लहरें' (१९५३), 'जगदगुरु', चक्रव्यूह (१९५३), कवि भारतेन्दु (१९५५), 'मृत्युंजय' (१९५८) चित्रकूट, अपराजित, धरती का हृदय आदि नाटकों की रचना की। सभी नाटकों में वर्तमान युग के शिक्षित व्यक्तियों की समस्याओं, उनकी संशयात्मक मनः स्थिति, उनकी कुंठाओं और मानसिक विकृतियों का स्वाभाविक और मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है। उदयशंकर भट्ट के नाटकों में 'राधा' (१९६१), 'अन्तहीन-अन्त' (१९४२) 'मुक्तिपथ' (१९४४) 'शक विजय' (१९४९), कालीदास (१९५०) 'मेघदूत' (१९५०), विक्रमोर्वशी (१९५०), 'क्रांतिकारी' (१९५३), 'नया समाज' (१९५५), पार्वती (१९६२), मत्स्यगंधा (१९७६), आदि प्रमुख हैं।

९.६ स्वातंत्र्योत्तर नाटक (१९४७ से आज तक)

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हिंदी नाटक साहित्य में कई नई प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती है। इन विसंगितयों ने तत्कालीन नाटककारों को काफी गहरे तक प्रभावित किया यही कारण है कि नाटकों में इनका प्रभाव उभरकर सामने आता है। स्वतंत्रता के बाद नव– निर्माण की आकांक्षा ने लोगों में उत्साह का संचार किया। लेकिन इस दिशा में मिली असफलता से उत्पन्न मोहभंग ने लोगों को निराश एवं कुंठित भी किया। इन परिस्थितियों में मध्यम वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुआ।

अतः इस दौर में जो नाटक लिखे गए उनमें मध्यवर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं वह विडंबनाओं का चित्रण किया गया। इन नाटककारों ने आधुनिकता बोध के नाटक लिखे इन्हें नवलेखन 'नवलेखन 'के दौर के नाटक या 'नया नाटक' नाम से भी जाना जाता है। जिस प्रकार की प्रवृतियां नई कहानी, नई कविता, में मिलती है वैसी ही नए नाटक में। भुवनेश्वर प्रसाद के 'असर' नाटक से आधुनिकता बोध का आरंभ माना गया है। इन्ही के दूसरे नाटक 'तांबे के कीड़े' से विसंगति बोध के नाटक की शुरुआत हुई। विसंगति बोध का अर्थ है मानव जीवन का निरूउद्देश्य और अर्थहीन होना। कामू, सैमुअल बेकेट की पाश्चात्य 'एब्सर्ड परंपरा' से मिलते– जुलते ऐसे नाटक काफी मात्रा में लिखे गए हैं।

आधुनिकता बोध को स्थापित करने की दृष्टि से धर्मवीर भारती का 'अंधा युग 'एवं मोहन राकेश के 'आधे– अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन',व 'लहरों के राजहंस 'उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक ने पाश्चात्य प्रभाव से जो नये आयाम ग्रहण किए उनकी प्रथम अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' में प्रकट हुई है। पश्चिम में दो महायुद्धों के बाद नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग हुए। इसके साथ ही युद्ध की परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में भी जो बड़ा भारी परिवर्तन आया उसकी अभिव्यक्ति भी नाटक में हुई। भारत में समानान्तर सामाजिक परिस्थिति तो नहीं आई किन्तु पश्चिम की विचारधारा का उस पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। नई कविता और नई कहानी उससे अनुप्राणित थी ही, हिन्दी नाटक को भी उससे एक दिशा मिली। ऐसी स्थिति में आधुनिक भाव-बोध को उजागर करने का प्रयास हुआऔर धर्मवीर भारती, लक्ष्मी नारायण लाल, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने उसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. धर्मवीर भारती के 'अन्धा युग' (१९५५) गीति-नाटक ने हिन्दी गीत नाट्य-परम्परा को एक नया मोड़ दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत के युद्ध को अनीति, अमर्यादा और अद्धर्-सत्य से युक्त माना है। इसीलिए उन्होंने इस काल को अन्धायुग कहा है। इस नाटक में मिथकीय पद्धति द्वारा विगत और आगत का समन्वय कर, निरन्तरता में आस्था उत्पन्न करने का सघन प्रयास 'भारती' ने किया है। इसमें अस्तित्ववादी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। है। 'आधे अधूरे' यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति करने वाला एक आडंबर हीन नाटक है। जो आधुनिक मध्यम वर्गीय परिवार के टूटने बिखरने की कथा है। कुछ आलोचकों ने तो यहां तक कहा है कि आधे- अधूरे आधुनिक भाव बोध तथा आधुनिक रंग चेतना का पहला नाटक है। 'अन्धायुग' के अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पन्त के 'रजतशिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' में संगृहीत गीतिनाट्य, गिरजाकुमार माथुर का 'कल्पान्तर', सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य-

नाटक' में संगृहीत सिद्धान्त कुमार के पांच गीतिनाट्य-सृष्टि की साँझ, लोह देवता, संघर्ष, विकलांगों का देश और बादली का शाप तथा दुष्यन्तकुमार के गीतिनाटक 'एक कण्ठ विषपायी' (१९६३) आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के हैं : 'अन्धा कुआँ' (१९५५), 'मादा कैक्टस' (१९५९), 'तीन आँखों वाली मछली' (१९६०), 'सुन्दर रस', 'सूखा सरोवर' (१९६०), रक्त कमल (१९६१), 'रात रानी' (१९६२), 'दर्पण' (१९६३)' 'सूर्यमुख' (१९६८), 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' (१९७१), 'करफ्यू' (१९७२) आदि। 'अन्धा कुआँ' में आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्राम्य-जीवन के सामाजिक और पारिवारिक द्वन्द्व का चित्रण है। मोहन राकेश ने मूलतः आधुनिक मानव के द्वंद्व और तनाव को अपने नाटकों का विषय बनाया है। रंगमंच के स्तर पर मोहन राकेश प्रसाद की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। इनकी भाषा चरम रचनात्मक तथा नाटकीय संभावनाओं से युक्त है।

'आषाढ़ का एक दिन' की कथा कालिदास की प्रणय कथा है। यह नाटक सत्ता और सृजनात्मकता के द्वंद्व एवं जटिल संबंधों को व्यक्त करता है। यह नाटक कवि कालिदास और उसकी बाल-संगिनी मल्लिका के प्रेम और संघर्ष की कथा पर आधारित है। कालिदास अपने परिवेश एवं मल्लिका से कट जाने के कारण जीवन के नये अर्थ की तलाश में निकल पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सौन्दरानन्द' पर आधारित है। इस नाटक में नन्द सुन्दरी और गौतम दोनों से निरपेक्ष हो जाने के बाद अलगाव की स्थिति में आंतरिक सत्य की तलाश करने के लिए चल पड़ता है। उनका जीवन-बोध अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमिका पर ही उभरा है। राकेश की दृष्टि का यह यथार्थ जीवन-अर्थो की खोज तक ही सीमित है। किसी परिणति तक पहुंचना राकेश का अभीष्ट भी नहीं है। इसी कारण उनके समस्त नाटकों का समापन किसी निश्चित अन्त पर पहुंच कर नहीं होता। इसमें राग-विराग, मोह- त्याग, सांसारिकता, आध्यात्मिकता के द्वंद को सफलतापूर्वक उभारा गया। लक्ष्मीनारायण लाल इसी समय के एक अन्य महत्वपूर्ण नाटककार है। जिन्होंने 'मादा कैप्टन 'नाटक मे कला को प्रण्य के अंतर्विरोध को प्रस्तुत किया है। यह नाटक एक दूसरे स्तर पर पीढ़ियों के मूल्यों के संघर्षों को रूपायित करता है। लक्ष्मीनारायण लाल लघु नाटकों के लिए प्रसिद्ध है जो भले ही पाश्चात्य रंगशिल्प और आधुनिकता के प्रयोग हो पर यथार्थवादी है।

(1) मोहन राकेश की परंपरा में ही एक अन्य नाम है

'सुरेंद्र वर्मा 'इन्होंने खासतौर पर आधुनिक जीवन के तनाव को तल्खी को व्यक्त करने की कोशिश की है। उनके नाटकों में 'द्रोपदी', 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवां सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं। प्रथम नाटक में आधुनिक नारी की मनःस्थिति का चित्रण पुराने मिथक-प्रतीकों के माध्यम से बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक' का आधार छद्म इतिहास हैं, पर इसमें लेखक ने एक पौरुषहीन व्यक्ति के विवाह बन्धन में पड़ी नारी की शाश्वत समस्या को आधुनिक भाव-बोध के साथ उठाने का प्रयास किया है। आठवाँ सर्ग' कालिदास के जीवन और लेखन पर आधारित है और उसका कथ्य लेखकीय स्वातंत्रय की आधुनिक चेतना को उजागर करता है।

इस काल में भ्रष्टाचार, पीढ़ियों के संघर्ष, संबंधों की अर्थ हीनता, समसमायिक व्यंग, राजनीतिक संदर्भ, आदि विषयों पर नाटक लिखे गए।

(२) पाश्चात्य शिल्प

इस समय पाश्चात्य रंगशिल्प पर आधारित कई नाटक आए जिसमें सूत्रधार, कथाविहीनता, नायकहीनता, का प्रचलन बढ़ा। हिंदी नाटक को नवीनता की ओर उन्मुख करने में रमेश बख्शी का योगदान महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने नाटक में भाषा परिवेश व संदर्भ में बोल्डनेस का मुहावरा चलाया। ७० के दशक तक हिंदी नाटक की रंगमंचीयता काफी खुली और कथा के स्तर पर उसमें विस्तार एवं सूक्ष्मता आ गई। ७० के बाद की नाट्य रचना अपने समय के जटिल यथार्थ से टकराती है एवं रंगचेतना की भी पूरी रक्षा करती है। इन नाटकों की अंतर्वस्तु काफी व्यापक है। इस परंपरा के प्रमुख नाटक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी',

ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', भीष्म साहनी का 'कबीरा खड़ा बाजार में', 'मुआवजे', बृजमोहन शाह का 'त्रिशंकु' है। इनमें ज्ञानदेव अग्निहोत्री तथा बृजमोहन शाह नाटक से रंगमंच की ओर नहीं बल्कि रंगमंच की सक्रियता से लेकर नाटक रचना की ओर अग्रसर हुए। ज्ञानदेव के 'शुतुरमुर्ग' में प्रतीक और फैंटेसी का प्रयोग विशेष है, और बृजमोहन शाह के 'त्रिशंकु' की रंगमंचीयता गतिशीलता महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही कई महत्वपूर्ण निर्देशकों ने भी अपनी कल्पना से नाटकों को समृद्ध किया इनमें प्रमुख है– इब्राहिम अल्काजी, श्यामानंद जालान, ब.व.कारंत, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर, सत्यव्रत सिन्हा, आदि।

(३) नुक्कड़ नाटक

हिंदी नाट्य परंपरा के विकास में एक धारा नुक्कड़ नाटकों की भी है। नुक्कड़ नाटकों ने जीवन की समस्याओं को रंगमंचीय तामझाम के बिना ही सामने रखने की कोशिश की है। यह कुल मिलाकर जनता एवं रंगकर्मी के बीच संवाद है, और यह आश्वासन देता है कि रंगमंच को शास्त्रीय अड़चनों के बिना भी सामने रखा जा सकता है। हबीब तनवीर नुक्कड़ नाटकों के प्रतिनिधि हैं। समग्रतः हिंदी नाटक के क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर काल भारतेंदु काल के बाद सर्वाधिक सक्रियता का काल रहा है। इस दौर में कथ्य और शिल्प के स्तर पर तीव्र परिवर्तनों ने हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी। इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के दबाव के बावजूद यह परिवर्तन हिंदी नाटक के विकास के प्रति आश्वस्त करते हैं।

आधुनिक युग के नाटक एवं नाटककार :

आधुनिक युग के नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास तथा उपेन्द्रनाथ अश्क अधिक प्रसिद्ध हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की है। इनके नाटक मुस्लिमकालीन भारत के इतिहास से सम्बन्धित हैं तथा उनमें समकालीन समस्याओं का समाधान ढूंढने का सफल प्रयास किया गया है। रक्षा-बन्धन, विषपान, आहुति, प्रतिशोध, प्रकाश स्तम्भ आदि आपके ऐतिहासिक नाटक हैं। प्रेमी जी ने 'पाताल विजय' नाम से एक पौराणिक नाटक भी लिखा है। इन्होंने एक दर्जन से भी अधिक नाटक लिखे हैं, ये सभी अभिनय के लिए उपयुक्त हैं और परिस्थिति एवं पाझानुकूल भाषा है। इतिहास और कल्पना का समन्वय आपके

नाटकों की विशेषता है। प्रेमी जी के नाटक ओजपूर्ण, चरित्र-चित्रण में गम्भीर तथा विचार नवीन हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र के अधिकांश नाटक समाज सम्बन्धी एवं समस्या मूलक हैं। समस्या मूलक नाटकों में मिश्र जी को अधिक सफलता प्राप्त हुई। उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण है। इन्होंने समस्या के चित्रण में पात्रों की मनःस्थिति तथा अन्तर्द्वन्दों का भी यथार्थ चित्रण किया है। इनके अधिकांश नाटक तीन अंकों के हैं, संवाद छोटे हैं तथा नाटकों में पर्याप्त गतिशीलता है। इन्होंने दो-एक ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र जी के नाटकों में अशोक, संन्यासी, सिंदूर की होली, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति रहस्य, आधी रात, वत्सराज, दशाश्वमेध आदि मुख्य हैं। इनमें अशोक, वत्सराज, दशाश्वमेध ऐतिहासिक नाटक हैं।

वहीं उदयशंकर भट्ट ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक लिखे हैं। ऐतिहासिक नाटकों में 'विक्रमादित्य', 'सिंधुपतन', 'मुक्तिपथ' तथा 'शक-विजय' हैं। ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में भट्ट जी अधिक सफल नहीं कहे जा सकते। पौराणिक नाटकों में भट्ट जी अधिक सफल हैं। दोनों में कथानक महाभारत की कथा पर आधारित है। विश्वामित्र और राधा दोनों भाव नाट्य हैं। क्रांतिकारी, नया समाज और पार्वती नवीनतम अभिनय नाटक हैं। मेघदूत तथा विक्रमोर्वशी आदि कुछ रेडियो रूपक भी इन्होंने लिखे हैं।

आधुनिक कालीन नाटककारों में सेठ गोविन्ददास एक प्रमुख नाम है। उन्होंने बहुत सारे नाटक लिखे हैं। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याओं के नाटक लिखे हैं। एकांकी नाटकों के क्षेत्र में सेठ जी ने सौ से भी अधिक नाटक लिखे हैं। चरित्र-चित्रण तथा रंगमंच की दृष्टि से इनके नाटक श्रेष्ठ हैं। कथोपकथन भी स्वाभाविक हैं, परन्तु सेठ जी किसी उत्कृष्ट प्रभावोत्पादक नाटक की रचना नहीं कर पाये। इनके नाटकों में हर्ष, प्रकाश, सेवापथ, शशिगुप्त, बड़ा पापी कौन, आदि उल्लेखनीय हैं। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में सेठ गोविन्ददास जी ऐसी ही विभूति हैं, जिनके नाटकों में साहित्य में राजनीतिक और सामाजिक जीवन का जीता-जागता स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में उपेन्द्रनाथ अश्क के नाम उल्लेखनीय है। उपेन्द्रनाथ अश्क भी आधुनिक काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं। उन्होंने अपने नाटकों में समाज पर तीखे व्यंग्य किये हैं। अश्क जी के नाटकों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण यथार्थवादी ढंग से हुआ है। जय पराजय, पैंतरे, कैद और उड़ाके, छोटा बेटा, स्वर्ग की झलक और अंधी गली इन सभी नाटकों में समाज के ऊपर तीक्ष्ण व्यंग्य है। अश्क जी के सभी नाटक खेले जा चुके हैं तथा सफल सिद्ध हुए हैं। उपर्युक्त नाटककारों के अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा तथा चतुरसेन शास्त्री ने भी पर्याप्त संख्या में नाटक लिखे हैं। वर्मा जी का पूर्व की ओर ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त सफल नाटक है। इन्होंने ११ सामाजिक नाटक भी लिखे हैं जिनमें समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। श्री चतुरसेन शास्त्री के नाटकों में राजपूती संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। इनकी भाषा सशक्त एवं भावानुकूल है। इनके अतिरिक्त जगदीश चन्द्र माथुर पृथ्वीनाथ शर्मा, राजकुमार वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि नाटककारों की रचनाओं का हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में योगदान है।

९.७ सारांश

हिन्दी साहित्य में नाटक विधा का विकास सर्व प्रथम रामायण, महाभारत जैसी कथाओं से हुआ जिसका नाट्य प्रदर्शन मनोरंजन के उद्देश्य से किया जाता था। भारतेन्दुजी ने मौलिक व अनुदित नाटकों की रचना कर नाटक को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद ने नाटकों में सामान्य जन-जीवन में प्रचलित भाषा का प्रयोग किया। रंगमंचीय दृष्टि से इनके नाटक भारतीय परम्परा और सामाजिक प्रसंगों का अनुसरण करते है।

९.८ बोध प्रश्न

१. हिन्दी नाटक के विकास क्रम का उल्लेख कीजिए।

२. हिन्दी नाटक में जयशंकर प्रसाद के योगदान को विस्तार से लिखिए।

३. भारतेन्दु युगीन नाटकों की विशेषताएँ समझाते हुए प्रमुख नाटककार व उनके नाटकों का उल्लेख कीजिए।

४. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक व नाटककारों का उल्लेख कीजिए।

९.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम नाटक कौनसा है?
उत्तर - 'गाय कुमार रास'

२. हिन्दी साहित्य के नाटक विकास क्रम को कितने भागों में विभाजित किया गया है ?
उत्तर - चार

३. 'कल्याणी' नाटक के नाटककार है ?
उत्तर - जयशंकर प्रसाद

४. 'लैला मजनू' नाटक किस प्रकार का नाटक है?
उत्तर - रोमांचकारी नाटक

५. 'अन्धाकुआ' नाटक के लेखक है ?
उत्तर - डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल

९.१० संदर्भ ग्रंथ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - नगेन्द्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य - वाद, प्रवृत्तियाँ एवं विमर्श

❖❖❖❖

इकाई : १०

१०

हिंदी निबंध का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा :

१०.० इकाई का उद्देश्य

१०.१ प्रस्तावना

१०.२ हिंदी निबंध विधा का अर्थ और परिभाषा

१०.३ हिंदी निबंध विधा का विकास

    १०.३.१ भारतेन्दु युग

    १०.३.२ द्विवेदीयुग

    १०.३.३ शुक्ल युग

    १०.३.४ शुक्लोत्तर युग

१०.४ ललित निबंध

१०.५ सारांश

१० .६बोध प्रश्न

१० .७ लघूत्तरीय प्रश्न

१० .८ संदर्भ ग्रंथ

१०.० इकाई का उद्देश्य

हिंदी साहित्य का इतिहास में आधुनिक युग के समग्र अध्ययन के अंतर्गत निबंध विद्या का विकास विषय पर अध्ययन कर रहे हैं-इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी

निबंध का शाब्दिक अर्थ और परिभाषा का अध्ययन कर सकेंगे।

निबंध विद्या के आरंभ और विकास क्रम को जान सकेंगे।

विभिन्न निबंन्धकार उनके द्वारा लिखित निबंध की विशेषताओं से अवगत होंगे।

१०.१ प्रस्तावना

हिंदी निबंध विद्या का विकास आधुनिक युग में हुआ निबंध के विकास में पत्र पत्रिकाओं का माध्यम सर्वोपरि रहा तत्कालीन समय की सामाजिक ,राजकीय ,धार्मिक ,संस्कृति क्षेत्र में चल रही उथल-

munotes.in

पुथल का गहन विश्लेषण निबंध के माध्यम से भी हुआ। निबंध में भी कई प्रकारों का आरंम्भ हुआ जैसे ललित निबंध, व्यंग्य निबंध, वैचारिक निबंध आदि की विशेषताएं हर एक युग में भिन्न रही और शैली व भाषायी दृष्टि से उन्नत होती रही इसी विकास क्रम का अध्ययन हम इस इकाई के द्वारा करेंगे।

१०.२ हिंदी निबंध विधा का अर्थ और परिभाषा

निबंध गद्य साहित्य की अनुपम विधा मानी जाती है। निबंध का शाब्दिक अर्थ है बांधना लेकिन समय की बहती धारा में दीर्घ कालांतर पश्चात यह शब्द केवल साहित्य विधा के प्रयोग तक ही सीमित रह गया। निबंध आकार में लघु संगठित और समास शैली में लिखा जाता है। निबंध विधा का उद्भव आधुनिक युग में हुआ यह गद्य साहित्य की प्रमुख विधा मानी जाती है आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के मत से अब निबंध विधा के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है उन्होंने निबंध के महत्व को इस प्रकार शब्द बद्ध किया है- "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध तो गद्य की कसोटी है।"निबंध विधा मे व्यक्ति किसी विषय पर अपने वैयक्तिक विचार दृष्टिकोण स्वयं के तर्क और आपसी संवादो को प्रभावी ढंग से अपनी लेखन कुशलता से पाठक के मन को प्रभावित कर सकता है।

निबंध की परिभाषा:- निबंध साहित्य को कई भारतीय और पाश्चात्य साहित्यकारों ने शब्द बद्ध किया है। अंग्रेजी विद्वान डॉ. शो सैम्युअल जान्सन ने इस प्रकार निबंध को परिभाषित किया है "निबंध मस्तिष्क का के असंबद्ध विचारों का विस्फोटन है।"

मोंटेग्यू जिन्हें निबंधो का जनक माना जाता है उन्हेने निबंधो को विचारों उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण मानते हैं।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में लिखा गया है निबंध की आकृति सीमित और परिष्कृत होती है।

प्रमुख भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई निबंध की परिभाषा-

१) आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने निबंध की जो महत्ता दर्शाई है उसका विवरण हम दे चुके हैं इसके अतिरिक्त शुक्लजी कहते हैं-"आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध इसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात व्यक्तिगत विशेषता हो।

२) बाबू गुलाब राय :-

"निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता साथ ही आवश्यक संगति और सुसंबद्धता के साथ किया गया हो

३) डॉ. भागीरथ मिश्र:-

"निबंध वह गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी विषय पर स्वच्छंदता पूर्वक परंतु एक विशेष सौष्ठव,संहिति, संजीवता और व्यक्तिगत प्रकाशन के साथ भाव विचारों और अनुभव को व्यक्त करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि निबंध निबंधकार के विचारों की सुव्यवस्थित और सुगठित अभिव्यक्ति है विषय साहित्यकार के मनोविश्लेषण से तय होता है कोई भी विषय लेकर साहित्यकार निबंध रचना कर सकता है। आचार्यशुक्ल निबंध में विचार गांभीर्य एवं सामाजिकता को महत्वपूर्ण मानते हैं। डॉ. गुलाबरायजी निबंध में समग्र लक्षणिय तत्वों का समावेश आवश्यक मानते हैं। भागीरथ मिश्र जी निबंध में सजीवता के साथ विचारों और भावों की अभिव्यक्ति को आवश्यक समझते हैं। इन सभी परिभाषाओं से निबंध विधा का विवरण स्पष्ट हो जाता है।

१०.३ हिंदी निबंध विधा का विकास

आधुनिक युग में नवजागरण की चेतना के साथ हिंदी निबंध का विधा का आरंभ हुआ। इस युग में मानव की मानसिकता बदल रही थी तकनीकि क्षेत्र का प्रारंभ हो वह विकास की ओर अग्रसर था। मुद्रण यंत्र के आरंभ से साहित्यिक जगत को एक नई दिशा मिली। जीवन की वास्तविकता प्रत्येक क्षेत्र की संस्कृति सभ्यता से समाज का हर एक व्यक्ति भली-भांति परिचित हो सका। मानव की इसी चेतना से साहित्य में भी परिवर्तन हुआ साहित्य का आकार पहले ही अपरिसिमित होता है लेकिन समय के साथ साहित्य वृहताकार हो गया। गद्य के क्षेत्र में कई विधाओं का निर्माण हुआ जिसमें साहित्यकारों के साथ-साथ पाठकों की जिज्ञासा भी बढ़ी है और साहित्य प्रेमीयों को विविध प्रकार के साहित्य पढ़ने से साहित्य के प्रति उनका प्रेम प्रगाढ़ हो रहा है।

निबंध विधा का विकास भी इन्हीं सब वास्तविकताओं के कारण हुआ। निबंध विधा गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा मानी जाती है। साहित्य और अध्ययन क्षेत्र में पहली कक्षा से ही विद्यार्थी निबंध विधा से अवगत हो जाते है इसी से इस विधा की प्रशस्ति का अनुमान हम लगा सकते हैं। तत्कालीन साहित्यकारों और साहित्यलोचकों ने अध्ययन और चिंतन की सुलभता की दृष्टि से निबंध विधा को चार युगों में विभाजित किया है। निबंध विधा का संपूर्ण अध्ययन हम इस यूग के प्रदीर्ध अध्ययन द्वारा करेंगे।

१) भारतेंदु युग(सन्१८५७-१९००) हिंदी निबंध का अभ्युत्थान

२) द्विवेदी युग (सन्१९००-१९२०) हिंदी निबंध का परिमार्जन

३) शुक्ल युग(सन् १९२०-१९४०) हिंदी निबंध का उत्कर्ष

४) शुक्लोत्तर युग (सन् १९४०से अब तक) हिंदी निबंध का प्रसरण

१०.३.१ भारतेंदु यूग

भारतेंदु युग का उदय राष्ट्रीय जागरण और राजनीतिक चेतना का काल था। इस काल में संस्कृतिक चेतना का समग्र विकास ही साहित्यकारों का अभीष्ट था। कालानुरुप शिक्षा का प्रचार प्रसार भारतीय रूढ़ी - परंपराओं पर प्रहार करने के साथ-साथ देश में बढ़ रही पश्चिमी संस्कृति पर व्यंग्य करना भी इस काल की प्रमुख विशेषता रही। इन सभी सामाजिक दायित्व को पूर्ण करने का दायित्व निबंधकारों

ने निभाया। इस युग के निबंधों में विषयों की व्यापकता देखने को मिलती है। इस युग में कई साहित्यकार संम्पादक और लेखक हुए जिन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक विषयों सामाजिक आंदोलनों और अनेक प्रकार के विषयों की चर्चा निबंधों के माध्यम से की। यह युग निबंध का प्रारंभ काल होने के कारण भाषा और शैलीगत दृष्टि से एकरूपता नहीं थी इस क्षेत्र में वैयक्तिक प्रयोग के आधार पर ही निबंध लेखन होता रहा। इस काल में बहुत मात्रा में निबंध लिखे गए इस युग में निबंध विधा प्रमुख विधा बन गई।

भारतेन्दु युग में पत्रिकाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त हर क्षेत्र के स्थानीय वार्ता की जानकारी मिल जाती थी। भारतेंन्दु युग में विदेशी शासन के प्रति अधिक स्तर पर आंदोलन की शुरुआत नहीं हुई थी। इसलिए लेखको ने यदा-कदा अंग्रेजी शासन का गुणगान भी कर दिया है लेकिन देश हित की भावना हमेशा से ही साहित्यकारों की भूल भावना रही है और यह भावना तत्कालीन समय के निबंधों में भी दृष्टिगोचर होती है। जैसे - समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्र विकास की भावना, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश और कई विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गए। भारतेंदु यूग के लेखकों ने गंभीर विषयों को भी हास्य मय या एक व्यंग्य स्वरूप देते हुए निबंधों की रचना की उनकी यह शैली मनोविनोदी और चिकोटी भरी थी। कुछ निबंध के विषय लेखकों की विनोदवृत्ति को दर्शाती है। जैसे ऑख, नाक, भौं आदि वहीं कुछ निबंध मानव जीवन शैली को भी व्यक्त करते हैं जैसे बुढ़ापा धोखा आदि। इस युग के प्रमुख निबंधकार है भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन ,ज्वाला प्रसाद, तोताराम, अंन्विकादत्त व्यास, रामचरण गोस्वामी आदि।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र :-

भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी के प्रथम निबंधकार माने जाते है। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार भारतेन्दुजी ने कविता, नाटक के अतिरिक्त निबंध बहुत मात्रा में लिखे उनके द्वारा लिखित निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, आलोचनात्मक, व्यंग्य आत्मचरित, प्रकृति वर्णन, यात्रा वर्णन, धर्म, भाषा आदि विषयों पर निबंध लिखे। भारतेन्दुजी सर्वतोन्मुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार थे। उनके साहित्य में विषयों का विस्तृत अध्ययन और विविध विषयों पर विश्लेषण हम देख सकते है। उनके निबंधों में सामाजिक विषय में इतिहास, धर्म, संस्कृति की मूलभूत जानकारी हमें मिल जाती है जैसे "अंग्रेजों से हिंदुस्तानियों का जी क्यों नही मिलता" वहीं कुछ निबंध राष्ट्र भक्ति की भावना व्यक्त करते है। ' भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है', "लेवी प्राण लेवी", भावनात्मक निबंधों में 'सूर्योदय', 'समर्पण', 'ईश्वर बडा विलक्षण है' आदि निबंध आते है। पुरातत्व संबंधी निबंधों में 'रामायण का समय', 'काशी', मणिकर्णिका' आदि निबंध प्रमुख है।

यात्रा – वर्णन पर लिखे गये निबंधों में इतिहास संबंधी निबंधों में प्रमुख है' 'काश्मीर- कुसुम', 'बादशाह- दर्पण', 'अकबर और औरंगजेब', 'उदय- पुरोदय' आदि। जीवन चरित्र संबंधी प्रमुख निबंध है 'सूरदास जी का जीवन चरित्र', 'बीबी फातिमा', 'श्री जयराम शास्त्री का जीवन चरित्र' आदि इन निबंधों में भावुकता और कल्पना की प्रधानता है। कला संबंधी निबंधों में 'संगीत- सार', जातीय संगीत तथा'

हिंदी भाषा' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रकृति वर्णन से जुड़े हुए विभिन्न विषयों पर भारतेंदु जी ने निबंध लिखे हैं जैसे- 'बसंत', 'वर्षा' 'काल', 'लखनौ', 'हरिद्वार', 'ग्रीष्म ऋतु' आदि। भारतेंदुजी की अपनी विशिष्ट शैली प्रमुख रूप से हास्य व्यंग्य प्रधान थी। इस शैली में ' 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है', 'सच मत बोलो', उर्दु का स्थापा आदि निबंध प्रमुख है। 'विचार सभा का अधिवेशन', 'पांचवें पैगंबर', 'कानून ताजीरात शौहर', ज्ञात विवेकिनी सभा. अंग्रेजी स्रोत, 'कंकड़ स्रोत' जैसे निबंधों से भारतेंदुजी की राजनैतिक चेतना का असर निबंध पर दिखाई देता है।

इस प्रकार भारतेंदु जी के निबंधों के समग्र अध्ययन से उनके व्याख्यात्मक और विचारात्मक शैली का ज्ञान हमें होता है। इसी शैली के माध्यम से उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली की प्रधानता साहित्य में दर्शायी है। भाषायी दृष्टि से भारतेंदु जी के साहित्य का अध्ययन करें तो भाषागत दृष्टि से यथार्थवादी दृष्टिकोण उन्होंने अपनाया है। उन्होंने किसी एक भाषा का पूर्ण रूप से अनुसरण नहीं किया न अरबी- फारसी मिश्रित हिंदी का पक्ष लिया, न संस्कृत निष्ठ हिंदी का उनका उद्देश्य था। सरल- सजीव और जनप्रिय भाषा का प्रयोग जो पाठक को सीधे समझ आ सके उन्होंने संस्कृत निष्ठ भाषा व तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है लेकिन भाषा के सहज रूप में क्लिष्ठता कहीं भी नजर नहीं आती। तत्कालीन समय में कानून की भाषा उर्दु निष्ठ थी इसीलिए राजनीतिक चेतना संबंधी निबंधों में उन्होंने उर्दु निष्ठ भाषा का प्रयोग किया है।

बाल कृष्ण भट्ट :-

बाल कृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के निबंध विधा के प्रमुख लेखक माने जाते हैं। इन्होंने १००० के आस-पास निबंध लिखे हैं। ये स्वतंत्रता प्रेमी और प्रगतिशील विचारों के निबंधकार है। इन्होंने समाज, सहित्य, धर्म, संस्कति, रीति-नीति, प्रथा, भावना, कला, कल्पना आदि सभी विषयों से निबंध विधा को सँवारा है इसीलिए इन्हें विचार प्रधान निबंधकार माना जाता है। हास्य विनोद विषय पर भी इनकी लेखनी ने अभूतपूर्व कार्य किया इनके द्वारा किया गया विषय का गंभीर अध्ययन और विचार- प्रधानता के कारण निबंधों में सभी क्षेत्रों का चयन हो सका । विचारात्मक निबंधों के अतिरिक्त भावात्मक, कथात्मक और वर्णनात्मक निबंध भी लिखे हैं- भावना प्रधान निबंधों में ' चंद्रोदय' निबंध प्रख्यात है। वर्णनात्मक निबंधों में 'संसार- महा नाट्यशाला' और ' प्रेम के बाग का सैलानी' निबंध प्रमुख माने जाते हैं। कथात्मक निबंधों में ' एक अनोखा स्वप्न' निबंध मिलता है। व्यवहारिक जीवन से संबंधित निबंधों में 'माता का स्नेह', 'आँसू', `लक्ष्मी', 'कालचक्र का चक्कर' आदि निबंध आते हैं।

साहित्य विषयों से संबंधित निबंधों में 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है', शब्द की आकर्षण शक्ति प्रतिभा,' माधुर्य', साहित्य का सभ्यता से घनिष्ठ संबंध आदि है।

हृदय की वृत्तियों या मनो विकारों को भी विषय गत दृष्टि से निबंधों में सम्मिलित कर - ' आशा, आत्म गौरव, 'रुचि', 'भिक्षावृत्ति', 'विश्वास', 'बोध' आदि निबंध लिखे हैं। वहीं सामान्य विषयों पर भी लिखे निबंधों में 'आंख', 'कान', 'नाक', 'बातचीत' आदि निबंध प्रमुख है। हास्य व्यंग्य विनोद परक निबंध में

'इंग्लिश पढ़े सौ बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग' जैसे निबंध प्रमुख है। सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से लिखे गए निबंधों में 'बाल विवाह', 'स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य' आदि निबंध है। बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में प्रायः बोलचाल में प्रयोग में लायी आने वाली हिंदी का प्रयोग हुआ है। वैसे बालकृष्ण जी संस्कृत भाषा के प्रगाढ पंडित थे। उनके निबंधों में हिंदी, संस्कृत के अलावा अंग्रेजी और उर्दु भाषा के शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है। भट्ट जी की भाषा में अलंकार का प्रमुख आकर्षण मिलता है और इनके निबंधों के शीर्षक प्रायः कहावत और मुहावरों से मिलते जुलते हमें दिखाई देते हैं। उनका शब्द चयन बहुत रोचक पूर्ण है. निबंध रचना के माध्यम से नये भाषा रचना का प्रारूप तैयार करने की कोशिश भट्ट जी ने की है।

प्रताप नारायण मिश्र

भारतेंदु युग के बालकृष्ण भट्ट के पश्चात प्रमुख निबंधकार प्रताप नारायण मिश्र माने जाते हैं। आपने निबंध को माध्यम बनाकर सामाजिक जनजागृति से जोड़ने का कार्य किया । इन्हें आत्मव्यंजक निबंधकार माना जाता है इसमें गंभीरता और चुलबुले पन इस प्रकार दो भावों का समावेश मिलता है।

'धोखा', 'वृद्ध', 'खुशामद', 'दांत',' बालक' आदि में चुलबुलापन है वही 'आप', 'बात', 'मां', 'नारी' आदि गंभीर श्रेणी के निबंध है।

इनके निबंधों में तीखी व्यंग्य वृत्ति का उल्लेख स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने भी किया है। इनकी भाषा में व्यंग्यपूर्ण पूर्ण वक्रता के साथ लोकोक्तियां मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। ये निबंधकार होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे इसीलिए सामान्य विषयों से साक्षात्कार कर उन्हें भी निबंधों से जोड़कर रोचक और वैचारिक बना दिया। 'ईश्वर की मूर्ति' निबंध नास्तिक निबंध भाव का निबंध है 'लोक लज्जा' भावनात्मक और 'धरती माता' वर्णनात्मक श्रेणी के निबंधों में उल्लेखनीय है।

बालमुकुंद गुप्त:-

ये भी प्रताप नारायण मिश्र की तरह पत्रकार थे। इन्होंने 'बंगवासी' और 'भारत मित्र' नामक हिंदी पत्रों का संपादन कार्य किया । इनके द्वारा लिखित प्रसिद्ध निबंध है- शिव शंभू का चिट्ठा और 'खत'। भारतेंदु की तरह ही गुप्ताजी सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र से जुड़े निबंधकार कहलाये। देश भक्ति और हिंदी भाषा के प्रति प्रेम इनके निबंधों में परिलक्षित होता है। इन्होंने अपने निबंधों में विचारों और भावों की व्यापकता दर्शायी है। 'आत्माराम' इनका आलोचनात्मक निबंध है।

धर्म, सभ्यता, समाजान्तर्गत विषयों के अलावा देश की राजनीतिक आंदोलनों पर भी इनकी लेखनी चली जैसे 'नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा', 'भारतीय प्रजा के दुख की दुहाई' और 'ठीठाई पर गवर्नमेंट की कडाई' आदि।

इनके निबंध सीधी सरल जनमानस की भाषा में लिखे गए हैं जो मुहावरों और कहावतों से युक्त है व विचारों की स्पष्टता सहज ही लक्षित हो जाती है।

munotes.in

भारतेंदु युग में इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख निबंधकार है ज्वाला प्रसाद, तोताराम, राधाचरण गोस्वामी, अंबिकादत्त व्यास आदि।

१०.३.२ द्विवेदी युग :- (१९०० से १९२०)

द्विवेदी युग हिंदी निबंध विधा का द्वितीय युग माना जाता है। इसका आरंभ 'नागरी प्रचारिणी सभा और 'सरस्वती के प्रकाशन से माना जाता है। इस युग की समस्त साहित्यिक गतिविधियों का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को दिया जाता है इन्होंने सर्वप्रथम भाषा को परिष्कृत संस्कारित किया। साथ ही भाषा को व्याकरण सम्मत बनाने पर अधिक जोर दिया इनमें विराम चिन्हों का उपयोग आवश्यक माना । इस युग में राष्ट्रीय चेतना प्रमुख विषय बना क्योंकि यह योग राष्ट्रप्रेम, सामाजिक ऐक्य, सांस्कृतिक - नव चेतना, ऐतिहासिक गौरव का काल था। इसीलिए निबंध के विषय भी विविध रंगों से सजे थे उसमें भाषायी शुद्धता का विशेष ध्यान रखा गया था। द्विवेदी जी नैतिकता प्रिय व्यक्ति थे इसीलिए इस युग में नैतिक निबंध अधिक लिखे गये । निबंधों में बौद्धिकता और साहित्यिकता अधिक आ गई। द्विवेदीजी ने साहित्य में ज्ञान का परिमार्जन आवश्यक माना परिणाम स्वरूप साहित्यकारों का ध्यान साहित्य को संचित संहिता बनाने की ओर अधिक रहा यही कारण है कि इस काल में अनुवाद लेखन की परंपरा भी प्रारंभ हुई। इस युग के साहित्यकारों ने भाषा संयोजन के साथ राष्ट्रीय परिस्थितियों और संपूर्ण युग का उत्तरदायित्व गंभीरता और वैचारिक दृष्टि से अपनाकर निबंधों में हास्य व्यंग्य, रस- राग आदि भावों को नगण्य सा कर दिया इस युग के प्रमुख निबंधकार है- महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, पद्मसिंह शर्मा, मिश्र बंधु माधव प्रसाद मिश्र, चक्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्ण सिंह आदि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी :-

इन्होंने सरस्वती पत्रिका का संपादन किया। हिंदी को परिनिष्ठित और व्याकरण सम्मत बनाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे। अनेक शब्द अन्य भाषा से ग्रहण कर हिंदी को व्यापक बनाया ये शब्द इन्होंने मराठी, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दु भाषा से लिये। इनके निबंधों की प्रमुख विशेषता भाषा को सजाना, संवारना, विविध विषयों पर अपने विचार व्यक्त करना आदि है इन्होंने ३०० से अधिक निबंध लिखें। इनके प्रमुख निबंध संकलन है- 'साहित्य सीकर', 'साहित्य संदर्भ', 'विचार विमर्श' आदि। सन १९०३ में इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका संपादन का दायित्व स्वीकार किया और इस पत्रिका के माध्यम से साहित्य को नयी दिशा प्रदान की। अंग्रेजी के निबंधों का हिंदी में अनुवाद किया। इनके द्वारा लिखित समीक्षात्मक निबंधों में 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता' वर्णनात्मक निबंधों में 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', 'अद्भुत', 'इंद्रजाल' प्रमुख है। मौलिक चिंतन पर आधारित निबंध है - 'दण्डदेव का आत्म निवेदन', 'कालिदास का भारत', 'गोपियों की भगवद् भक्ति' आदि। इस प्रकार इनके संपूर्ण निबंधों में भाषा शुद्ध और सुंदर रूप में प्रस्तुत हुई है परंतु वैचारिक दृष्टि से निबंध बाधित हुए हैं।

बाबू श्यामसुंदर दास:-

आलोचक होने के साथ ही उच्च कोटि के निबंधकार भी है इनके निबंध के विषय प्रमुख रूप से साहित्यिक और सांस्कृतिक रहे हैं इनके द्वारा लिखित प्रमुख निबंध है- भारतीय साहित्य की विशेषताएँ, 'तुलसीदास', 'सूरदास', 'हमारी भाषा' आदि । ये एक अच्छे वक्ता थे इसी कारण इनके निबंधों में विचार संचय की प्रवृत्ति अधिक है और अनुभूति कम उनके निबंधों के पठन से व्याख्यान का भास हमें होता है । इन्होंने विषय विवेचन से अधिक विषयों की व्यापकता पर विचार किया । श्यामसुंदर दास जी ने भी हिंदी भाषा विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया इसी संबंध में ' साहित्य लोचन' नामक पुस्तक लिखी और साथ ही हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कर हिंदी वैज्ञानिक कोश तथा शब्द सागर का संपादन किया। कई प्राचीन कवियों के ग्रंथों का संपादन किया नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इनकी भाषा तत्सम शब्द के प्रयोग के साथ संस्कृत निष्ठ भाषा थी।

माधव प्रसाद मिश्र:-

इनके निबंधों में भारत की प्राचीन संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के प्रति गहरी आस्था प्रदर्शित होती है। इन्होंने शास्त्रीय निरूपण पर अधिक बल न देते हुए अनुभव और व्यवहार के आधार पर निबंध लिखें। गृहस्थिक और मनोविकार की समस्या भी इनके निबंध के विषय रहे।

माधव मिश्र निबंध माला नाम से निबंध संग्रह प्रकाशित है साथ ही चिंतन परक निबंधों में - 'सब मिट्टी हो गया' निबंध प्रमुख है। भावपूर्ण निबंधों में 'होली', 'रामलीला', 'व्यास पूजा', 'श्री पंचमी' आदि निबंध प्रमुख है। शोध और अनुसंधान पर आधारित निबंध है - 'बेबर का भ्रम'

सरदार पूर्ण सिंह:-

इनके जीवन का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था लेकिन साहित्य में भावात्मक और मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़े। और केवल छ: निबंधों के बल पर श्रेष्ठ निबंधकार माने गये। इनके निबंधों में विचारों की व्यंजना, प्रगतिशीलता और रूपात्मक विकास की अवधारणा पर जोर दिया गया है। ललित निबंध का प्रारंभ उन्होंने ही किया है इस श्रेणी में तीन प्रमुख निबंध है-'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता', अन्य निबंध है - 'कन्यादान', 'पवित्रता' और 'अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट हिटमैन' इस प्रकार अपनी सहज और सरल शैली का अंकन निबंधों में कर सरदार जी थोड़े निबंधों से ही इस क्षेत्र में अविस्मरणीय हो गये।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी:-

भाषा के प्रकांड पंडित होने के कारण इनके द्वारा लिखित निबंध बौद्धिक सरसता गंभीरता व प्राचीनता में नाविन्य का समन्वय जैसी अद्भुत कला के साथ प्रस्तुत हुए हैं. । इनके निबंधों में अर्थ वक्रता, व्यंग्यात्मकता, हास्य भावना सर्वत्र देखी जा सकती है। 'मोरसि मोहिं कुष्ठाव', 'कछुआ धर्म' और 'संगति' प्रमुख निबंध है जो साहित्यिक गुणात्मक दृष्टि से अतुलनीय है। इनके निबंधों की भाषा सहज- सरल है। केवल 'प्रसंग वश' ही पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

पद्म सिंह शर्मा :-

पद्म पराग और प्रबंध मंजरी नाम से इनके दो निबंध संग्रह प्रकाशित है। किसी सामान्य विषय पर भाषायी चमत्कार द्वारा इनके निबंध आकर्षक बन पड़े हैं उर्दु, फारसी, अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग के साथ मुहावरे, कहावतों का भी प्रयोग किया है। इनके द्वारा लिखित आलोचना भी सरस भाषा के कारण कहानी और उपन्यास की तरह सुगम बन गई है।

इस प्रकार द्विवेदी युग में विषय, साहित्य और भाषा के आधार पर निबंध विधा का यथेष्ट विकास हुआ। इस युग के निबंध साहित्यार्जन और ज्ञानार्जन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अन्य निबंधकार है- यशोधन, आश्वौरी, गोविंदा नारायण मिश्र, प्रेमचंद आदि।

१०.३.३ शुक्ल युग : - (१९२० ई से १९४० ई)

इस युग को निबंध विधा का विकास काल माना जाता है। द्विवेदी युग में निबंधों के विषय और भाषा को प्रखर और परिष्कृत करने का कार्य पूरी गहराई के साथ हुआ लेकिन विषयों के विश्लेषण का कार्य नहीं हुआ था। शुक्ल युग में गद्य विधाओं में सृजनात्मक प्रयोग आरंभ हुए। शुक्लजी ने कठिन से कठिन विषयों पर निबंध लिखें और इन निबंधों की भाषा, विचार और भावों को बहुत ही प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया। यह छायावादी युग होने के कारण कल्पनाशीलता भाषा की सरसता, भावों की प्रवणता आदि गुणों से गद्य साहित्य सजा- संवरा इसी कारण इस युग के निबंध सहज- सरल और अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट है। स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बज जाने के कारण मानवीय दृष्टिकोण को सर्वोन्मुखी रख देश प्रेम और राष्ट्रभक्ति की भावना गद्य साहित्य पर थी। शुक्ल युग के प्रमुख निबंधकार है:- रामचंद्र शुक्ला, गुलाब राय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :-

हिंदी साहित्य में आलोचक के रूप में शीर्ष स्थान पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल का नाम है। निबंध साहित्य के विकास में आचार्य शुक्ल का अग्रणीय स्थान है। उनके अनुसार भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंध विधा के माध्यम से ही संभव है। हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का निबंध के प्रति दृष्टिकोण की तुलना अंग्रेजी साहित्य के निबंध लेखक बेकन से की जाती है। इन्होंने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखें जिन्हें चिंतामणि भाग-१,भाग-२ ,भाग-३ नामक निबंध संग्रह के माध्यम से प्रकाशित किया। चिंतामणि भाग-१ में मानव व्यवहार से संबंधित विषयों का चयन कर उसमें तत्व चिंतन और वैज्ञानिकता का आधार लेकर निबंध विधा को सर्वोपरि रूप दिया गया है। इन निबंधों में उत्साह, 'करुणा', 'ईर्ष्या', 'घृणा', 'क्रोध', 'लज्जा', और 'ग्लानी-भाव' और 'मनोविकार', 'श्रद्धा', 'भक्ति', 'लोभ', 'प्रीति' आदि शामिल है। साहित्यिक अवधारणाओं के आधार पर भी शुक्ला जी ने छह निबंध लिखें इनमें प्रमुख है:- 'कविता क्या है', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य', 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्य में अभिव्यंजनावाद'। साहित्यिक समीक्षा विषय पर तीन प्रमुख निबंध शुक्ल जी ने लिखे हैं जिनमें- 'भारतेंदु हरिश्चंद्र', 'तुलसी का भक्ति मार्ग',

munotes.in

'मानस की धर्मभूमि'। शुक्ल जी ने बड़े निबंध भी लिखे हैं इनमें प्रमुख रूप से 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' का नाम लिया जाता है। शुक्लजी के निबंधों में विचारों की क्रमबद्धता, विवेचन और व्यंग्य के माध्यम से निबंध अत्यंत प्रभावशाली बन पड़े हैं।

शुक्लजी के साहित्य की भाषा परिनिष्ठित खड़ी बोली है। देशी और विदेशी भाषाओं के शब्द भी प्रसंगानुरूप जोड़ दिए हैं। शब्द और अर्थ का पारस्परिक सामंजस्य शुक्लजी के काव्य की विशेषता है। अपने निबंध को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग व्यापक रूप से किया गया है। इस प्रकार शुक्लजी के निबंधों का समग्र अध्ययन उनके लेखन की सृजनात्मक, सौंदर्य परक, विचारात्मक और आलोचनात्मक स्तर की पराकाष्ठा को दर्शाता है।

बाबू गुलाब राय:-

गुलाब राय इस युग के प्रमुख निबंधकार है इनके अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित है इनके निबंध वैचारिक, मनोविश्लेषणात्मक, भावात्मक और ललित निबंध श्रेणी में हम विभाजित कर सकते हैं। गंभीर चिंतन के साथ व्यंग्य विनोद पूर्ण शैली इनके निबंधों की विशेषता है फिर निराशा क्यों और 'मेरी असफलताएं' इसी श्रेणी के निबंधों में आने वाले निबंध संग्रह है। 'मन की बातें' निबंध संग्रह मनोविश्लेषणात्मक विषय पर लिखा गया है। ठलुआ क्लब निबंध संग्रह ललित निबंध में आता है। गुलाब राय जी विषय से अधिक शैली को प्रमुख मानते हैं उनके निबंधों की भाषा स्वच्छंद और सरल सामान्य है लोकोक्तियां और मुहावरों का खुलकर प्रयोग किया है।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी:-

बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी ने निबंधों के अतिरिक्त नाटक, कहानी, कविता आदि साहित्यिक लेखन कार्य किया वे एक अच्छे पत्रकार, वक्ता और राजनीतिक कार्यकर्ता थे। देश की आजादी की लड़ाई में चतुर्वेदी जी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी रहे उनका समग्र जीवन कष्टमय रहा।

राष्ट्रीयता की भावना रग रग में भरी होने के कारण इनके निबंध भावना प्रधान बन पड़े हैं उनका ध्येय था घटनाओं और तथ्यों को रागात्मक चेतना से भर कर पाठक को उस कर्म की ओर अग्रसर करना। रागात्मक प्रवृत्ति के कारण उनके लयगद्य और प्रवाह युक्त बन गए हैं। साहित्य देवता निबंध संग्रह उनके भावनात्मक स्वरूप को व्यक्त करता है। साथ ही इस निबंध संग्रह में ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों का भी समावेश हुआ है। चतुर्वेदी जी की भाषा अलंकृत और लयबद्ध है। उनकी भाषा में कथन की लाक्षणिकता प्रवाह और संवेदनशीलता का अद्भुत समन्वय मिलता है।

राहुल सांकृत्यायन:-

राहुल सांकृत्यायन पर्यटक और यात्रा वृतांत के लिए जाने जाते हैं। ये भाषा के विद्वान और पुरातत्व वेत्ता थे ' पुरातत्व निबंधावली में इस विषय पर सभी निबंध लिखे गए हैं इनके निबंधों में यह विविध नए विषयों का समावेश करने में विश्वास करते थे। साहित्य संबंधी निबंधों में 'मातृ भाषाओं का प्रश्न', 'प्रगतिशील लेखक', 'हमारा साहित्य', 'भोजपुरी' आदि निबंध प्रमुख है इन निबंधों में भाषा

विषय को लेकर अधिक विस्तृत ज्ञान प्रदर्शित होता है। मानव जीवन और प्रकृति पर लिखे गए निबंध है- 'गली', 'चौराहा', 'सड़क', 'भीड़', 'शोरगुल', 'वीरान', 'लता', 'कुंज', 'उद्यान', 'सागर', 'सरिता', 'पर्वत', 'मरूभूमि', 'घाटी', 'टोकरी' आदि प्रमुख है। राहुल जी की निबंध की भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है अंग्रेजी और उर्दु के शब्दों का प्रयोग उन्होंने खुलकर किया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला:-

निराला जी महा कवि के रूप में विख्यात है लेकिन गद्य साहित्य में भी इनका अमूल्य योगदान है। इनके प्रमुख निबंध संग्रह है- 'प्रबंध प्रतिमा', 'चयन', 'चाबुक', 'प्रबंध पद्म' आदि निराला जी के जीवन का प्रभाव उनके निबंधों पर भी पड़ा उन्होंने आत्माभिव्यक्ति परक निबंध लिखें।

जो कल्पना और भावुकता से कोसों दूर थे। उनकी गद्य शैली यथार्थवादी दृष्टिकोण की थी और भाषा छोटे-छोटे वाक्यों से सजी हुई है साथ ही ग्रामीण भागों में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों का बखूबी प्रयोग निराला जी ने किया है।

शुक्लोत्तर युग:-

इसे विस्तरण युग भी कहा जाता है इसमें समावेशित साहित्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का साहित्य है। इस युग तक आते-आते निबंध विधा पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस युग में निबंध विधा में अनेक प्रवृत्तियों का समावेश हुआ। आधुनिक ललित निबंध इस कार्य में अधिक प्रचलित हुए और इसके विकास क्रम में हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेर नाथ राय, विद्या निवास मिश्रा का नाम अधिक प्रचलित है

१०.४ ललित निबंध

ललित शब्द से तात्पर्य है लालित्य अर्थात सरसता। निबंधकार जब अपने भावों विचारों से सरस, अनुभूति परक और रोचकता युक्त निबंध लिखता है वह निबंध ललित निबंध की श्रेणी में आते हैं। इन निबंधों की भाषा सहज व सरल होती है और विषय में कल्पनाशीलता का समावेश अधिक होता है इसी कारणवश पाठक उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य रचना, दीर्घ विशेषण से परे होता है इन निबंधों में लेखक के व्यक्तित्व की छाप होती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी:-

ललित निबंधों में द्विवेदी जी का स्थान प्रमुख है ये अध्ययन शील व्यक्तित्व के धनी थे संस्कृत भाषा के साथ पालि, अपभ्रंश भाषा का ज्ञान भी इन्हें था। इन्होंने अपनी रचना पर विचारों का बोझ नहीं पड़ने दिया बल्कि विशिष्ट रचना प्रणाली द्वारा व्यक्ति परक निबंधों का एक स्वरूप निश्चित किया और संस्कृति व संवेदना का व्यापक परिवेश रचा क्योंकि ललित निबंधों का आधार ही सौंदर्य होता है इनके प्रमुख निबंध संग्रह में 'अशोक के फूल', 'कल्पकता', 'विचार और वितर्क, 'विचार प्रवाह', 'कुब्ज और आलोक', 'पर्व' प्रमुख है। द्विवेदी जी की भाषा तत्सम शब्दों के बहुल मात्रा में प्रयोग के साथ उर्दु फारसी और अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग खुलकर किया है वही शैली गत दृष्टि से विचार, आलोचना और भावों की प्रधानता है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र:-

मिश्र जी का नाम ललित निबंध कारों में प्रमुखता से लिया जाता है. इन्होंने ललित निबंध को सांस्कृतिक भाव भूमि प्रदान की इस कारण निबंधों में सौंदर्य बोध को स्थान मिला इन्होंने भावनात्मक शैली प्रधान निबंध लिखें साथ ही इनके निबंधों में सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक बांधिलकी देखने को मिलती है जो पाठक को आकर्षित करने में कामयाब है। इनके द्वारा लिखित ललित निबंध संग्रह है :-' छितवन की छाह', 'कदम की फूली डाह', 'तुम चंदन हम पानी', 'मैंने सील पहुंचाई', 'आंगन का पंछी' और 'बंजारा मन', 'कटीले तारों के आर पार', 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', आदि मिश्र जी के निबंधों की भाषा संस्कृत निष्ठ होने के कारण तत्सम शब्दों की अधिकता है उर्दु, । फारसी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने किया है।

कुबेर नाथ राय:-

राय जी साठोत्तर युग के श्रेष्ठ ललित निबंधकार है. इनके निबंध स्वाभाविकता प्रधान्य है जो कहानी, उपन्यास और कविता की भांति आकर्षक है जो मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं इनके अनुसार धर्म उतना ही आवश्यक है जितना कि राज्य के लिए, शासक और संविधान। इनका पहला निबंध संग्रह ' प्रिया नीलकंठी है जो ईसा मसीह के जीवन पर आधारित है वही 'रस आखेटक' निबंध संग्रह की सभी रचनाएं लालित्य बोध से जुड़ी हुई है। इनके निबंधों में ग्रामीण संस्कृति का चित्रण हुआ है साथ ही ग्रामीण भाग का मनोरम प्रकृति चित्रण भी राय जी ने किया है. कुल मिलाकर इनके निबंधों में मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है. रायजी के निबंधों में भाषा का गांभीर्य नजर आता है. अलंकार शैली के लालित्य के साथ लाक्षणिकता भी है भाषा सरस व विषयानुकूल चयन हुई है।

शुक्लोत्तर युग में ललित निबंधों की बहुलता होने के साथ-साथ अन्य प्रकार के निबंध भी लिखे गए हैं. इनमें प्रमुख है वैचारिक निबंध और व्यंग्य निबंध परंतु प्रसिद्धि और रोचकता ललित निबंधों की ही रही।

१०.५ सारांश

हिंदी साहित्य में निबंध विधा का विकास आधुनिक युग में हुआ। आ. रामचंद्र शुक्ल प्रमुख निबंधकार माने जाते हैं और उन्हीं के नाम के आधार पर निबंधों के विकास को तीन युगों में विभाजित किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से निबंध विधा का समग्र अध्ययन हमने किया है। भारतेंदु युग में समाज सुधार और देश प्रेम की भावना प्रबल थी। द्विवेदी युग में सांस्कृतिक नवजागरण, शुक्ल युग में चिंतन और मानवतावादी रूप प्रखर हुआ और शुक्लोत्तर युग में निबंध का विस्तार हुआ जैसे ललित निबंध, वैचारिक निबंध, व्यंग्य निबंध।

munotes.in

१०.६ बोध प्रश्न

१. निबंध का अर्थ और परिभाषा स्पष्ट करते हुए निबंध के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

२. हिंदी में निबंध विधा का विकास कैसे हुआ? स्पष्ट कीजिए।

३. आ. रामचंद्र शुक्ल का निबंध विधा में महत्वपूर्ण योगदान है विस्तार पूर्वक समझाइए।

४. भारतेंदू हरिश्चंद्र को निबंध विधा का प्रणैता माना जाता है विवरणात्मक उत्तर दीजिए

५. द्विवेदी युग में निबंध परिनिष्ठित भाषा और स्वरूप के साथ विकसित हुए उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

१०.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. निबंध विधा के प्रथम काल को कहा गया है?
उत्तर - भारतेंदु युग

२. ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में निबंध की आकृति कैसे बताई गई है?
उत्तर - सीमित और परिष्कृत

३. हिंदी विधा का आरंभ कब हुआ?
उत्तर - आधुनिक युग में

४. 'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' नाटक किसने लिखा है?
उत्तर - भारतेंदु हरिश्चंद्र

५. ललित निबंध कौन से युग में लिखे गए हैं?
उत्तर - शुक्लोत्तर युग

६. कुबेर नाथ राय निबंध विद्या के कौन से युग के लेखक है?
उत्तर - शुक्लोत्तर युग

७. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कौन सी पत्रिका का संपादन किया?
उत्तर - सरस्वती

१०.८ संदर्भ ग्रंथ

१. साहित्य विधाओं की प्रकृति - लेखक देवीशंकर अवस्थी

२. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

३. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ लक्ष्मी सागर

४. श्रेष्ठ निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ला संपादक रामचंद्र तिवारी

❖❖❖❖

इकाई : ४

११

यात्रा वृत्तांत, डायरी, पत्र

इकाई की रूपरेखा :

११.० इकाई का उद्देश्य
११.२ प्रस्तावना
११.२ हिन्दी साहित्य की विद्याएं
    ११.२.१ यात्रा वृत्तान्त
    ११.२.२ डायरी
    ११.२.३ पत्र
११.३ सारांश
११.४ बोध प्रश्न्
११.५ लघूत्तरीय प्रश्न
११.६ संदर्भ ग्रंथ

१. इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा ।

"हिंदी साहित्य का इतिहास"के संदर्भ में विभिन्न विधाओं से परिचय प्राप्त हो सकेगा !

रचनात्मक लेखन के विभिन्न तरीकों को जान पाऐंगे ।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत यात्रा -वृत्तांत, डायरी पत्रलेखन के इतिहास लेखक और विधाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

प्रस्तुत मुद्दों की प्रश्नोत्तरी तैयार कर पाऐंगे ।

गद्य की विविध विधाओ में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

साहित्य की गद्य विधाओ में मिलने वाली समानता और विषमता को समझ सकेंगे।

२. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के उद्भव काल से ही साहित्यिक माध्यम के रूप में पद्य भाषा का प्रचलन रहा है। गद्य-लेखन का कोई सुनिश्चित क्रम प्राचीन साहित्य मे नही उपलब्ध होता ।

स्वतंत्रता के पश्चात लेखकों ने विचार और रचना के क्षेत्र मे नए मूल्यों की खोज की अपने परिवेश की सच्चाइयों को व्यक्त करने के लिए नए-नए माध्यम अपनाए । आधुनिक युग में जिस प्रकार कविता के

क्षेत्र में सानेट काव्य नाटक, मुक्तछंदक आदि का विकास पाश्चात्य प्रभाववश हुआ । उसी प्रकार गद्य में आत्मकथा, यात्रा वृत्तांत रिपोतोज, डायरी ललित निबन्ध, संस्मरण और व्यांग विधा का जन्म हुआ । इन समस्त विद्याओं के पीछे कुछ समकालीन परिस्थितियाँ थीं । द्वितीय विश्वयुद्ध तथा स्वतंत्रता के बाद के अप्रत्याशित संकट अनास्था और सुरक्षा के भाषा ने भी इस परिवर्तन की गति दी तथा गद्य कारों ने नये माध्यमों की खोज की । गद्य की इन नवीन कई क्रियाओं का जन्म पाश्चात्य चिंतन एवं प्रभाव के परिणामस्वरूप भी हुआ ।

हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम की पहली इकाई में आपने हिंदी गद्य के विकास की जानकारी प्राप्त की है। गद्य और पद्य के अंतर को जाना गया है ।साथ ही नाटक, उपन्यास ,कहानी आदि के विकास का भी परिचय प्राप्त किया है। नाटक, उपन्यास, कहानी आदि साहित्य की विधाएँ कहलाती हैं । इन विधाओं की रचना में कुछ -ना -कुछ अंतर अवश्य रहता है ।प्रत्येक विधा अलग प्रकार के लेखन की माँग करती है। दूसरे शब्दों में किसी एक विधा की लेखन शैली दुसरी विधा की लेखन शैली से भिन्न होती है। चूँकि नाटक, उपन्यास, कहानी आदि गद्य साहित्य कि विधाएँ है। अंत: इस इकाई मे हम साहित्य की चर्चा करते हुए साहित्य शब्द का विशिष्ट अर्थ जानेंगे तथा गद्य की विभिन्न विधाओं के संबंध मे जानकारी प्राप्त करेंगे और इसमे अंतर करते हुए हम यह भी जानेंगे की ज्ञान विज्ञान की प्रगती के फलस्वरूप इन विधाओं में किन नई बातों का समावेश हुआ है और कौन सी नयी विधाएँ अस्तित्व मे आई है ।

११.२ हिंदी साहित्य की विधाऐं

विधा का अर्थ है किस्म, वर्ग या श्रेणी अर्थात विविध प्रकार की रचनाओं को उनके गुण धर्मो के आधार पर अलग करना। साहित्य में विधा शब्द का प्रयोग एक वर्ग कारक के रूप मे किया जाता है । विधाये अस्पष्ट श्रेणीयॉ है यह कोई निश्चित सीमारेखा नही होती, इनकी पहचान समय के साथ कुछ मान्यताओं के आधार पर निर्मित की जाती है।

विधाएँ कई तरह के हैं, उदाहरण के लिए साहित्य की विधाऐं कविता की विधाऐं ।

हिंदी साहित्य की विधाऐं

विधाओं में सृजनात्मक तथा विचारात्मक साहित्य दीर्घ काल से निरंतर विद्वानो द्वारा लिखा जाता रहा है कुछ प्रमुख साहित्यिक विधाएँ इस प्रकार है ।

यात्रा वृत्तांत

- डायरी
- पत्र
- जीवनी
- आत्मकथा

- रेखाचित्र
- संस्मरण
- नाटक
- एकांकी
- उपन्यास
- कहानी
- आलोचना
- निबंध
- संस्मरण
- रेखाचित्र
- आत्मकथा, डायरी
- जीवनी
- रिपोर्ताज
- कविता इत्यादी

११.२.१ यात्रा वृत्तांत

साहित्य की 'मनोवृत्ती' घुमक्कड है। जब लेखक सौंदर्य बोध की दृष्टि से उल्हास भावनासे प्रेरित होकर यात्रा करता है।और अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानो का वर्णन करता है और यात्रा के अनुभवों का मुक्त भाव से अभिव्यक्ति करता है उसे यात्रा साहित्य यात्रा वृतांत कहते है।

आदिकाल

आदिकाल में भी यात्रा का अधिक महत्व था। लेखक एक देश से दूसरे देश में घूमा करते थे। और अपने अनुभव को घूम घूम कर लोगों को बताया करते थे। इन यात्राओं के माध्यम से लेखक एक दूसरे की संस्कृति से परिचित होते थे। शिक्षा व धर्म का प्रचार-प्रसार करते थे, अपने अनुभव को पुस्तक में सॅंजोते थे।

मुख्य यात्री थे- अलबरूनी इब्नबतूता,अमीर खुसरो हेनसांग, फाहियान आदि।

संस्कृत साहित्य में कालिदास और बाणभट्ट के साहित्य में भी आंशिक रूप से यात्रा वर्णन मिलता है। यात्रा साहित्य विविध शैलियों में लिखा जाता है। जो विविध रूपों में पाया जाता है।

कुछ यात्रा साहित्य ऐसे होते हैं जिनका उद्देश्य विभिन्न देशों या स्थानों का विस्तृत परिचय देना होता है।

१. राहुल सांकृत्यायन का हिमालय ,'परिचय किन्नर देशों में ,और
२. शिवनंदन सहाय का कैलाश दर्शन इसी प्रकार की यात्रा वृतांत है।

३. कुछ यात्रा साहित्य का उद्देश्य देश विदेश के व्यापक जीवन को उभारना होता है। इसमें
४. यशपाल का लोहे की दीवार के दोनों और
५. गोविंद दास का सुंदर दक्षिण पूर्व आदि प्रसिद्ध है।

आधुनिक काल

मुख्य रूप से भारतेंदु यूग को ही यात्रा साहित्य का आरंभ काल माना जा सकता है। भारतेंदु ने खड़ी बोली का विकास कर कितने ही नवीन साहित्य को जन्म दिया। यह बोली जन-जन की बोली थी। यही कारण है कि साहित्य की पहुंच एक आम व्यक्ति तक हुई।

मुख्य रचनाएं व लेखक

दामोदर दास शास्त्री- मेरी पूर्व दिग्यात्रा(१८८५)

देवी प्रसाद खत्री- रामेश्वर यात्रा (१८९३)

शिव प्रसाद गुप्त- पृथ्वी प्रदक्षिणा (१९२४)

स्वामी सत्यदेव। - मेरी कैलाश यात्रा (१९१५)

मेरी जर्मन यात्रा (१९२६)

कन्हैया लाल मिश्र- हमारी जापान यात्रा

राम नारायण मिश्र-यूरोप यात्रा के छह मास

राहुल सांकृत्यायन का योगदान यात्रा साहित्य में अद्वितीय व अग्रणी है। उनकी रचनाऐं हैं -

"मेरी तिब्बत यात्रा"

"मेरी लद्दाख यात्रा"

"किन्नर देशों में"

"रूस में पच्चीस मास"

"तिब्बत में सवा वर्षों"

"मेरी यूरोप यात्रा" आदि प्रसिद्ध है।

अज्ञेय ने यात्रा वृतांत के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। उनका मानना था कि "यायावर को भटकते हुए चालीस बरस हो गए किंतु इस बीच न तो वह अपने पैरों तले घास जमने दे सका है, न ठाट जमा सका है, न क्षितिज को कुछ निकट ला सका है उसके तारे छूने की तो बात ही क्या। यायावर न समझा है की देवता भी जहाँ मंदिर में रुके की शीला हो गए, और प्राण संचार की पहली शर्त है कि गति: गति :गति:

अज्ञेय द्वारा रचित यात्रा वृतांत

"अरे यायावर रहेगा याद"(१९५३)

"एक बूंद सहसा उछली"(१९६४)

चित्रात्मक व वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत कर यात्रा साहित्य को नया आयाम दिया।

मुख्य लेखक व कृतियॉ

- रामवृक्ष बेनीपुरी-"पैरों में पंख बांधकर उड़ते चलो उड़ते चलो"
- यशपाल- "लोहे की दीवार"१९५३
- भगवत शरण उपाध्याय-कोलकाता से पै किंग तक"(१९५३)
- सागर की लहरों पर (१९५९)
- प्रभाकर माचवे-"गोरी नजरों में हमें"(१९६४)
- मोहन राकेश-आखरी चट्टान तक (१९५३)
- निर्मल वर्मा-"चीडों पर चांदणी"(१९६४)

यात्रा साहित्य मे यात्री अपने यात्रा के प्रत्येक स्थल और क्षेत्र में से उन्ही क्षेत्रों का संयोजन करता है जिनको वह अद्भुत सत्य के रूप मे ग्रहण करता है। आत्मीयता तथा निजता का यह गुण निबंध शैली की भी विशेषता है, इसलिए यह कहा जाता है यात्रावृत की वर्णन प्रक्रिया निबंध की सी होती है। फिर भी यात्रावृत्त निबंध नहीं है क्योंकि इसमें किसी भी विषय का समावेश नहीं हो सकता इसमें तो यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों का वर्णन ही अपेक्षित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्णन की दृष्टि से यात्रावृत्त निबंध और संस्मरण दोनों के कुछ गुणों को लेकर चलता है फिर भी वह उन दोनों से अलग है।

यात्रावृतं का लेखक यात्रा के विवरणों में स्थान, दृश्य, घटना, तथा व्यक्ति आदि से संबंधित कटु और मधुर स्मृतियों का चित्रण कर सकता है।

हिंदी में यात्रा वृत्त विधा को समृद्ध करनेवालो में महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, मोहन राकेश, भगवत शरण उपाध्याय, यशपाल आदि प्रमुख है।

११.२.२ डायरी

नित्य प्रति के व्यक्तिगत लिखित अनुभवों को डायरी की संज्ञा दी गई है। इसलिए माना जाता है कि डायरी आत्मगत विधा है वस्तुगत नहीं। हिंदी साहित्य में डायरी विधा भी अन्य गद्य विधाओं की तरह आधुनिक विधा है। डायरी लेखन हिंदी साहित्य में मुख्यत: छायावादोत्तर युग की आत्मापरक विधा है। किसी भी घटना के प्रति व्यक्ति की तात्कालिक उद्वेग या अभिव्यक्ति का माध्यम डायरी बनती है। डायरी में वर्णित विवरण किसी साहित्यकार की कलम से किचिंत कलात्मक शैली में लिखी जाती है तो वह साहित्य की एक प्रतिष्ठित विधा का हिस्सा बन जाती है। हिंदी साहित्य में बहुत साहित्यकारों ने डायरी लेखन को प्रमुखता दी जिसमें जमनादास बिहुला ,रामवृक्ष, बेनीपुरी, महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, अजीत कुमार, मोहन राकेश, रामधारी सिंह दिनकर आदि प्रमुख रहे।

डायरी लेखन एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक स्वयं की रोजमर्रा जिंदगी और जीवन से जुड़े लोगों के प्रति अगाध प्रेम द्वन्द्व व संवेदन आदि को अपने शब्दों में डायरी में लिखता है। निश्चित ही यह एक अनूठी साहित्यिक विधा है।

डायरी शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'DIARIUM'शब्द से हुई है जिसका अर्थ है ' DIES' अर्थात 'DAY'यानी दैनिक भत्ता।

रामधारी सिंह दिनकर डायरी शब्दों को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि - 'डायरी' वह चीज है जो रोज लिखी जाती है और जिसमें घोर रूप से व्यक्तिगत की बातों भी लिखी जा सकती हैं। 'इसी रूप में अनीता राकेश भी डायरी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बताती है। डायरी एक बहुत ही वैयक्तिक चीज है जो बिना लाग लपेट के व्यक्त होता है'।

डायरी का संबंध मूलतः लेखक से होता है अंत: यह उनके ही विचार और अनुभव की शब्द सृष्टि है। यह अनुभव और विचार कहीं न कहीं उनकी कृतियों में भी झलकते हैं। अर्थात एक सजक अपने सर्जन से जुड़े घटना तथ्यो का संग्रह भी डायरी में करता चलता है। यहां यह स्पष्टत: कहा जा सकता है की जब कोई लेखक अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का यथार्थ चित्रण क्रमबद्ध और लिपिबद्ध करता है तो उसे डायरी कहते हैं डायरी में लेखक के सपने होते हैं। किसी प्रिय के प्रति प्रेम होता है, क्षोभ क साध -साध दुःख व आंसू होते हैं जहां रोज नया दिन होता है नई बातें होती है जो उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करती है इस तरह यह स्वयं को नित्य नवीन रूप में स्थापित करने वाली विधा है जो कुतुहलता से भरपूर है।

हिंदी साहित्य में डायरी लेखन में प्रमुख रूप से हरिवंश राय बच्चन, मोहन राकेश, दिनकर, प्रेमचंद जैसे दिग्गज साहित्यकार लिखते रहे हैं जिनका डायरी लेखन के प्रति अघात प्रेम व आस्था स्पष्ट झलकती है।

डायरी विधा की प्रमुख कृतियाँ

हिंदी डायरी विधा की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित है।

लेखक	: **डायरी**
घनश्यामदास बिड़ला	: डायरी के पन्ने १९४०ई
सुन्दरलाल त्रिपाठी	: दैनंन्दिनी १९४५ई
श्रीराम शर्मा	: सेवाग्राम की डायरी१९४६
सियाराम शरण गुप्त	: दैनिकी१९४७ई.
धीरेंद्र वर्मा	: मेरी कालीज डायरी१९५४
अज्ञेय	: बर्लिन की डायरी (एक बूंद सहसा उछली में) संकलित १९६०ई.
मुक्तिबोध	: एक साहित्यिक डायरी१९६५
हरिवंश राय बच्चन	: प्रवासी की डायरी१९७१ई.
रामधारी सिंह दिनकर	: दिनकर की डायरी १९७३
रघुवीर सहाय	: दिल्ली मेरा परदेश१९७६ई.
जयप्रकाश नारायण	: मेरी जेल डायरी १९७७ई.
फणीश्वरनाथ रेनू	: बनतुलसी की गंध१९८४ई.

डायरी: शैली में रचित उपन्यास

डायरी एक तरल विधा मानी जाती है। क्योंकि उसे जिस बर्तन में डालीए उसी प्रकार का आकार ग्रहण कर लेती है। कई उपन्यासों में इस विधा का रचनात्मक प्रयोग दिखाई पड़ता है। आत्मकथा और यात्रा वृतांत में भी इसका उपयोग हुआ है। डायरी शैली में प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित है।

अज्ञेय : नदी के द्विप,१९५१ई.
अपने : अपने अजनबी १९६१ई.
जैनेंद्र कुमार : जयवर्दन,१९५८ई.
राजेंद्र यादव : शह और मात,१९५९ई.
देवराज। : अजय की डायरी, १९६०ई.
श्री लाल शुक्ल : मकान ,१९७६ई.

११.२.३ पत्र

पत्र गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। इसमें दो अलग-अलग जगह पर रहने वाले व्यक्ति लिखित भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। दो व्यक्तियों के संप्रेषण में वाचिक भाषा का प्रयोग होता है। यह वाचिक भाषा जब लिखित रूप में आ जाए तो पत्र उसका सबसे समर्थ वाहक बनता है। दूसरे शब्दों में पत्र किसी के पास भेजा गया लिखित संदेश है। कहा जा सकता है:-

i) एक लेखक होता है और एक पाठक होता है।
ii) पाठक लेखक और लेखक पाठक बन जाता है। अर्थात इसमें तीसरा कोई व्यक्ति नहीं होता।
iii) इस माध्यम में दोनों व्यक्तियों को एक भाषा का जानकार एवं साक्षर होना आवश्यक है। अर्थात पत्र साक्षर व्यक्तियों के संप्रेषण का माध्यम है।

पत्र आत्माभिष्यमि का सशक्त माध्यम है। हालांकि पत्र का आरंभ लेखन के अविष्कार के साथ ही हुआ परंतु विधा के रूप में साहित्य से यह आधुनिक काल से जुड़ा। साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान पत्र को ही साहित्यिक पत्र माना जाता है। हम उसके बारे में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहते हैं। हम यह भी जानना चाहते है कि उसका निजी एकांत गोपनीय जीवन कैसा रहा है?

किसी घटना विशेष पर उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया कैसी रही है? इसके लिए हम महापुरुषों के संस्मरण पढ़ते हैं। उनकी आत्मकथा और डायरी का अध्ययन करते हैं। इसी जिज्ञासा में हम उनका पत्र- व्यवहार भी पढ़ते हैं। इन पत्रों में उनका मानसिक व्यक्तित्व झलकता है इसी कारण उनका पत्र-व्यवहार प्रकाशित होता है।

महात्मा गांधी, अल्बर्ट आइंस्टाइन, प्रेमचंद और रवींद्रनाथ ठाकुर के पत्र बहुत चाव से पढ़े जाते हैं।

हिंदी साहित्य में कई हिंदी साहित्यकारों जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, निराला, उग्र, बच्चन, यशपाल, दिनकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन आदि रचनाकारों के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। इन पत्रों के माध्यम से साहित्य और संपूर्ण जीवन के बारे में इनके दृष्टिकोण को समझने को समझने में मदद मिलती है।

पत्र विधा की विशेषताएँ

पत्र एक सोद्देश्य संप्रेषण है। हम अनासाय नरुद्देय पत्र नहीं लिखते हम किसी को कुछ कहना चाहते हैं, कुछ 'बताना 'चाहते हैं। जिसे हमें बताना है वह व्यक्ति हमारे पास नहीं है। वह हमसे दूर है। यदि वह पास है तब भी हमको लगता है कि हम उसे अपनी बात अच्छी तरह से नहीं कह पाएंगे। सामने वाला व्यक्ति अपने प्रतिक्रिया व्यक्त करके हमारी एकाग्रता भंग कर देगा और इस कारण हमारा 'कथ्य' पूर्णतः सप्रेषित नहीं हो पाएगा।

पत्र विधा की विशेषताएं निम्नलिखित है।

(अ) लिखित संप्रेषण

पत्र लिखित संप्रेषण का माध्यम है। यह साक्षर व्यक्तियों के संप्रेषण का माध्यम है। निरक्षर व्यक्ति पत्र व्यवहार नहीं कर सकते । पत्र लिखने और पढ़ने वाला दोनों ही समान भाषा का जानकार होना चाहिए। ज्यों ही संवाद संप्रेषण के लिए लिखित माध्यम का उपयोग किया जाता है 'संवाद' औपचारिक हो जाता है।

सामान्यतः लेखन की किसी भी विधा में लेखक महत्वपूर्ण होता है।

(आ) निजता

पत्र में दो व्यक्ति परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं। ये व्यक्ति आपस से परस्पर पत्र व्यवहार करते हैं। पत्रों में सार्वजनिक जीवन का जिक्र हो सकता है परंतु उसकी सार्वजनिक व्याख्या नहीं होती। उस सार्वजनिक जीवन के प्रति लेखक की निजी राय क्या है यह वह पत्र में प्रकट कर सकता है और प्राप्तकर्ता से उम्मीद करता है कि वह या तो उसकी पुष्टि करें या खंडन करें।

(इ) आत्माभिव्यक्ति

पत्र मे लेखक किसी विशेष विषय का वर्णन नही करता। वह आत्माभिव्यक्ति करता है।वह एक से अधिक तथ्यों पर अपनी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता जाता है। लिखने के दौरान जो भाव तरंगे उठी मन में जो विचार आया उन्हें वह उसी रूप में व्यक्त करता जाता है। किसी गंभीर तात्विक विषय का उल्लेख भी लेखक बड़े सामान्य और सहज ढंग से कर देता है। यहां लेखक का चिंतन महत्वपूर्ण होता है।

किसी पत्र में लेखक भूमिका नहीं लिखता वह सीधे मूल बात से पत्र की शुरुआत करता है ।

(ई) तात्कालिकता

पत्र पढ़ने वाला व्यक्ति दूर होता है। वहां तक पत्र पहुंचने में समय लगता है। जब तक पानी वाली व्यक्ति के पास पत्र पहुंचे तब तक लिखने वाले व्यक्ति का मन बदल सकता है। वह भूल भी सकता है। लिखने वाला और पढ़ने वाले दोनों तरफ से जो अभिव्यक्ति होती है वह उन

दोनों की तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है। घटना की प्रतिक्रिया पहला व्यक्ति करता है पाने वाले उसी प्रतिक्रिया पर प्रतिक्रिया करता है। इसमें गलतफहमी की गुंजाइश रहती है। तात्कालिक प्रतिक्रिया प्रकट के बाद भी चिंतन चलता है। हम उस तात्कालिक मानसिकता से उबर सकते हैं उस आवेग को स्थगित कर सकते हैं। लिखा हुआ अक्षर तो नहीं बदल सकता किंतु लिखने वाला स्वयं को बदल सकता है। इसलिए अगला पत्र कभी-कभी पिछले पत्र को निरस्त भी कर सकता है। कभी-कभी बात आगे बढ़ती है और फिर टूट जाती है। टूटी हुई बात फिर कभी जुड़ सकती है। यह तात्कालिकता प्रतिक्रियाएं है तथा इन्हें इसी रूप में समझना चाहिए।

(उ) सहजता

सहजता पत्र का आवश्यक गुण है। सहज संप्रेषण पत्र की सफलता का आधार है। इसलिए पत्र की भाषा शैली भी सहज होती है ।ध्यान रखें, यहॉं हम साहित्यिक पत्रों की बात कर रहे हैं। पत्रों में लेखक को हमेशा इस बात का ध्यान रखना होता है की उसकी भावनाओं विचारों और दृष्टिकोण को सही ढंग से पत्र प्राप्तकर्ता समझ ले। पत्र लिखते समय लेखक भाषा और शिल्प की कलात्मकता के प्रति सचेत नही रहता। पत्र मे भाषागत कलात्मकता तथा सौंदर्य भी लेखक की सहज अभिव्यक्ति का हिस्सा बनकर ही आता है।

पत्र और अन्य गद्य विधाएँ

हम पहले भी पढ़ चुके हैं की पत्र व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति है। इसमें लेखक का आत्मसाक्ष्य निहित होता है। इसमें लेखक अपने मन को खोलकर रख देता है। पत्र में निजता के साथ आत्मीयता भी होती है।

आत्मकथा, डायरी, संस्मरण और यात्रा -वृतांत पत्र साहित्य से मिलती-जुलती गद्य विधाएं हैं। इन सब गद्य विधाओं में लेखक अपनी बात कहता है। आत्म प्रकाशन इन गद्य विधाओं का गुण है। आत्म प्रकाशन की समानता के बावजूद पत्र का अलग शिल्प है उनका स्वरूप भी अलग है पत्र ही एकमात्र ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक और पाठक एक भूमि पर खड़े रहते हैं।

पत्र और आत्मकथा

पत्र और आत्मकथा एक दूसरे से समीप होते हुए भी स्वतंत्र विधाएं है। परंतु पत्र में जहां तात्कालिकता होती है वही आत्मकथा में व्यक्ति के जीए हुए जीवन का ब्यौरा होता है।

पत्र और संस्मरण

पत्र और संस्मरण दोनों विद्याओं में से व्यक्तियों के साझा अनुभवों का वर्णन होता है। फर्क सिर्फ यह है कि संस्मरण में इन दोनों से अलग कोई तीसरा व्यक्ति पाठक होता है। संस्मरण में बीते हुए अनुभवों का बयान होता है।

पत्र और डायरी

पत्र और डायरी विधा में यह समानता है कि दोनों तत्कालीन लेखन है।

११.३ सारांश

निम्नलिखित प्रमुख विधाओं के आधार पर हमने देखा कि हिंदी साहित्य के अंतर्गत लेखन की विविधता भरी पड़ी है। आरंभिक काल से लेकर आधुनिक काल तथा आज की भाषा में आधुनिकोतर काल तक साहित्य में विविधताओं का भंडार रहा है। विभिन्न लेखकों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों ,जीवन की आत्मगत अनुभवों को यात्रा वृतांत, डायरी, पत्र, इत्यादि के माध्यम से साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया है। जिनको पढ़कर साहित्य के विद्यार्थी लाभांवित होते रहे है।

११.४ बोध प्रश्न्

अ. हिंदी साहित्य के प्रमुख यात्रा वृतांतों का परिचय दे।

आ. आधुनिक काल के गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के बारे में विस्तार से लिखिए।

इ. यात्रा वृतांत, डायरी, पत्र पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

ई. डायरी और पत्र में क्या अंतर है?

उ. आधुनिक काल में यात्रा वृतांत, डायरी पत्र से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिए।

६. लघूत्तरीय प्रश्न

अ) यात्रावृतांत विधा की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

आ) पत्र को परिभाषित करते हुए उसके प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए।

इ) डायरी और पत्र में क्या अंतर है? दो पंक्तियों में लिखिए।

७. संदर्भ ग्रंथ

१. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियॉं - (डा. शिवकुमार शर्मा)

२. हिंदी साहित्य का इतिहास - (डा. विनोद कुमार)

३. विकिपीडिया

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई : १२

१२

आलोचना, रेखाचित्र, और संस्मरण आत्मकथा और जीवनी

इकाई की रूपरेखा :

१२.० इकाई का उद्देश्य
१२.१ प्रस्तावना
१२.२ आलोचना
१२.३ रेखाचित्र, और संस्मरण
१२.४ आत्मकथा और जीवनी
१२.५ सारांश
१२.६ बोध प्रश्न
१२.७ लघूत्तरीय प्रश्न
१२.८ संदर्भ ग्रंथ

१२.१ इकाई का उद्देश्य

- हिंदी साहित्य का इतिहास के संदर्भ में विभिन्न विधाओं से परिचय प्राप्त हो जाएगा
- साहित्यिक रचनाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे ।
- गद्य की विविध विधाओं का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे ।
- गधे की विविध विधाओं में अंतर कर सकेंगे ।
- एक दूसरे से मिलती-जुलती गद्य विधाओं से मिलने वाली समानता और विषमता को समझ सकेंगे ।

१२.२ प्रस्तावना

पाठ की पिछली इकाई में आपने हिंदी गद्य के विकास की जानकारी प्राप्त की है। साथ ही यात्रा वृतांत, डायरी -पत्र आदि साहित्य की विधाएँ कहलाती है । इन विधाओं की रचना में कुछ -ना -कुछ अंतर अवश्य रहता है। प्रत्येक विधा अलग प्रकार के लेखन की मांग करती है। दूसरे शब्दों में किसी एक विधा की लेखन -शैली दूसरी विधा की लेखन- शैली से भिन्न होती है। चुँकि नाटक उपन्यास कहानी आदि गद्य साहित्य की विधाएँ है, अंत: इस इकाई में हम साहित्य की चर्चा करते हुए साहित्य शब्द का विशिष्ट अर्थ जानेंगे तथा गद्य की विभिन्न विधाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। इनमें अंतर करते हुए हम यह भी जानेंगे कि ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप इन विधाओं में किन नई बातों का समावेश हुआ है और कौन सी नई विधाएँ अस्तित्व में आई हैं।

munotes.in

१२.३ आलोचना, रेखाचित्र, और संस्मरण आत्मकथा और जीवनी

१२.३.१ आलोचना

प्रत्येक युग का साहित्य युग विशेष चेतना का प्रतिबिम्बक होता है। इस युग की विचारधारा, विधाएॅं और शिल्पगत विशेषताऐं इस काल के साहित्य में व्यक्त होती है। रीतिकाल में काव्य- शास्त्रीय परंपरा संस्कृत के काव्यशास्त्र के आधार पर विकसित हुई। प्रथम कोटी में वे आचार्य आते हैं जिन्होंने समग्र साहित्य का निरूपण किया है, जिन्हें सर्वांग निरूपण आचार्य कहा जा सकता है। दूसरी कोटि में वे आचार्य उल्लेखनीय है जिन्होंने अलंकार या रस को काव्यात्मा मानकर उसी का विस्तृत विवेचन किया है। चिन्तामणि, श्रीपति,भिकारीदास सोमनाथ ,मतिराम, पद्माकर आदि कवियों ने दोष की विवेचना की है।

भारतेंन्दुयुगीन आलोचना

आधुनिक काल तक आते आते गद्य का विकास बड़ी तेजी से होने लगा और खड़ी बोली में साहित्य - सर्जना प्रारंभ हुई। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण समालोचना की प्रवृत्ति बढ़ी तथा इनके प्रसार मे पत्र पत्रिकाओं के आविर्भाव ने योगदान किया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाओं में प्रथम उल्लेख बदरी-नारायण चौधरी प्रेम धन का किया जा सकता है जिन्होंने आनन्द, कादम्बिनी पत्रिका सर्वप्रथम लाल श्री निवास दास कृत संयोगिता स्वयंवर की विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की और निर्णयात्मक आलोचना की नीवं डाली। इस युग में आलोचना का अधिक विकास संभव नहीं हुआ।

द्विवेदीयुगीन आलोचना

द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना का उन्मेशकाल माना जा सकता है। यद्यपि इस काल में आलोचना का तात्विक एवं व्यवहारिक स्वरूप समन्वित होकर नहीं निकला तथा समालोचन की सुदृढ सारणि भी नहीं विकसित हुई किंतु इस काल तक आलोचना की भावी रूपरेखा दृष्टिगोचर होने लगी थी।

शुक्लयुगीन आलोचना

द्विवेदी युग में आचार्य द्विवेदी ने काव्य समीक्षा के सिद्धांतों का संकेत भी किया है इससे सैद्धान्तिक समीक्षा की नींव भी पड़ी। आचार्य द्विवेदी मूलतः आदर्शवादी समीक्षक थे। इसलिए उन्होंने काव्य में नैतिकता और भाषा की सहजता पर बल दिया है।

छायावाद समीक्षा

आचार्य शुक्ल के पश्चात हिंदी आलौचना की नई दिशा देने वाले समीक्षकों में आचार्य नंन्द दुलारे प्रमुख हैं। उन्होंने आचार्य शुक्ल के सिद्धांत की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया "साहित्य की जगत से संबंध जोड़ देने के कारण शुक्ल जी साहित्य के नैतिक और व्यवहारिक आदर्शों की ओर इतना झुक गए कि उनके विशुद्ध मानसिक और भावमुलक स्वरूप का स्वतन्त्र आंकलन ना हो पाया"।

मानवतावादी आलोचना

छायावादी समीक्षा के समांन्तर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मानवतावादी दृष्टि भी हिंदी साहित्य-चिन्तन का नया आयाम बनी। आचार्य द्विवेदी की चिंन्तना ना हो रामचंद्र शुक्ल की अनुगामिनी है और न वाजपेयी जी की अपितु दोनों के मध्य की स्थिति है।

प्रगतिवादी आलोचना

1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के उपरान्त कार्लमार्क्स की विचारधारा का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा और प्रगतिवादी लेखन की नींव पड़ी। प्रारम्भ में हिंदी साहित्य के परंम्परावादी समीक्षकों ने इस प्रवृत्ति की आलोचना की परंन्तु अनेक नए आलोचकों ने साहित्य की इस नई प्रवृत्ति का स्वागत किया और मार्क्सवादी साहित्य- चिंतन की व्याख्या प्रस्तुत की।

मनोविश्लेषणात्मक आलोचना

साहित्य समीक्षा की परवर्ती पद्धतियों में व्यक्तिवादी अथवा मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा का विकास प्रयोगवादी काण्य के संदर्भ में हुआ ।

नई समीक्षा

प्रयोगवादी समीक्षा के विकास काल में अनेक समीक्षक सामने आए जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य चिन्तन को विकसित किया। नए समीक्षका में डॉ. रघुवंश, डॉ. धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा प्रतिष्ठित हुए। हिंदी समीक्षा को यह पीढ़ी भी सम्प्रति उत्कर्ष तक पहुंच चुकी है।

समालोचना में समालोचक किसी रचनाकार की रचना की परीक्षा करता है। दूसरे शब्दों में वह रचना के गुण दोषों को निष्पक्ष रूप में प्रकट कर उसके विषय में अपना मत भी प्रस्तुत करता है। अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं और राग द्वेष से ऊपर उठकर उसे यह काम पुरी ईमानदारी के साथ करना होता है। आलोचक के इस गुण को हम उसकी 'तटस्थता' कह सकते हैं। यह तटस्थता आलोचना की प्राणशक्ति है। आलोचना के आलोचना बने रहने के लिए निष्पक्ष और तटस्थ मूल्यांकन आवश्यक है।

किसी रचना की समीक्षा करते समय समीक्षक को उस रचना के विषय में अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत करना होता है। जिस समीक्षक का निर्णय जितना निर्भ्रान्त और निष्पक्ष होगा उसकी समीक्षा उतनी ही उत्तम बन पड़ेगी।

आलोचना के स्वरूप को जान लेने के बाद अच्छे समालोचक के गुणों को जान लेना जरूरी है, क्योंकि जिन समीक्षक में ये गुण जितनी मात्रा में होंगे उसकी समीक्षा उतनी ही सशक्त बन पाएगी।

समालोचक के गुण

अच्छे समालोचक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए

विद्वता- किसी भी साहित्यिक मुद्दे या रचना की सही सही आलोचना के लिए यह आवश्यक है कि आलोचक बहुज्ञाता हो। उसके द्वारा कही बातों को जानने समझने और विवेक परक ढंग से विवंचित

करने की क्षमता हो। विद्वान लेखक ही विषय वस्तु को भलीभांति समझ सकता है। अपनी बुद्धि और ज्ञान के द्ववारा यह सही और गलत की पहचान कर सकता है।

निष्पक्षता--रचना का मूल्यांकन करते समय आलोचक का निष्पक्ष रहना आवश्यक है। अगर वह पक्षपातपूर्ण नीति का पालन करेगा तो संतुलित और निष्पक्ष मूल्यांकन न कर सकेगा। उसे बिना पक्षपात के सही और गलत या गुण-अवगुण की परख करनी चाहिए।

तर्क पूर्ण संगति- सफल आलोचक वही हो सकता है जिसमें तर्क करने की शक्ति हो। रचना क्यों अच्छी है? या क्यों बुरी है? रचना में कौन कौन से गुण है और क्या-क्या कमियॉं है, इसे आलोचक को तर्कों द्वारा सिद्ध करना होगा। दूसरे शब्दों में आलोचक तर्क द्वारा ही अपने मत को सिद्ध कर सकता है।

विवेचन विश्लेषण--समालोचक में विवेचन की क्षमता होनी चाहिए। निष्पक्ष भाव से विवेचन विश्लेषण द्वारा मूल्यांकन करना ही सच्चे आलोचक का गुण है। आलोचक का यही गुण आलोचना को गंभीर बनाता है।

आलोचना के प्रकार

यो तो आलोचना के अनेक प्रकार है किंतु मोटे तौर पर उसे निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1) सैद्धांतिक आलोचना

2) व्यावहारिक आलोचना

सैद्धांतिक आलोचना में उन सिद्धांतों की चर्चा की जाती है जिनके आधार पर किसी रचना की समीक्षा की जा सकती है। रस, अलंकार आदि ऐसे ही सिद्धांत है। इस प्रकार के सिद्धांतों को समीक्षा का आधार माना जाता है। समीक्षा के इन आधारभूत सिद्धांतों के विषय में दी जाने वाली जानकारी सिद्धांतिक समीक्षा के अंतर्गत आती है। आधुनिक दृष्टि से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, आदि के आधार पर किया जाने वाला सिद्धांतिक विवेचन भी इसी प्रकार का है। जब समीक्षा के आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर किसी कृति की समीक्षा की जाती है तो वह आलोचना का व्यवहारिक रूप होता है ।दूसरे शब्दों में इसे व्यवहारिक समीक्षा कहते हैं। उदाहरण के लिए सूरदास के काव्य का रस मनोविज्ञान अथवा समाजशास्त्र की दृष्टि से किया जाने वाला विश्लेषण व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत आएगा। हिंदी समीक्षा के विकास में महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ रामविलास शर्मा, डॉ नागेंद्र , डॉ नामवर सिंह आदि का उल्लेखनीय योगदान है।

१२.३ रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र और संस्मरण हिंदी साहित्य की नवीन विधाऍं है। जब किसी व्यक्ति ,वस्तु ,स्थान ,घटना दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है,

तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। इस प्रकार के वर्णन का तटस्थ होना आवश्यक है। इसके विपरीत जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में विती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उनका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं।

रेखा चित्र में वर्णन का हू-ब-हू होना आवश्यक है और संस्मरण में उनका स्मृति के आधार पर लिखा जाना।

एक अन्य बात यह भी है कि रेखा चित्र में लेखक का वर्णित घटना व्यक्ति आदि के साथ निजी संबंध होना आवश्यक नहीं है, संस्मरण लिखने के लिए यह जरूरी है कि लेखक का वर्णित व्यक्ति, घटना आदि के साथ व्यक्तिगत संबंध रहा हो।

संस्मरण और रेखाचित्र दोनों ही विधाओं का आधार अतीत की स्मृतियों पर होता है, किंतु योजना की दृष्टि से दोनों में फर्स्ट अंतर है। संस्मरण में ऐसी सभी स्मृतियों की योजना की जाती है जिनके परिप्रेक्ष्य मैं व्यक्ति पर प्रकाश डाला जा सकता है, किंतु रेखा चित्र में उन्ही स्मृतियों की योजना की जाती है, जिससे चित्रण प्रखर हो जाता है । संस्मरण मे प्रायः अतीत की घटनाऐं अधिक मुखर होती है। रेखाचित्र में अतीत और वर्तमान दोनों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

संस्मरण-- विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बंध रहते हैं। पर रेखा चित्र में विशिष्ट वस्तुओं व्यक्तियों के अतिरिक्त सामान्य का भी चित्रण होता है। संस्मरण में संस्मरणकार सार व्यक्तित्व उभार कर रखना चाहता है जब कि रेखाचित्र में व्यक्ति को चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया जाता है। संस्मरण में लेखक यथार्थ का आश्रय लेता है।
रेखा चित्र में कल्पना और स्वानुभूति का आश्रय अधिक लिया जाता है। संस्मरण की सभी घटनाएं व्यक्तिगत सानिध्य का प्रमाण होती है और उनकी विवेचना युगीन चेतना से जोड़कर प्रस्तुत की जाती है। रेखा चित्र में युग की पृष्ठभूमि की शब्द संकेतों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।
रेखाचित्र में वर्णन इतना सुगठित और प्रभावपूर्ण होना चाहिए कि उसका चित्र पाठक के सामने उपस्थित हो जाए। ऐसा लगे कि किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र आंखों के सामने है। शब्दों के द्वारा चित्र अंकित करने के इस गुण को चित्रात्मकता कहते हैं। यह रेखा चित्र की बहुत बड़ी विशेषता है। वास्तव मैं रेखा चित्रकार का काम शब्दों के द्वारा चित्रों की श्रृंखला प्रस्तुत करने का है।

संस्मरण कभी जीवनी के निकट चला जाता है, कभी आत्मकथा के। यदि लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं को याद करता है तो वह 'आत्मकथा 'के निकट आ जाता है और यदि अन्य व्यक्ति के साथ घटी घटनाओं को याद करता है तो वह 'जीवनी' के निकट पहुंच जाता है। मुख्य बात यह है कि इसमें लेखक या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का कोई पक्ष सामने अवश्य आता है। इसके साथ, सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्णन इस प्रकार करता है, मानों बीती घटनाओं को

हिंदी में महादेवी वर्मा के रेखा चित्रों के संग्रह 'अतीत के चलचित्र ','स्मृति की रेखाएं ','पथ के साथी 'आदि का विशेष महत्व है। इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी का 'सेतुबंध 'श्रीराम शर्मा का 'प्राणों का सौद' रामवृक्ष बेनीपुरी का' माटी की मूरते' तथा 'मील का पत्थर' उल्लेखनीय रेखा चित्र हैं। महादेवी

वर्मा के रेखा चित्र को लेकर विद्वानों के बीच कुछ मतभेद हैं। कुछ विद्वान इन्हें संस्मरण कहने के पक्ष में है। उनका तर्क है कि महादेवी वर्मा ने जिन पात्रों और घटनाओं को लिया है। वे उनके जीवन में आए हुए वास्तविक पात्र और घटनाएं हैं ।लेकिन महादेवी वर्मा ने जिस तटस्थता के साथ संक्षिप्त रूपों में, पात्रों और घटनाओं का चित्रात्मक अंकन किया है। वह उनकी रचनाओं को रेखा चित्र के समीप लाता है। वास्तुत: महादेवी के रेखाचित्रों में स्मृतिचित्र तथा संस्मरण दोनों समाहित हो जाते हैं। महादेवी ने संस्मरणात्मक शैली में ही रेखाचित्र अधिक लिखे हैं जिनको बहुत से आलोचक संस्मरण मानना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

हिंदी में राहुल सांकृत्यायन की' बचपन की स्मृतियां 'प्रकाशचंद्र गुप्त की 'पुरानी स्मृतियॉं 'विनय मोहन शर्मा की 'रेखा और रंग 'कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की 'जिंदगी मुस्कुराई' शांन्तिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतियां और कृतियां' विष्णु प्रभाकर की कुछ शब्द: कुछ रेखाएँ उल्लेखनीय संस्मरण है।

१२.४ आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा और जीवनी एक दूसरे से मिलती-जुलती विधाए विद्याएँ है। आत्मकथा हिंदी साहित्य लेखन की गद्य विधाओं में से एक है। आत्मकथा यह व्यक्ति द्वारा अनुभव किए गए जीवन के सत्य तथा यथार्थ का चित्रण है। आत्मकथा के केंद्र में आत्मकथा कार या किसी भी व्यक्ति विशेष के जीवन की विविध पहलुओं तथा क्रियाकलापों का विवरण होता है।

आत्मकथा गद्य साहित्य का वह रूप है जिसके अंतर्गत किसी व्यक्ति विशेष का जीवन वृतांत स्वयं के द्वारा ही लिखा जाता है।

आत्मकथा के अंतर्गत आत्मकथा कार की मुख्य भूमिका यह होती है कि वह अपने जीवन का सही ढंग से चित्रण करें। इसमें आत्मकथा कार कथा का पात्र स्वयं होता है।

हिंदी में आत्मकथा लेखन की एक लंबी परंपरा रही है। इस परंपरा को तीन काल खंडों में विभाजित किया गया है जो कि निम्नवत है :-

१. **आत्मकथा लेखन का आरंभिक काल :-**

हिंदी की पहली आत्मकथा सन 1641 में बनारसीदास जैन द्वारा लिखित ‘अर्द्धकथा’ को माना गया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के अलावा इस कालखंड की आत्मकथाकारों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में से सुधाकर द्विवेदी की ‘रामकहानी’ तथा अंबिकादत्त व्यास की ‘निजवृतांत’ को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

२. **स्वतंत्रता पूर्व आत्मकथा लेखन :-**

हिंदी आत्मकथा साहित्य के विकास में ‘हंस पत्रिका’ में प्रकाशित आत्मकथांकी में विशेष रहा है। सन 1941 में प्रकाशित इस काल की सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा श्यामसुंदर दास की मेरी ‘आत्मकहानी’ है। इसी कालखंड के आसपास बाबू गुलाबराय की आत्मकथा ‘मेरी असफलताएँ भी प्रकाशित हुई। सन 1947 के आरंभ में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद की आत्मकथा मेरी जीवन यात्रा प्रकाशित हुई।

३. आत्मकथा लेखन का स्वातंत्र्योत्तर काल

सन 1948 में वियोगी हरि की आत्मकथा ' मेरा जीवन प्रवाह' प्रकाशन हुआ। यशपाल की आत्मकथा ' सिंहावलोकन' प्रकाशित हुआ। सन 1960 में प्रकाशित पांडेय बैचेन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा ' अपनी खबर' प्रकाशित हुई।

हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा ' क्या भूलूं क्या याद करूं' 1969, नीड का निर्माण फिर - फिर 1970, बसेरे से दूर 1977, दशद्वार से सोपान तक 1958 प्रकाशित हुई।

बच्चन की आत्मकथा ने अनेक आत्मकथाकारों को जन्म दिया।

जीवनी

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतांत को जीवनी कहते हैं। जीवनी का अंग्रेजी पर्याय " बायोग्राफी" है। हिंदी में इसे जीवन चरित्र कहते हैं। इस रूप में किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के अन्तबाह्य स्वरूप का घटनाओं के आधार पर कलात्मक चित्रण रहता है। इससे उसके गुण, दोषमय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है।

जीवनी लेखक को अपने नायक के संपूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए जीवनी में इतिहास साहित्य और व्यक्ति की त्रिवेणी होती है। परंतु इसमें इतिहास की भांति घटनाओं का आकलन नहीं होता। इससे मनुष्य के जीवन की व्याख्या एवं उसके व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन प्रत्यक्ष और वास्तविक रूप से प्राप्त होता है।

उपन्यास कहानी आदि में भी जीवन की व्याख्या तो होती है किंतु वह परोक्ष और कल्पना मिश्रित होती है। वास्तविक जीवन का अध्ययन प्रत्यक्ष और वास्तविक रूप से प्राप्त होता है।

डॉ. रामप्रकाश के अनुसार आधुनिक काल में "पद्य" के साथ-साथ "गद्य" की बहुलता और उसमें विविध विधाओं की रचना पद्धति की प्रचुरता होने के कारण पुराने ढंग के चरित-काव्य के स्थान पर भी नए ढंग के गद्य बद्ध चरित्र तथा जीवनवृत्त लिखने की परंपरा चली जिसका संक्षिप्त एवं सर्व सम्मत परिभाषिक नाम "जीवनी" है।

जीवनी इतिहास, साहित्य और नायक की त्रिवेणी होती है। जीवनी में लेखक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन और यथेष्ट जीवन की जानकारी प्राथमिकता के साथ प्रस्तुत करता है।

जीवनी के अनेक भेद होते हैं।

आत्मीय जीवनी
लोकप्रिय जीवनी
ऐतिहासिक जीवनी
मनोवैज्ञानिक जीवनी
व्यक्तिगत जीवनी
कलात्मक जीवनी इत्यादि

आत्मकथा में भी व्यक्ति जीवन वृतांत लिखता है परंतु वह स्वयं द्वारा लिखा जाता है जबकि जीवनी में लेखक किसी दूसरे के जीवन के जीवन वृत्त को लिखता है जीवनी में लेखन की शैली वर्णात्मक होती है।

जीवनी- लेखक जिस की जीवनी लिखता है यदि उससे उसका निकट का संपर्क हो तो यह अच्छी बात है। यदि चरित्र नायक से लेखक का निकट का संपर्क ना हो तो वह अपने चरित्र नायक के जीवन की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है. इसके लिए वह निम्नलिखित स्त्रोतों का उपयोग करता है।

१) संबंधित चरित्र-नायक पर लिखित पुस्तकों या लेखों का

२) चरित्र-नायक द्वारा लिखित डायरी, पत्रों आदि का

३) चरित्र-नायक के समकालीनों के संस्मरणों का

४) संबंधित स्थानों के भ्रमण से प्राप्त तथ्यों का

५) किसी अन्य स्त्रोत से प्राप्त जानकारी का

आत्मकथा और जीवनी में कुछ समानताएँ भी है। आत्मकथा और जीवनी लिखने के लिए यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति के जीवन की सभी घटनाएँ ली जाएँ किंतु इनमें हृदय को छूने वाली अथवा जीवन में मोड़ लाने वाली घटनाओं का समावेश आवश्यक है।

इनमें चरित्र-नायक के जीवन की प्रामाणिक और तथ्यपरक जानकारी की अपेक्षा रहती है, इसलिए कल्पना और कृत्रिमता के लिए इसमें कोई स्थान नहीं होता। साहित्य के अन्य रूपों के समान, आत्मकथा और जीवनी की शैली भी प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। जीवनी में घटित घटनाओं के क्रम का भी इन विधाओं में ध्यान रखना होता है। दूसरे शब्दों में घटनाएं उसी क्रम में लिखी जानी चाहिए, जिस क्रम में घटी हो। आत्मकथा और जीवनी यदि प्रभावपूर्ण शैली में लिखी गई हो तो वे उपन्यास की भांति रोचक हो सकती है।

जैन कवि बनारसी दास लिखित 'अर्ध नायक' हिंदी की पहली आत्मकथा है। आधुनिक युग में इस विधा की शुरुआत भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ' कुछ आप बीती कुछ जग बीती' से की। अंबिकादत्त व्यास की ' मित्र- वृतांत' बाबू श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' राजेंद्र बाबू की ' आत्मकथा' हरिवंश राय बच्चन की ' क्या भूलूं क्या याद करूं', नीड का निर्माण फिर', 'प्रवास की डायरी', भवानी दयाल सन्यासी की ' प्रवासी की आत्मकथा', राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' आदि हिंदी की उल्लेखनीय आत्मकथाएँ है।

जीवनी साहित्य की महत्वपूर्ण उल्लेखनीय कृतियाँ है प्रेमचंद घर में - (शिवरानी देवी), महाप्राण निराला - गंगाप्रसाद पाण्डेय, कलम का सिपाही (अमृत राय), आवारा मसीहा, शरद चंद्र की जीवनी(विष्णु प्रभाकर), निराला की साहित्य साधना भाग 1 (रामविलास शर्मा) आदि

१२.५ सारांश

हिंदी गद्य लेखन में समस्त प्रकार के रचनाओं को तीन भागों में बांटा गया है

१) सूचनात्मक साहित्य

२) विवेचनात्मक साहित्य

३) रचनात्मक या सृजनात्मक साहित्य।

आधुनिक हिंदी गद्य विधा के अंतर्गत आलोचना, रेखा चित्र और संस्मरण तथा आत्मकथा और जीवनी सृजनात्मक या रचनात्मक विधा के अंतर्गत आते हैं। इस विधा के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे - नाटक, निबंध, एकांकी, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, रेखा चित्र संस्मरण आदि के स्वरूप को समझ सकते हैं - तथा गद्य को विभिन्न विधाओं में अंतर कर सकते हैं।

१२.६ बोध प्रश्न

अ) आलोचना के विकास क्रम का सविस्तार उल्लेख कीजिए।

आ) अच्छे आलोचक के गुणों का उल्लेख करें।

इ) आलोचना के प्रमुख दो प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

ई) रेखाचित्र और संस्मरण में क्या अंतर है? विस्तार पूर्वक लिखें।

उ) आत्मकथा और जीवनी में प्रमुख अंतर क्या है? स्पष्ट करें।

१२.७ लघूत्तरीय प्रश्न

अ) " आलोचना" को परिभाषित करें।

आ) " आत्मकथा" को परिभाषित करें।

इ) अच्छे आलोचक के दो गुण लिखें।

ई) समालोचक किसे कहते हैं?

उ) रेखाचित्र किसे कहते हैं?

ऊ) संस्मरण का क्या तात्पर्य है?

१२.८ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. हरी चरण शर्मा

२) गद्य की नई विधाएं - डॉ. माजदा असद

३) साहित्य के नए रूप - डॉ. श्याम सुंदर घोष

४) हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ- डॉ. शिवकुमार शर्मा

❖❖❖❖

munotes.in